सांझ की बेला में

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

सांझ की बेला में

शीलभद्र

अनुवाद
महेन्द्रनाथ दुबे

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2642-2

पहला संस्करण : 1999 (शक 1920)

Original Title : Godhuli *(Assamese)*
Translation : Sanjh Kee Bela Mein *(Hindi)*
रु. 35.00
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित।

भूमिका

पांचवें दशक के बाद से ही अत्यंत तीव्र सामाजिक चेतना, कथन भंगिमा में अत्यंत कम शब्दावली के प्रयोग की सावधानी, सूक्ष्म निरीक्षण और निरासक्त वस्तुनिष्ठता के कौशल से शीलभद्र रचना करते आ रहे हैं। शीलभद्र इनका उपनाम है। इनका असली नाम है—रेवती मोहन दत्त चौधुरी। स्वयं की अनुभूति और बौद्धिक चेतना का संयोग इनकी कहानियो की अपनी खास विशेषता है। पारंपरिक शैली से एकदम अलग किस्म की होने, तर्काश्रित होने तथा संख्या में काफी कम होने के कारण शीलभद्र की कहानियों को जनप्रियता प्राप्त करने के लिए सत्तर के दशक तक प्रतीक्षा करनी पड़ी थी।

आकौ मधुपुर (फिर से मधुपुर), *तर्पण* आदि कहानी-संग्रहों में संकलित कहानियों के आधार पर कहा जा सकना है कि इनकी कहानियां अधिक बौद्धिक और चेतना निर्भर हैं। बहुत बाद की कहानियों में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि वे पारंपरिक कथा सर्जना, चरित्रांकन और कथन शैली—सब तरह से अपनी पहले की कहानियों से बदल गई हैं। दरअसल शीलभद्र किसी भी पूर्व प्रतिष्ठित रचयिता का अनुकरण नही करते। यहां तक कि उनकी कोई भी अपनी एक कहानी, अपनी भी किसी दूसरी कहानी का अनुकरण नहीं करती।

सत्तर के दशक में असमिया साहित्य में सुप्रतिष्ठित श्रेष्ठ कहानीकारों की अग्रिम पंक्ति में गिने जाने की प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने के बाद शीलभद्र जी ने उपन्यासों की रचना करना भी आरंभ कर दिया। *मधुपुर, तरंगिणी, आगमनीर घाट, आंहत गुरि (विशाल पीपल वृक्ष), गोधूलि* और *अनुसंधान* शीलभद्र के श्रेष्ठ उपन्यास हैं। इनमें से आरंभ के चार तो सत्तर के दशक में प्रकाशित हुए, शेष दो अस्सी के दशक में छोटी कहानियों की भांति ही शीलभद्र के उपन्यास भी बौद्धिक चेतना पर ही निर्भर हैं। *मधुपुर* और *गोधूलि* आदि उपन्यासों में शीलभद्र ने कहानी के कथ्यपक्ष और रचना कौशल के क्षेत्र में अनेकानेक परिवर्तन ला दिए हैं।

मधुपुर उपन्यास नाना प्रकार से पूर्व-परंपराओं से बिलकुल अलग किस्म का, सर्वथा स्वतंत्र शैली का उपन्यास है। व्यक्ति और समाज के बीच आ उपस्थित हुए नाना प्रकार के अंतर्द्वंद्वों, कहानी कहने में शब्दों के कम-से-कम व्यवहार करने की

सजगता, चरित्रों की रचना में अद्भुत कारीगरी का कौशल, तथा घटनाओं के मूल्य बोध के संबंध में अनिश्चितता, कहानीकार की बहुमुखी चेतना, ऐतिहासिक परिवर्तनों के प्रति अत्यंत निर्लिप्ततामय वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण, अतीत के प्रति मोहासक्त हुए बिना अतीत काल का मंथन-चिंतन इत्यादि। काल-चेतना की दृष्टि से प्रायः आधी शताब्दी की टुकड़े-टुकड़े रूप में आई नानाविध घटनाएं आगे-पीछे होकर, छूटे-छिटके रूप में, समय की कुंडली बांधे हुए कहानी का वृत्तांत आगे बढ़ता है। इस तरह से टुकड़े-टुकड़े रूप में आगे बढ़ती हुई कहानी की घटनाएं होने पर भी उपन्यास की क्रम-शृंखला को बिगाड़ने अथवा अनुशासनहीन हो जाने अथवा अराजक अवस्था उत्पन्न कर देने की स्थिति नहीं आने देतीं। कुल मिलाकर नाना प्रकार की टुकड़े-टुकड़े रूप में घटित होनेवाली घटनाओं को कहानीकार की सूक्ष्म संचयन क्षमता और अत्यंत परिष्कृत बुद्धिचेतना ने ही वश मे रखा है और एकनिष्ठ किए रखा है। यहां कहानी की गति एक सीधी-सपाट रेखा के अनुरूप बढती रहनेवाली नहीं है, बल्कि वृत्ताकार घूमनेवाली अथवा कुंडली की तरह पाक भांजनेवाली है। प्रत्येक नया टुकड़ा घटनाओं के संयोजन में पहले घटी हुई घटना की आकार-प्रकार का एक सुपरिकल्पित आयतन, गांभीर्य और तात्पर्य प्रदान करता है। नई-नई छोटी-छोटी घटनाएं बडे प्रचंड वेग से आकर कहानी के मूलाकार से टकराती हैं। वे सभी-की-सभी नई-नई सूचनाएं, नए दिशा संकेत और अभिनव तात्पर्य इस ढंग से ले आई हैं कि पाठक ऐसी प्रत्येक घटना की उपस्थिति और उसकी न्यायसंगति को मान लेने को बाध्य हो जाता है।

बस केवल चौंसठ पृष्ठोंवाले *मधुपुर* उपन्यास में अध्यायों का कोई विभाजन करने की कोई चेष्टा ही नहीं की गई है। हो भी नहीं सकती है। कहानीकार की स्मृति में धक्के मार-मारकर उसकी बोधशक्ति मे मधुपुर की टुकडों-टुकडों में छंटी-बंटी घटनाएं जिस प्रचंड वेग से उमड़ी चली आई हैं, और प्रत्येक घटना दूसरी वैसी ही छोटी घटना के साथ और समग्र रूप से पूरी कहानी के साथ इस तरह घुली-मिली है कि वहां किसी प्रकार के किसी अध्याय का विभाजन कर पाना संभव ही नहीं है। ऐसी दशा में अपनी इच्छा के अनुरूप बस नियम रक्षा के उद्देश्य से अगर यहां अध्यायों का विभाजन किया जाए, तो इससे कहानी की वस्तुनिष्ठता के नष्ट हो जाने की आशंका है। *मधुपुर* उपन्यास के आकार-विस्तार पर अगर विशेष बल दें तो इसे एक उपन्यासिका भी कह सकते हैं। परंतु कहानी कहने की जो नितांत दुष्प्राप्य अतिसूक्ष्म दृष्टि और अत्यंत कम शब्दों में अत्यंत विशाल परिदृश्य को व्यक्त कर देने की जो अद्भुत कारीगरी इसमें है, प्रत्येक घटना ही किसी बड़े वृत्तांत की संकेतिका है, गहरे तात्पर्य की संसूचिका और घटनाओं के पूर्वापर परिदृश्यों के निरंकार कानों में गूंजते रहने की विशिष्ट क्षमता से जिस कौशल से सन्निविष्ट है, उन सबकी दृष्टि से विचार करने पर इसे एक उपन्यास मानना ही समीचीन है।

इस उपन्यास की कथावस्तु का सारांश एक वाक्य भर में दिया जा सकता है—"परिवर्तन की प्रचंड धारा के साथ अपने आप को मिला न पाने के कारण, दूरदृष्टि की क्षमता से रहित, मधुपुर के जमींदार मालिक महाशय शक्ति और क्षमता से वंचित और पराजित हो गए हैं।" परंतु इस साधारण से कथ्य को कहानीकार ने नए और पुराने जमाने के बीच नित्यप्रति होते आ रहे संघर्षो तथा विजयों-पराजयों को अनेकानेक छोटी-छोटी घटमाओं के संकेत तथा एक से दूसरे अर्थबोध करा देने की क्षमता से भिन्न-भिन्न छोरों से इस कुशलता से उपस्थित किया है कि देखते ही बनता है। परंपरित जीवन क्रम के अभ्यस्त हो जाने की विवशता—परंपरा के प्रति आसक्ति, रीति-नीति, आभिजात्य-मूल्यबोध, दया-ममता, स्वेच्छाचार-हठधर्मिता, रूढ़ियों से ग्रस्त बने रहने की मानसिकता तो प्रगति के नए आलोक की ओर तीव्र गति से बढ़ने की व्याकुलता, स्वामिभक्ति-आज्ञाकारिता तो दूसरी ओर अकृतज्ञता, अज्ञानता तो दूसरी ओर चेतना संपन्नता, गुलामी की मनोवृत्ति तो दूसरी ओर हर बाधा-बंधन के प्रति भी तीव्र प्रतिरोध आदि नानाविध मनोभावों के बीच उपस्थित किसी के प्रति कहानीकार ने अपनी ओर से कोई सिद्धांतपूर्ण निर्णय देने की कोशिश नहीं की है। पतनमुखी आभिजात्य के साथ इस तरह के आवेगपूर्ण संपर्क को कहानीकार अग्राह्य न कर पाने पर भी इस प्रकार के ऐतिहासिक परिवर्तनों का वह एक असंपृक्त दर्शक भर है।

मधुपुर उपन्यास की कहानी कहने की शैली वैविध्यपूर्ण है। उदाहरण के रूप में हम इसकी एक छोटी-सी घटना को ले सकते हैं : कहानी कहनेवाले पात्र के पिता अपने द्वारा उधार दिए गए दो सौ रुपए के कर्ज को भगीरथ नामक एक साधारण आदमी द्वारा लौटा न देने पर, एक दिन सरे-राह, बीच चौराहे पर उसे दो जोरदार थप्पड़ जड़ देते हैं, और बस इतने से ही अपने दो सौ रुपए के उस कर्ज को माफ कर देते हैं।

चूंकि अभी उस समय तक जमींदारी प्रथा बनी हुई थी, अतः जमींदार द्वारा अपनी ही एक प्रजा के एक मामूली आदमी को दो थप्पड़ मार देने की बात उस समय के समाज में एक बहुत ही मामूली घटना गिनी गई। परंतु केवल दो थप्पड़ मार देने के बदले, उन्होंने जो उस समय के हिसाब से दो सौ रुपए का बड़ा कर्ज माफ कर दिया, जिससे कि भगीरथ जैसा एंक मामूली आदमी उस भारी कर्ज से उऋण हो गया, इससे जनसाधारण इस घटना में जमींदार साहब की महान दयालुता, दीन-हीन के प्रति उदारता का ही भाव देख पाते हैं। जैसा कि अति उत्साहित हो एक पात्र कह उठता है : "बड़े ही दरियादिल मनुष्य हैं वे, बस दो थप्पड़ मारकर दो सौ रुपए का अपना प्राप्य धन यूं ही छोड़ दिया।"

इसी एक घटना को फिर एक और ढंग से वर्णित किया गया है। अपनी वर्तमान अवस्था से और ऊपर उठने की आकांक्षा और अति उत्कृष्ट श्रेणी तक पहुंचने का

सपना मनुष्य को इसकी राह में पड़नेवाली जिस किसी बाधा-विपत्ति को नष्ट कर देने का अद्‌भुत मनोबल प्रदान करता है। लाज-लज्जा, भय-संकोच कुछ भी उसकी राह को रोक नहीं सकते। इस दृष्टिकोण से वर्णन करते हुए, भगीरथ थप्पड़ खाकर लज्जा और अपमान से मरणासन्न सा हो गया था, या नहीं; यह बात अनिश्चित हो पड़ी है। उन्नति करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ भगीरथ दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति ही करता जा रहा है। उसका बेटा मधुपुर इलाके का सबसे पहला इंजीनियर बनता है। उसकी बेटी भी एम.एस-सी. परीक्षा पास कर लेती है। भगीरथ के थप्पड़ खाने की घटना यद्यपि एक बहुत मामूली घटना है, फिर भी इसकी सार्थकता और इसकी प्रतिध्वनि पूरे उपन्यास में फैल गई है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका जो पूरे समाज पर महाविपत्ति बनकर घिर आई उसका लाभ उठाकर व्यापारियों के जिस समूह ने रात भर में ही जगह-जमीन, धन-दौलत से परिपूर्ण हो आशातीत उन्नति कर ली थी, उन लोगों के लिए भी शर्म-हया, लज्जा-भय आदि को नजरअंदाज कर आगे उन्नति करते रहने की कोई बाधा नहीं है। परंतु पतन के गर्त में गिरते जा रहे जमींदार और जमींदार खानदान के लोगों के लिए तो यह एक ऐसी बाधा-विपत्ति है जिसे वे किसी भी हालत में टाल नहीं सकते। ऐसी दुर्भेद्य दीवार है उनके लिए जिसे वे फलांग नहीं सकते। जमाने-जमाने से चले आ रहे जीवन के तौर-तरीकों के अभ्यस्त हो चुकने की आदतों, परंपरा-अनुपालन, रीति-नीति, आचार-अनुष्ठान आदि के साथ लाज-लज्जा, मान-मर्यादा का प्रश्न गलबहियां दिए खड़ा रहता है। उन सबसे अलग करके इसे अकेले-अकेले न परख सकने से, आचरण विधि और रीति-नीति का निर्णय सामाजिक स्मृति ही करती है। समाज में व्याप्त भिन्न स्तरों की श्रेणियों के दृष्टिकोण से भगीरथ के थप्पड़ खाने की घटना के साथ जुड़ी लज्जा भावना का स्वरूप अपने ढंग का एक विशेष प्रकार का होना ही स्वाभाविक है।

अंग्रेज विद्वान ब्रेन मैकहेल ने अपने प्रसिद्ध समालोचना ग्रंथ *पोस्ट माडर्निस्ट फिक्शन* (उत्तर-आधुनिकतावादी कथा साहित्य) में आधुनिकतावादी उपन्यासों के संबंध में यह विचार प्रस्तुत किया है "आधुनिक उपन्यास के आधिपत्य का विस्तारक तत्व ज्ञानतात्विक है। ऐसे उपन्यासों में बड़ी बारीकी से बड़े कौशल से उठाए जानेवाले प्रश्नों की लड़ी इस प्रकार की है :

"मैं जिस पृथ्वी पर स्वयं पैर टिकाए खड़ा हूं, उस पृथ्वी की व्याख्या मैं किस रूप में करूं ? क्या मैं स्वयं भी यहां पर हूं ? जानने योग्य यहां है ही क्या ? फिर उसे जाननेवाला है कौन ? अगर वे इसे जानते भी हैं, तो फिर वे किस तरह जानते हैं, और कितने निश्चित रूप से जानते हैं ? प्राप्त कर चुके ज्ञान का एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किस तरह संपर्क स्थापित करता है और उसमें फिर विश्वास कर सकने का परिमाण कितना है ? एक व्यक्ति जब दूसरे व्यक्ति से संपर्क स्थापित

करता है तो इस दौरान ज्ञान का विषय किस रूप मे परिवर्तित हो जाता है ? जो ज्ञेय है, यानी जानने योग्य है, उससे और जो अज्ञेय है, जाना ही नहीं जा सकता, उन दोनों के बीच की सीमा रेखा कहां है ?"

बुद्धिचेतना पर निर्भर शीलभद्र के उपन्यास *मधुपुर* और *गोधूलि* में उठाए गए प्रश्न-समूह भी प्रायः ज्ञानतात्विक ही हैं। किसी मूल्यवत्ता का विचार कर अपनी राय जाहिर करने के ठीक उलटे यहां उपन्यासकार छोटी-बड़ी अनेकानेक घटनाओं को इकट्ठा करके उनके आलोक में ज्ञान-तात्विक प्रश्न ही उठाता चला जाता है। किसी भी घटना के संबंध में कथा रचयिता का कोई अपना अंतिम निर्णीत ज्ञान नहीं है।

"हीरामन का लौट आना संभव नहीं हुआ। सो निश्चय ही वह कहीं मर-खप गया। इसके अलावा किसी और परिणाम पर पहुंचने, कुछ और मानने के लिए कोई युक्ति नहीं, कोई आधार नहीं। परंतु इतना सब होने पर भी यह तो मेरा अनुमान भर ही है। इस तथ्य का कोई प्रत्यक्ष ज्ञान तो है नहीं। अतएव हीरामन का इतिहास अधूरा ही है।"–*(मधुपुर)*

गोधूलि उपन्यास जीवन में कोई भी उल्लेख्य काम न कर सकनेवाले, नौकरी से सेवानिवृत्त भूदेव चौधुरी नामक एक व्यक्ति की जीवन-कहानी है। परतु उल्लेख्य काम के निर्धारक आधार के संबंध में भी उपन्यासकार ने ज्ञानतात्विक प्रश्न ही उठाया है। उपन्यास का आरंभ भूदेव चौधुरी की मृत्यु के समाचार से हुआ है। दो अध्यायों में, ऊपर-ऊपर से देखने में कुछ अटपटी सी लगनेवाली मृत्यु की बात का उल्लेख किया गया है–एक अलशेसियन कुत्ते की मृत्यु, एक पंगु बालक की मृत्यु होने की संभावना। और इसके बाद के अध्याय में आई एक बछिया की मृत्यु इत्यादि। नौकरी से सेवानिवृत्त हो जाने के बाद अपना मकान बनवाकर उसमें अकेले-अकेले रहनेवाले उस बूढ़े आदमी की मृत्यु को लेकर कोई भावावेग, किसी अनुभूति की गहरी छाप नहीं बनाई गई है। उसके बाद वहां एकत्र हुए विभिन्न लोगों की चिंता-भावना और उनके अपने-अपने विचारों, तर्क-वितर्कों की सहायता से नाना तरह के भावों का जो परिमंडल बना है उसमें एक आदमी की औरों से विच्छिन्नता और बिना किसी दुख-कष्ट के यंत्रणाहीन मृत्यु पाने की आकांक्षा ही पाठक की दृष्टि को आकर्षित करती है। वहां आ जुटे लोगों में से एक प्रमुख व्यक्ति भूदेव चौधुरी के दामाद से यही जान-पूछ लेने को व्यग्र हैं कि भूदेव चौधुरी के मरने से उनका जो मकान खाली हो गया है, उसे वे लोग बेचेंगे क्या ? एक दूसरे सज्जन खूब गहरी शराब चढ़ाए हुए नशे मे धुत्त हो ढहते-ढिलमिलाते हुए आकर मृत्यु द्वारा बनाई गई परिस्थिति की विसंगति ही प्रगट करते हैं। बिना किसी विशेष कष्ट और दुर्गति का भोग भोगे ही अचानक मृत्यु को प्राप्त हो गए बूढ़े आदमी की मृत्यु के साथ पाप-पुण्य के प्रश्नों को जोड़कर उठाए जानेवाले प्रश्नों को भी वाहियात ही बताया गया है। मृत्यु-लोक

के विषय में बनाई गई पुण्यात्माओं की कहानियां जो केवल कपोल कल्पना या मिथक भर ही हैं, इसे भी पहले अध्याय में स्पष्ट रूप से दिखाया गया है।

नौकरी से सेवानिवृत्त हुए एक बूढ़े मनुष्य का जीवन ही नहीं, बल्कि सभी मनुष्यों का जीवन ही इसी प्रकार का खंडित और निस्संग है। अपने-अपने में सभी-के-सभी अकेले हैं। किसी भी प्रकार का प्रेम या स्नेह-संपर्क एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से बांधे रखने में समर्थ नहीं है। कर्महीनता, निस्संगता और उद्देश्यहीनता का कारण बताने की जगह कथाकार ने रतिकांत जैसे चरित्र के एक झुंड गायों-बछड़ों के साथ व्यस्त रहने के तात्पर्य और अर्थ को अनिर्णीत ही छोड़ दिया है। भूदेव चौधुरी किसी भी विचार को सुस्पष्ट रूप नहीं दे पाते, किसी घटना या काम का परम अर्थ और तात्पर्य नहीं विचार सकते और विश्व-ब्रह्मांड की अत्यंत गूढ़ परिकल्पना में अपना सही-सही स्थान निश्चित नहीं कर पाते। सारे-के-सारे अर्थ और मूल्य-बोध सापेक्षिक हैं। सभी कामों और सारी घटनाओं की परिणति अनिर्णेय है। चौधुरी तो बस केवल ज्ञान-तात्विक प्रश्नों को ही उठाते रह सकते हैं : "क्या यही उनकी जीवन लीला की समाप्ति है ? किसी भिन्न प्रकार के जगत में उनका कोई अस्तित्व नहीं है क्या ?"—(पृष्ठ 16) "सचमुच ही सत्य का कोई निजी स्वरूप नहीं है ? हम उसे जो रूप देते हैं, वही उसका स्वरूप बन जाता है ?"—(पृष्ठ 35) "मामा सोचता था कि गजानन राय ने उन्हें ठगा है और गजानन सोचता कि मामा ने उन्हें ठगा है।"— (पृष्ठ 49)

ज्ञानतात्विक प्रश्नों को उभार-उभारकर रखने, विच्छिन्नता-बोध को अनुभव कराने, प्रेमहीन यौन संपर्क आदि गुणों के समाहार से और कथा-संरचना के निर्माण-कौशल की दृष्टि से *गोधूलि* एक आधुनिकतावादी उपन्यास है। मनुष्य का आचरण और मूल्य-बोध सापेक्षिक है और देश-काल-पात्रानुसार परिवर्तनीय है, इस तथ्य को भली-भांति जानते हैं, समयानुसार वह सारा कुछ बदल गया है, अतः भूदेव चौधुरी अथवा कथाकार ने किसी प्रकार का नैतिक-उद्वेग, चिंता या व्याकुलता प्रगट नहीं की है। परंतु इस तरह के परिवर्तनों ने विच्छिन्नताबोध—अलगाव की संचेतना—ला खड़ी की है और ज्ञानतात्विक प्रश्नों की अवतारणा की है : "वस्तुतः उसी दिन वे पूरी तरह से अकेले हो गए। सारे संगी-साथी छूट गए।...और मजबूत होता चला गया।"—(पृष्ठ 60); "चौधुरी जी की पत्नी ने अपने आपको और भी समेट लिया। वे अपने भीतर ही जैसे समा गई (पृष्ठ 78)।" "वास्तविकता तो यह है कि हर एक मनुष्य ही एक अभेद्य दुर्ग है।" (पृष्ठ 79); "सारी बातें झूठी हैं। सचाई तो यह है कि भीड़ के बीच रहते हुए भी मैं महा एकाकी हूं। मैं, मैं ही हूं। प्रत्येक मनुष्य औरों से बिलकुल अलग है, पूरी तरह से अकेला, संगी-साथी विहीन।"—(पृष्ठ 96); "सारी-की-सारी रात अधिकारी जी को नींद नहीं आई। इस अवस्था

को क्षोभ नहीं कह सकते, दुख भी नहीं है यह, एक प्रकार की शून्यता का भाव है यह। उन्हें लगा जैसे वे शून्य में ही तिरते फिर रहे हों।"—(पृष्ठ 103)

शीलभद्र जी अपने आपके प्रति अति सचेतन शिल्पी हैं। वे अपनी कहानियों-उपन्यासों के लिए चुनी जानेवाली विषय-वस्तु के क्षेत्र में ग्रहण करने और छोड़ देने की निपुणता तथा शैली-शिल्प के निर्माण में अंकगणित की संक्षिप्तता को कार्यरूप दे सकने में सक्षम हैं। उनके उपन्यासों में, विशेषकर *मधुपुर* और *गोधूलि* आदि में परंपरागत विशुद्ध कहानी, चरित्रांकन, कालक्रमानुसार कहानी कहने की भंगिमा, द्वंद्व और परिणति आदि उपस्थित नहीं हैं, बल्कि इनसे भिन्न स्थिति है। *गोधूलि* उपन्यास की कहानी को ही लें, तो यह अनेकानेक छोटी-छोटी, टुकड़े-टुकड़े कहानियों की समष्टि है। इन तमाम कहानियों के बीच भूदेव चौधुरी की कहानी भी उन्हीं में से एक कहानी है। दिवाकर दास, गजानन राय, रबीन शहरीया, शरत लहकर, रतिकांत कलिता आदि अनेकानेक अच्छे-अच्छे लोगों के जीवन का अर्थ और तात्पर्य एकत्र होकर *गोधूलि* की कहानी के रूप में ढल गया है। यही कारण है कि घटनाओं की पारस्परिक—नीति कारण कार्य संबंध—योजना को बचाए रखते हुए कहानी को आगे बढ़ाते रहने की तो यहां कोई बात ही नहीं है, कहानी के लिए वस्तुगत पर्याय हेतु ऐक्य सूत्र स्थापक तत्व है, नए-नए सिरे से गढ़ उठा शांतिनगर नामक वह स्थान, जिसे शहर के करीब बसते जा रहे एक छोटे-मोटे उपशहर का नाम दे सकते हैं। संरचनात्मकता के विचार से नाना प्रकार के ज्ञानतात्विक प्रश्नों, विच्छिन्नता बोध और सूक्ष्म श्लेषात्मक कौशल से भिन्न-भिन्न, टुकड़े-टुकड़ेवाली घटनाओं को उसी ने एकत्र और केंद्राभिमुखी कर रखा है।

गोधूलि के कई-एक मूल विषयों में से एक मूल विषय है, प्रेमविहीन यौन संपर्क। निवारण कुमार जी ने अपने पिता की कहानी सुनाते हुए कहा है—"ऐसी नाजुक और कमसिन लड़की पर मेरे पिताजी ने बलात्कार कर डाला। पिताजी के लिए यह सब तो कोई सोचने-विचारने की चीज ही नहीं थी, परंतु उस बेचारी की तो ऐसी हालत हो गई, उसे इतना खून बहने लगा कि अंततः पिताजी के एक अत्यंत स्नेही मित्र डॉ. घोष को बुलवाना पड़ा।" (पृष्ठ 10); "कमरे में प्रवेश करने के साथ-ही-साथ सुव्रत ने उसे अपनी भुजाओं में समेटकर कस लिया, जिसकी वजह से उसके हाथ से पानी भरा शीशे का गिलास नीचे गिरकर झनझनाता हुआ हजारों टुकड़ों में बिखर गया। अचानक आ पड़े आघात से उसका शरीर बेकाबू हो गया। उसका मन भी जड़ हो गया। यह क्या हो गया अचानक ? इसका वह कुछ अंदाज भी नहीं लगा पाई।...सुव्रत जब उस कमरे से निकलकर बाहर चला गया तो भी सुरबाला मारे आतंक और शरीर में व्याप्त भयानक यंत्रणा के कारण बेहोशी की दशा में खाट पर ही पड़ी रही।" (पृष्ठ 84); "पत्नी की याद से चौधुरी का मन बहुत बेचैन हो जाता है। दरअसल जब तक उन्होंने साथ निभाया, चौधुरी ने कभी

भी पत्नी के मन की बातों को जानने समझने की कोशिश नहीं की। उनके लिए तो वे वायु और पानी की तरह एक सहज प्राप्त हो सकनेवाली संपत्ति भर थीं।"–(पृष्ठ 76); "दो कान, एक नाक, दो आंखें रखनेवाली लड़कियों में से ही कोई एक मेरी पत्नी है ! उसके साथ एक ही बिस्तरे पर सटकर सो सकता हूं। परंतु किसी और के साथ ऐसा नहीं कर सकता।"–(पृष्ठ 96)

अतिशय चमत्कारपूर्ण बौद्धिक तेजस्विता और क्षिप्र मस्तिष्क शक्ति के प्रयोग के क्षेत्र में शीलभद्र की कहानियां और उपन्यास असमिया साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। छोटी कहानियों में अंकगणित शास्त्र के सूत्रों का अत्यंत सीधे-सरल ढंग से व्यवहार एक अकेले शीलभद्र जी ही कर सकते हैं। "किसी एक बिंदु में फलन एक अवकलनीय होने पर, वह अविच्छिन्न तो होगा ही, परंतु अविच्छिन्न होने पर भी कोई अवकलनीय नहीं भी हो सकता है।" ('वहिर्भूत' कहानी, *तर्पन* संग्रह में–पृष्ठ 18)

गोधूलि उपन्यास में मनुष्यों के परिचय-ज्ञापक भिन्नता और समानता जैसे विषयों को लेकर भूदेव चौधुरी सोच-विचार करते हैं, "किसी दूसरे ग्रह से अगर कोई प्राणी हमें देखेगा तो हम सबको भेड़ों का एक झुंड ही समझ बैठेगा, ऐसी भेड़ें जो हड़बड़ी में दलबंद होकर आत्महत्या करने के लिए समुद्र में जा गिरने हेतु आपस में धक्का-मुक्की कर रही हों।...जिन दो व्यक्तियों के आंखों के आकार-प्रकार में नाम मात्र की भिन्नता है, उनमें भी सर्वांश में काफी भिन्नता है। इसी तरह इस धरती के करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों में से प्रत्येक देखने में एक-दूसरे से अलग दिखाई पड़ता है। (पृष्ठ 95)

अपनी प्रकृष्ट बुद्धि-दीप्तिता के भरोसे शीलभद्र जी एक ऐसी शैली में गंभीर अथवा हल्की-फुल्की मजाकिया स्थिति को अनिश्चित छोड़कर हास्य-व्यंग्य की परिस्थिति पैदा कर देते हैं जिसका अनुकरण कर पाना संभव नहीं है। अनीता जब अपने पिता को उनकी आत्मकथा लिखने के लिए अधिकाधिक जोर देकर तंग कर देती है तो उसके पिता अंत में उसी से पूछते हैं कि ठीक है, मगर ये बताओ कि आरंभ कहां से करूं ? "नौकरी से सेवामुक्त हो जाने के बाद के समय से, अथवा बिलकुल जन्म के समय से ही ?"–(पृष्ठ 116)। इसी प्रकार का एक कथन है–"सदानंद हजारिका निश्चय ही बड़े चतुर व्यक्ति हैं। थोड़े दिन में ही उन्होंने शांतिनगर के निवासियों को दो भागों में बांट दिया।"–(पृष्ठ 104)। पशुओं द्वारा धान खेत चर जाने की एक छोटी सी घटना को आधार बनाकर दो दलों के आदमियों में हुई मारपीट की घटना के अंत में देखा गया कि बहुत बुरी तरह से चोट खाया हुआ आदमी है धातू बूढ़ा और मारपीट में सबसे अधिक बढ़-चढ़कर हिस्सा लेनेवाला आदमी है नरोत्तम। परंतु सचाई तो यह है कि–"नरोत्तम और धातु बूढ़ा–इन दोनों में से किसी एक के पास भी खेती करने लायक जरा-सी भी जमीन नहीं है, और

न तो गाय-बैल या कोई पशु ही है।"—(पृष्ठ 90)। इसी प्रकार—"बेमतलब झूठ बोलने की आदत मृणाल को बचपन से ही है। झूठ बोले बिना वह रह नहीं सकता। जहां झूठ बोलने की कोई आवश्यकता नहीं, कोई स्वार्थ सिद्ध होनेवाला नहीं, लाभ या हानि होने की कोई संभावना नहीं, वहां भी वह झूठ बोलता रहता है। हालत यह है कि बात करने के लिए मुंह खोलते ही झूठ की धारा उसके मुंह से फूट पड़ती है।"—(पृष्ठ 63); "वह जान-बूझकर झूठ नहीं बोलता। जिस समय वह जो बात कहता होता है, संभवतः तब वह उस पर विश्वास करता होता है। जान पड़ता है कि वह वास्तविक जगत में न रहकर अपने मन द्वारा गढ़ी हुई काल्पनिक दुनिया में विचरता रहता है—(पृष्ठ 67)।

शीलभद्र की कहानियों और उपन्यासों में समाज-जीवन की चेतना अत्यंत सूक्ष्म है। दरिद्रता, दुख, यंत्रणा, मोह-भंग, विषाद, विच्छिन्नताबोध, निस्संगता, अकेलेपन आदि की कहानी कहते हुए वे लगातार भावावेश-संयम, हृदय-मस्तिष्क, तर्कयुक्ति-विश्वास. आदि के विरोध को उठाते रहते हैं। किसी चीज़ का मूल्यांकन करके अपनी कोई राय जाहिर नहीं करते, अपना कोई निर्णय नहीं सुनाते। अपितु पाठक की चिंताशीलता, सोच-समझ को झकझोर कर जगा देते हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों ने आधुनिक असमिया साहित्य को एक नया सोपान प्रदान किया है। निश्चय ही शीलभद्र जी आधुनिक असमिया साहित्य के एक महान अग्रणी उपन्यासकार हैं।

—आनंद बरमूदै

एक

भूदेव चौधुरी नहीं रहे। रात में सोए-सोए ही उनके प्राण पखेरू कब उड़ गए ? कोई कुछ बता नहीं सकता। सबेरा हो जाने पर भी जब वे रोज की तरह उठकर बाहर नहीं आए, तो उनके घर के नौकर योगेन ने उन्हें जगाने के लिए कई बार पुकारा। इस पर भी उनकी तरफ से जब किसी भी प्रकार की कोई कुनमुनाहट नहीं हुई, जगने के कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़े तो लाचार होकर वह पड़ोस के मदन दास को बुला लाया। उस समय मदन दास बैंक जाने के लिए अपना स्कूटर चलाने ही जा रहे थे कि वह पहुंच गया! मदन दास ने आकर "मौसा जी ! अरे ओ मौसा जी !" जैसी कई एक आवाज लगाईं। तब भी कोई उत्तर न आया तो वे भी घबरा उठे। इस बीच दो-चार और लोग भी आ जुटे। इसी क्रम में जाने कहां से मृणाल भी आ पहुंचा। घर का दरवाजा बंद रहने पर भी किस तरह उस घर में घुसा जा सकता है, मृणाल इस कला में माहिर है। पश्चिम की ओर की एक खिड़की को दबा-दबू कर थोड़ी सी जगह निकालकर उसके छेद में एक पतला-लंबा सरिया डालकर उसने सिटकनी खोल दी। धक्का देते-देते एक पल्ला ढीला हो गया, उसे उठाकर धीरे से खोल दिया, फिर उसी रास्ते कूदकर अंदर घुस गया।

थोड़ी देर बाद ही दरवाजा खोलकर अपनी आंखें पोंछते-पोंछते वह बड़ी गंभीर मुद्रा में बाहर निकल आया। स्पष्ट हुआ कि भूदेव चौधुरी अब नहीं रहे। वे तो जाने कब के मर चुके थे, उनका शरीर बिछौने पर काठ सा शांत पड़ा है। सांस चलने, हृदय-गति चलने का कोई अता-पता नहीं। बनावटी दांतों के जोड़े मुंह से बाहर छिटक आने के कारण दोनों गाल अस्वाभाविक रूप से काफी गहरे धंस गए हैं, यद्यपि मुंह पर किसी प्रकार की किसी पीड़ा या छटपटाहट का कोई चिह्न नहीं है।

उनकी मृत्यु की सूचना मिलते ही भूदेव चौधुरी की दोनों बेटियां आ पहुंचीं। उनमें से बड़ी बेटी रानू गंभीर स्वभाव की है। आते ही उसने सारी परिस्थिति संभाल ली है। डा. रमेश बरुआ को आवश्यकतानुसार सलाह-निर्देश आदि देती जा रही है। छोटी बेटी अनीता घर के सामने के रास्ते पर से ही रोती-चिल्लाती घर आई। घर में आने के बाद तो उसका रोना-धोना और भी बढ़ गया। अब तो हालत यह है कि रोते-रोते ऐसी थक गई है कि पिता की मृत देह को पकड़े-पकड़े चेतना शून्य-सी

पड़ी हुई है। बचपन से ही अनीता को ऐसा प्यार-दुलार मिलता आ रहा था कि उसी कारण वह अभी भी नन्हीं अबोध बालिका जैसी ही बनी हुई है।

मुहल्ले के लगभग सभी आदमी इकट्ठे हुए हैं। संस्कार के लिए आवश्यक सामग्रियां ले आने के लिए रमेश बरुआ ने कुंज ठाकुर की दुकान पर अपनी मोटर-गाड़ी भेज दी है। कुछ नवयुवक बांस की टिकठी (अर्थी) बनाने में जुटे हुए हैं।

अपेक्षाकृत अधिक उम्र के बड़े-बूढ़े कुछ लोग एक ओर कुछ दूरी पर पड़ी कुर्सियों पर बैठकर मद्धिम सुर में बातें कर रहे हैं। उसकी दूसरी दिशा में कुछ नवयुवक विभिन्न मुद्राओं में खड़े हैं तो कुछ वहीं घास पर बैठे हुए हैं। वृद्ध जनों में विशेष रूप से उल्लेख्य लोगों में पड़ोस के श्री दिवाकर दास, गजानन राय, रबीन शहरीया, शरत लहकर और रतिकांत कलिता प्रमुख हैं। पास के शहर से भी लोग आए हैं। वैसे अभी भी लोग आते ही जा रहे हैं।

रतिकांत कलिता बोले, "अभी कल सांझ की बेला में ही तो उनसे मैं मिला था। मूंगिया तब तक घर नहीं लौटी थी। उसे ढूंढ़ने के लिए ही मैं शर्मा जी के बाग के पिछवारे की ओर उसे देखने जा रहा था। घर पहुंचने के पहले अंधियारा होने पर कभी-कभी वह वहीं रह जाती है। सायंकालीन भ्रमण पूरा कर चौधुरी तब अपने घर की ओर लौटे आ रहे थे। परंतु मैं तो तब अपनी (मूंगिया) गैया की चिंता में पड़ा था, सो दुर्भाग्य ऐसा कि ठीक ढंग से बातचीत भी न हो सकी।"

दिवाकर दास ने अचंभित होते हुए पूछा, "अच्छा, ऐसी बात है ?"

"हां भाई हां, बड़े ही भले आदमी थे वे। उस दिन जो मिले तो मेरी करिअई जनी का कुशल समाचार भी पूछा था। इधर बीच में उसे गलफोल्ला हो गया था न !"

"यह गलफोल्ला क्या है जी ?"

"अरे, यही गलाघोंटू जैसा रोग। गले में सूजन आ जाने से फूल जाता है, कुछ भी खा नहीं सकती है।"

गजानन राय बोल उठे, "अरे ठहरो भी। अभी उसी दिन तो उनसे भेंट हुई थी। कितने दिन हुए होंगे ? ज्यादा-से-ज्यादा तीन दिन हुए होंगे। डालिया (बेगनबेलिया) की पौध मांग रहे थे। सोचा था, दे दूंगा। परंतु अब दूंगा, तब दूंगा, करते-करते दिन टलते गए, और आज हालत यहां तक आ पहुंची कि नहीं ही दे पाया।

रबीन शहरीया की आंखों के सामने उनके अलशेसियन कुत्ते टामी के अंतिम कुछ दिनों का दृश्य झलक उठा। अंतिम समय में तो बेचारा टामी खड़ा भी नहीं हो पाया था। पीछे के दोनों पैरों को घसीटता-घसीटता किसी-न-किसी तरह थोड़ा आगे सरक पाता था। इतने दुर्दांत पराक्रमी कुत्ते की ऐसी करुण दशा हो गई थी।

बड़ी ही मर्मातक दशा हो गई थी। शहरीया महोदय जब उसके सिर पर हाथ फेरते तो उसी दशा में पड़ा-पड़ा बस जैसे-तैसे पूंछ भर हिला पाता था। उस स्थिति को देखकर मन मसोस उठता है। (मगर अब परिस्थितियां कुछ बदली हैं) आजकल कुत्ते की ऐसी दर्दनाक स्थिति देखने-सहने की आवश्यकता नहीं रही। पशु चिकित्सालय के डाक्टर ने पचास सीसी का नेंबूटल इंजेक्शन दिया नहीं कि बस तुरंत ही सारे दर्दों से छुटकारा मिल जाता है। बड़ी शांति से कुत्ता निद्रा में निमग्न हो जाता है। एक ऐसी निद्रा उसे अपनी गोद में समेट लेती है, जो फिर कभी टूटती ही नहीं। प्रगट में बोले, "यह तो इसमें निश्चय ही अच्छाई है कि इसके लिए शोक-संताप करने की कोई बात नहीं। बड़ी ही अच्छी मृत्यु गई है। स्वयं भी कष्ट नहीं भोगा, तथा किसी और को भी कोई कष्ट नहीं दिया। और अब तो उम्र भी हो ही गई थी।"

यह बात सदानंद हजारिका को अच्छी नहीं लगी। उनके चेहरे पर खिसियाहट के चिह्न उभर आए, "उम्र की बात तो खैर कहो मत। कितनी उम्र हुई थी भला ? अभी उस दिन ही तो साथ-साथ पैदल चलते हुए बरदलै जी के यहां विवाह का भोज खा आए थे। अगर शरीर में शक्ति-सामर्थ्य हो तो फिर उम्र को लेकर क्या चिंता करना ? भला कहो तो मोरार जी देसाई की उम्र कितनी है ?"

शरत लहकर के मन में विचार उभरा कि उनके रहते-रहते, उनके सामने ही अगर उनका जेठा बेटा कानू भी इसी तरह की चिर निद्रा में बिना कोई कष्ट पाए मर जाए तो ठीक रहे। अपनी इस प्रकार की भावना पर ध्यान से विचार करते हुए वे सिहर उठे। एक छटपटाहट से बेचैन हो वे उठ खड़े हुए, "अब मुझे जाने की अनुमति दें। यहां रहकर भी मैं क्या करूंगा भला ?" चौधुरी की दोनों बेटियां तो घर के भीतर थीं, अतः चौधुरी के छोटे जामाता रमेन को सामने देख उसी से जाने की अनुमति मांगी। "और करोगे भी क्या ? अरे जन्म होने से तो मृत्यु होना निश्चित ही है।"

रमेन ने सिगरेट का लंबा कश खींचकर जो ढेर सारा धुंआ मुंह में भर लिया था उसे अभी बाहर फेंक ही नहीं पाया था, अतः लहकर की बात का कोई उत्तर न देकर मुंह चापे-चापे ही वहां से परे चला गया। उसके ऐसे आचरण पर अवाक और विक्षुब्ध होकर उसकी ओर देखते-देखते लहकर धीरे-धीरे उनके मकान की चौहद्दी से बाहर चले गए।

उधर दूसरी ओर युवकों की मंडली चेष्टा करके भी यथोचित गंभीरता बनाए नहीं रख पा रही थी। (उन्हें इस बात का अहसास भी था) अतः उनके हाव-भाव-आचरण से किसी प्रकार की अप्रिय हड़बड़ाहट प्रगट न होने पाए इसके लिए वे जो दम साधे कोशिशें कर रहे थे, उससे उनके चेहरों के भाव सहज-साधारण भाव-मुद्रा से कुछ अद्भुत प्रकार के हो गए हैं।

औरों की बातचीत की रफ्तार के चलते मदन दास अपने लिए कोई मौका नहीं निकाल पाए थे। अतः जैसे ही सुयोग हाथ लगा उन्होंने उसे तुरंत लपक लिया। "मेरे चाचा जी की भी ठीक ऐसी ही घटना है। रात्रि की बेला में सबके भोजन-भाजन कर चुकने के बाद उन्होंने परिवार के सभी लोगों को अपने पास बुलाया, फिर शशी पंडित जी को बुलाकर गीता पाठ कह सुनाने को कहा। उनके इस आचरण से हम सभी आश्चर्यचकित थे कि कर क्या रहे हैं ? रात के अंतिम पहरों में अचानक बोल पड़े, 'मुझे घर से बाहर निकाल ले चलो।' यह कैसी बात है भाई ? अच्छे भले चंगे आदमी हैं। सभी से बातचीत कर रहे हैं। भगवान के नाम का जाप कर रहे हैं। फिर किसलिए कोई बाहर ले जाए ? परंतु तभी उन्हें भयानक क्रोध आ गया, 'तुम लोग सुनते क्यों नहीं ? क्या कर रहे हो ? अरे मेरे जाने का समय आ पहुंचा है। जल्दी से मुझे बाहर निकालकर भूमि शय्या पर लिटाओ।' पकड़-धकड़कर उन्हें बाहर निकाला गया और तुलसी के चौरे के पास लिटाया गया। सभी को भजन-कीर्तन करने को कहा। स्वयं भी साथ-साथ ओठ हिला-हिलाकर कीर्तन करने लगे। नारायण, ना-रा-य-ण। बस, सब कुछ समाप्त।"

किसी ने विचार व्यक्त किया कि पुण्यात्मा मनुष्यों की मृत्यु इसी भांति होती है। परंतु किसी ने बस विरोध करने की गरज से ही विरोध किया, "कल के समाचार-पत्र में पढ़ा कि मध्यप्रदेश का कोई एक खूंखार कुख्यात डकैत मुठभेड़ में पुलिस की गोली लगते ही तुरत मर गया। सो, वह महापुण्यात्मा था क्या ?"

रमेन एकाएक ख-ख-ख-ख हंस पड़ा, परंतु तभी अचकचाया-सा चारों ओर का गंभीर वातावरण देख वह तुरंत ही गंभीर मुद्रा बनाकर शांत भाव से रहने की कोशिश करने लगा।

चौधरी के शव को श्मशान ले जाने में काफी देर होगी। कोई आदमी इसके लिए एक भाड़े का ट्रक लाने गया है, परंतु अभी तक लेकर लौटा नहीं। आवश्यकता से बहुत अधिक रुपए देने पर भी बहुत से लोग इस तरह के काम के लिए अपना ट्रक देना पसंद नहीं करते।

रबीन शहरीया तो चुपके से सरक गए। अधिक उम्र के बड़े-बुजुर्ग लोग तो एक-एक कर धीरे-धीरे वहां से चले गए। हां, सदानंद हजारिका साहब घर की चौहद्दी के मुख्य द्वार से बाहर निकल जाने के बाद भी एक बार फिर अंदर लौट आए। अचानक ही उन्हें एक जानकारी पा लेने की दबाई न जा सकनेवाली उत्सुकता हुई। रमेन को सामने देखकर उसके बिलकुल पास सटकर उन्होंने पूछा, "क्यों भाई ! इस मकान का क्या करोगे ? बेच दोगे क्या ?"

रमेन उनकी ओर एक मेढ़क की तरह स्थिर दृष्टि से निहारता भर रहा, कोई उत्तर नहीं दिया उसने। उसके ऐसे व्यवहार से क्षुब्ध होकर हजारिका साहब फिर बाहर चले गए। वैसे अगर सस्ते में पाते तो वे स्वयं ही इसे खरीद लेते तो अच्छा होता।

बड़ी सावधानी से पांव दबा-दबाकर कदम रखते हुए वे निवारण कुमार साहब चौधुरी के मकान के सामने जा पहुंचे। मुख्य द्वार के अंदर न घुसकर फाटक की उपरली लकड़ी पर कुहनी टेककर खड़े हो रहे। दोपहर से ही शराब पीकर नशे में चूर हो मस्त पड़ा है। दुबली-पतली कद-काठी का कमजोर चेहरेवाला आदमी, मुंह कुछ फूला-फूला, आंखों की दृष्टि धूसर-धूसर सी अस्पष्ट, आंखों के कोए के किनारे कीचड़ चिपका पड़ा है।

"तो इसका मतलब कि चौधुरी चला गया ? मर गया है न ? वाह क्या खूब मजे की बात है।"

फाटक के ठीक सामने इस तरह खड़े हो रहने पर अंदर जाने और बाहर निकलने में लोगों को असुविधा होती है। किसी ने कुछ कहा तो कुमार साहब हड़बड़ी में कुछ इंच परे हट गए। फिर मूड़ी हिला-हिलाकर वे अपनी मस्ती में हंसने लगे।

मुझसे अभी उस दिन भी कहा था, "कुमार साहब ! अब उम्र काफी हो चुकी है। यह सब अब छोड़ दीजिए। रास्ता-घाट में झूमते, हिलते-डुलते, लुढ़कते हुए घूमना-फिरना अब ठीक नहीं; गाड़ी-मोटर टक्कर मारकर गिरा जाएंगे, फिर तो जान पर ही बन आएगी। मैंने तुरंत उत्तर दिया था, इस बात को लेकर तुम चिंता मत करना। तुमसे पहले मैं नहीं जाने का। तुम्हें शमशान में ले जाकर जलाकर तुम्हें पहले उस लोक में भेजकर तब उसके बाद ही मैं जाऊंगा। कहो, ठीक बात कही थी कि नहीं ?" कहकर निवारण चौधुरी फिर अपनी आंखों से बहे आ रहे आंसुओं को पोंछने लगे। जो कोई भी उनके करीब से गुजरता होता, उसे ही झपटकर पकड़ लेते और उसे समझाने की कोशिश करते, "समझ रहे हैं न। चौधुरी एक महापुण्यात्मा मनुष्य थे। मेरी तरह के थोडे ही थे ? क्यों पड़ा रहेगा जी, क्यों यहां पड़े-पड़े सड़ेगा ? झटाझट मस्ती में कदम बढ़ाता हुआ विदा हो गया। हमीं पड़े रह जाएंगे। अगर यूं पड़े नहीं रहेंगे तो फिर कष्ट-दुर्गति कौन भुगतेगा ?"

इस बीच दो लड़के जो बाजार गए थे वे श्मशान में काम आनेवाली सामग्री लेकर आ गए। फाटक के सामने ही इस तरह उसे घेरकर खड़े होने के कारण एक आदमी ने क्रुद्ध होकर कुछ कड़े स्वर में उन्हें कुछ हड़काया, "ठीक है, ठीक है, देखूं तो जरा। यहां से तनिक हटिए भी। रास्ता छोड़ दीजिए।"

बूढ़े लोग इस बीच अपने-अपने घर जा चुके थे। निवारण कुमार मौका देखकर सहज-सरल चाल चलते हुए एक पातबहार पौधे की दूसरी ओर आड़ में गए और पाकेट में से एक चिपटी सी छोटी बोतल निकालकर थोड़ी सी शराब पी और डकार ली। रमेन को अपने सामने ही खड़ा पाया तो उसके कंधे पर हाथ रखकर अपने लड़खड़ाते कदमों को डगमगाने से बचाया। बोले, "समझ रहे हो, अरे तुम लोग नहीं जानते, मगर मैं अच्छी तरह जानता हूं। इस प्रकार का मनुष्य अब और कोई दूसरा नहीं पा सकोगे। मनुष्य ही क्या ? हर तरह की वस्तुओं के गुण अब क्रमशः घटते

ही जा रहे हैं। भगवान ने भी अब इस प्रकार के गुणवान मनुष्यों की रचना करना बंद कर दिया है।" उनकी बात सुन पहले तो रमेन ठठाकर हंस पड़ा, परंतु तुरंत ही सकपकाकर चारों ओर देखा तो फिर गुरु-गंभीर मुद्रा बनाए रखने की कोशिश करने लगा।

चौधुरी के शव को ट्रक पर चढ़ा दिया गया। अत्यंत शांत-धीर, गंभीर भाव से आंचल के छोर से आंखों के आंसुओं को पोंछते-पोंछते रानू मुख्य द्वार पर आकर ठिठककर खड़ी हो गई। अत्यंत विकलता से चिल्लाते-चीखते हुए अनीता रोने लगी। दो स्त्रियों ने दो ओर से उसे पकड़ लिया। हालत ऐसी थी अगर वे जरा सा भी छोड़ दें तो वह धरती पर लुढ़क पड़ेगी।

ट्रक चलने को हुआ तो अचानक ही ढहते-ढिमिलाते हुए पीछे से उस पर चढ़ने के लिए निवारण कुमार ने जो चेष्टा की तो वे सचमुच ही लुढ़ककर गिर गए। बड़ी तेजी से कुछ लोगों ने झपटकर उन्हें खड़ा किया। कुछ लोग तो आग-बबूला होकर उन्हें डांट-डपट भी करने लगे। तब बड़ी कातर नजरों से टुकुर-टुकुर निहारते हुए कुमार साहब विनती करने लगे, "अरे भाई ! मैंने चौधुरी जी को वचन दिया था न !"

"क्या वचन दिया था ?"

"यही कि उन्हें श्मशान ले जाकर, उन्हें चिता पर जलाकर, फिर बाद में मैं ऊपर जाऊंगा।"

लोग उन पर बिगड़ने लगे। तभी रानू ने आकर स्थिति संभाली, "देखो, इन्हें उठाकर ऊपर चढ़ा लो। अरे हल्के-हल्के, सावधानी से, संभाल के। देखना, कहीं कोई धक्का न लगे, उन्हें तनिक भी ठेस लगी तो तकलीफ होगी।"

दो

निवारण कुमार जिन दिनों कलकत्ते में थे, उनके संगी-साथी उन्हें 'कुमार साहब' कहकर पुकारते थे। उस जमाने में भूदेव चौधुरी वगैरह अन्य सारे युवक धोती-कमीज पहनते थे और उनके पैरों में बस हर एक मौके पर इस्तेमाल करने लायक बस एक जोड़ी काबुली सैंडिल भर होती थी। सैंडिल का फीता एड़ी के पास पैरों के पीछे से लाकर बांधे जानेवाले फीते से बांधा जाता था, परंतु उनके सैंडिलों के फीते कभी पीछे से घुमाकर नहीं बांधे जाते थे, बराबर आगे की ओर ही मुड़ी हुई अवस्था में रहते थे। जाड़े के समय भूदेव चौधुरी रेंड के पत्तों पर पले रेशमी कीड़ों से तैयार मोटे-मटमैले किस्म की असमिया सिल्क की एक चद्दर लपेट लिया करते थे। परंतु उस जमाने से ही निवारण कुमार सूट-बूट-टाई में सजे-धजे पूरे अंग्रेज साहब बने

रहते थे। पढ़ने के लिए कक्षाओं में जाने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। सिगरेट का डिब्बा हाथ में लिए बराबर सैर-सपाटा करते रहते थे। वे लोग कलकत्ते में अपने महाविद्यालय के जिस छात्रावास में रहते थे, वहां की प्रशासन-व्यवस्था बड़ी ढीली थी। और निवारण साहब तो और भी अनियंत्रित थे। छात्रावस्था से ही उन्होंने शराब पीना शुरू कर दिया था। छात्रावास का चौकीदार तो कुमार साहब का परम आज्ञाकारी सेवक था। हां, मन-माफिक बख्शीशें भी उनसे खूब पाता था।

भूदेव चौधुरी और निवारण कुमार दोनों ही दो विरोधी छोरों पर स्थित दो भिन्न-भिन्न लोकों के प्राणी थे। अतएव भूदेव चौधुरी की निवारण कुमार से घनिष्ठता होने की कोई संभावना ही नहीं थी, फिर भी उनके बीच काफी घनिष्ठता स्थापित हो गई। आरंभ में विश्वजीत चालिहा नामक एक मित्र भूदेव को कुमार साहब के छात्रावास में लिवा ले गया था। उसी ने चौधुरी का परिचय निवारण बाबू से करवाया था। कुमार साहब का एक विशेष गुण था। देखते-देखते ही वे तुरंत ही सभी को अपना बना लेने में समर्थ थे। उनका हाव-भाव, बात-व्यवहार ऐसा अपनत्व भरा था कि प्रत्येक साथी यह समझता था कि कुमार साहब सचमुच ही उनकी भलाई की चिंता करते हैं। उन्हें दिलोजान से चाहते हैं। ऐसा नहीं कि आंखों के सामने से दूर हुए नहीं कि भूल गए। आंखों से परे हो जाने पर भी वे मन से परे नहीं करते थे।

एक बार आस्ट्रेलिया की सर्विस टीम के साथ भारतीय टीम का क्रिकेट मैच होने को था। उसका एक पूरे सीजन का टिकट कटवाकर उसे ले चौधुरी के छात्रावास में आकर कुमार साहब स्वयं दे गए, "अरे देख लो चौधुरी ! ऐसा बढ़िया सुयोग हमेशा नहीं मिलता।"

उनकी वह बात खांटी सच थी। इतने विख्यात खिलाड़ियों का मैच चौधुरी ने जीवन में बस उसी एक बार ही देखा था। आस्ट्रेलियाई दल में थे हेशेट, मिलार, बाकी के नाम अब याद नहीं रहे। भारतीय दल में मर्चेंट, हजारे, अमरनाथ, मुश्ताक अली आदि उस युग के सभी विख्यात खिलाड़ी थे। अपनी उम्र के इस छोर पर पहुंच चुकने पर भी क्रिकेट खेल के संबंध में बात करनी होती है, तो चौधुरी उसी मैच की ही बातें करते हैं। मुश्ताक अली दौड़कर, आगे बढ़कर कैसे गेंद फेंकते थे, वह दृश्य अभी भी उनकी आंखों के सामने कौंध उठता है।

बाद में उनकी पारस्परिक घनिष्ठता इतनी बढ़ गई कि चौधुरी को कुमार साहब 'तुम' कहकर पुकारने लगे थे। गांवबूढ़ा (मुखिया) कह-कहकर चिढ़ाते भी थे। मजाक करते हुए कहते थे, "भाई ! क्या गजब संत महात्मा की सूरत पाई है तुमने। अगर किसी एक आदमी की अपने हाथों हत्या करके तुरंत ही आकर अपनी यह चद्दर अपनी देह पर लपेट लो तो फिर जिसने अपनी आंखों से हत्या करते समय देखा था, वह भी विश्वास नहीं कर सकेगा कि तुमने हत्या की है।"

कुछ दिनों बाद कुमार साहब वह छात्रावास छोड़ने को बाध्य हो गए। एक

बहुत ही अप्रिय घटना घट गई थी। सुनी-सुनाई बात है, कहां तक सच है—चौधुरी बता नहीं सकते। कुमार साहब और अनंत नाम के एक और लड़के ने शराब पीकर छात्रावास के पास एक आदमी के मकान में घुसकर काफी कुछ लफड़ा कर दिया था।

उस घटना के बाद फिर चौधुरी निवारण कुमार से मिल नहीं पाए। पूरे चालीस वर्ष बीत जाने के बाद फिर यहीं उनसे मुलाकात हो सकी। अपनी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के बाद चौधुरी शहर के बाहर के इलाके में घर बनवाने लगे। वह भी उनसे तो हो ही नहीं पाता। वह तो दिवाकर दास और गजानन राय जैसे परिचित मित्र थे, जिन्होंने इस बीच अपना घर बनवाना शुरू कर दिया था। उन्हीं लोगों ने बार-बार जोर-जबरदस्ती करके अपने पड़ोस में ही जमीन का एक टुकड़ा उन्हें खरीदवा दिया। इसके अलावा मकान बनाने के लिए जिन सब चीजों की जरूरत होती है, उस सबका भी जुगाड कर दिया। तभी, नहीं तो अगर उन लोगों का प्रोत्साहन और पग-पग पर सहायता न मिली होती तो भूदेव चौधुरी में इतना माद्दा तो था नहीं, जो अपनी चेष्टा से मकान बनवाते। उस दशा में तो उनका मकान कभी बनना ही नहीं।

चौधुरी ने इस तरह जो अपना मकान बनवाया था, वहां एक दिन भरी दुपहरी में निवारण कुमार चौधुरी आ पहुंचे। पहुंचे भी क्या, शराब पीकर नशे में चूर थे। मुख्य द्वार पर खड़े होकर कभी इधर कभी इधर ढलते-लुढ़कते झूम रहे थे। पहनावे में नीचे एक मैली-कुचैली धोती और ऊपर गेरुए रंग का मोटे खद्दर का कुर्ता भर था। सर पर बिना कंघी किए उलझे-पुलझे पके सफेद बाल। चौधुरी ने उन्हें इस रूप में देखा, समझा कि कुछ मांगने-जांचने आया होगा सो पूछ बैठे, "क्या चाहिए ?"

उनके प्रश्न का उत्तर न देकर वह आदमी तो चौधुरी की ओर अपलक दृष्टि से एकटक निहारता ही जा रहा है। चौधुरी तो घबरा उठे। फिर उन्हे क्रोध भी उमड आया। लेकिन तभी वह आदमी बड़े सयाने व्यक्ति की तरह मुस्कुरा उठा। "क्यों तुम गांवबूढ़ा ही हो न ?" फिर क्या ? फिर तो कलकत्ते के जीवन का एक अंश ही जैसे चौधुरी की कोठरी मे घुस आया—"अरे कुमार साहब ! अरे आइए, आइए।"

कुमार साहब को ऐसी दशा में देख उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। परंतु वे अपने मन के भाव को प्रगट नहीं होने देना चाहते थे, अतः बातचीत में, व्यवहार में, आंखों और चेहरे के हाव-भाव में उनके मन के भाव प्रकट न हो सकें, इस दृष्टि से विशेष सतर्क थे। बड़ी सजगता से वे कुमार साहब के बिलकुल करीब जाकर कोई बात नहीं कर सके।

कुछ दिनों बाद दिवाकर दास ने उन सारी परिस्थितियों को खोलकर चौधुरी को समझाया। बतलाया कि चौधुरी समेत उन तमाम लोगों ने जो अपने-अपने मकान बनाने के लिए पूरी कालोनी की जमीन ली है, वह सारी-की-सारी एक समय कुमार

साहब की ही संपत्ति थी। सो सारी संपत्ति शराब पी-पीकर ही नष्ट कर डाली। वैसे कहने को तो हम लोगों ने यह जमीन नव बरा से खरीदी है। परंतु बरा इतनी जमीन के मालिक भला कैसे हो गए थे ? दरअसल केवल दो हजार रुपए कुमार साहब को उधार में देकर बरा ने उनकी यह सारी जमीन-जायदाद हथिया ली थी।

कुमार के संबंध में इस तरह की ढेर सारी बातें जानकर भी चौधुरी कुमार साहब को पसद करते थे। क्योंकि उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं थी। किसी बात का कोई क्षोभ नहीं, अथवा कोई पछतावा नहीं। इतनी सारी संपत्ति नष्ट-भ्रष्ट हो गई, इस बात को लेकर कोई चीख-चिल्लाहट नहीं। बिना किसी बाधा-विरोध के अपनी हालत को, जैसी भी है, सहज स्वीकार कर लिया है। बस सीधा सा जवाब, "अरे भाई, सब अपने भाग्य का लेख है। जो भाग्य में बदा है, वही तो होगा, इसमें फिर मैं ही क्या कर लूंगा और तुम भी भला क्या कर सकोगे ?"

"वाह ! क्या खूब तर्क निकाला है। सारी संपत्ति तो शराब पी-पीकर बरबाद कर डाली, और दोष मढ़ दिया भाग्य पर।"

"अरे भाई ! यह शराब पीने की आदत भी तो भाग्य का ही लेख है। वस्तुतः मेरे ललाट में लिखा ही था कि शराब पी-पीकर बाप-दादों की जुटाई सारी संपत्ति नष्ट कर डालूंगा। सो वही तो किया है।"

अब इस आदमी को समझाने-बुझाने से क्या लाभ ?

कुमार साहब इसी तरह कभी-कभी अचानक ही चौधुरी के घर आ धमकते हैं। कभी तो नशे में धुत्त हो आते हैं, तो कभी पूरे होशो-हवास में स्वस्थ मन-मस्तिष्क मे। अकसर ही चौधुरी को चिढाते हैं, "तुम भी पिओगे थोड़ी सी ? ले आऊं ?"

"देखो कुमार ! खबरदार जो फिर ऐसी बात कही।"

"इतने उत्तम प्रकार का यह अमृत चखे बिना ही मर जाओगे। हाय-हाय, कितने दुख की बात है ! अरे भाई, बड़ी उम्दा किस्म की खास शराब ले आऊंगा, तुम्हारे लिए। तुम्हें खराब किस्म की चीज हरगिज नहीं दूंगा।"

"मुझे तुम्हारी उस अच्छी-से-अच्छी चीज की भी कोई जरूरत नहीं है।"

चौधुरी को इस तरह चिढ़कर झुंझलाते देख निवारण कुमार साहब को बड़ा मजा आता था।

"अरे भाई, तुम अगर जमकर शराब चढ़ा लो तो भी तुम्हारे लिए कोई चिंता की बात नहीं। मैं अगर पूरी तरह स्वस्थ-दुरुस्त हो दृढ़तापूर्वक सीधी चाल से भी सड़क पर चलता रहूंगा, तो लोग मुझे नशे में धुत्त हो लुढ़के-पुढ़कते, ढहते-ढिलमिलाते हुए जाता हुआ ही देखेंगे और तुम अगर शराब पीकर नशे में चूर हो सड़क पर गिर पड़ोगे, तो भी लोग यही कहेंगे कि तुम रास्ते में ठोकर लग जाने से गिर गए थे।"

उस दिन भी कुमार ने चौधुरी को चिढ़ाना शुरू किया, "क्यों जी, चलेगी थोड़ी-सी ? आज बड़ी उम्दा शराब हाथ लगी है।"

"वाह क्या कहने ! अब इस बुढ़ापे में बस यही होना भर तो बाकी रह गया है।"

एकाएक ही कुमार साहब फिर बड़ी गंभीर मुद्रा में हो गए। "क्यों जी, तुम यह बुढ़ापे की बात क्यों करने लगे ?" फिर तो कुमार और उत्तेजित हो गए। यद्यपि उस समय उस कमरे में वहां और कोई नहीं था, तथापि वे चौधुरी के बिलकुल करीब जाकर, सटकर कानों में फुसफुसाते हुए कहने लगे, "मैं जब बी.ए. में पढ़ने के लिए कलकत्ता जा रहा था, उसके ठीक दो दिन पहले की ही तो बात है। उस समय मेरे पिता की उम्र पूरे साठ वर्ष की हो चुकी थी। परंतु हमारे घर में जो प्रमिला नाम की काम करनेवाली लड़की थी, उसकी उम्र उस समय कितनी रही होगी भला ? यही कोई तेरह या कि चौदह वर्ष, बस। बड़ी ही कमसिन, खिलती-खिलती किशोरी, देखते ही प्यार उमड़ आए ऐसी प्यारी सूरतवाली। उसके मुंह पर बराबर ही मुस्कराहट बिखरती रहती। ऐसी नाजुक और कमसिन लड़की पर मेरे पिताजी ने बलात्कार कर डाला। पिता जी के लिए यह सब तो कोई सोचने-विचारने की चीज ही नहीं थी। परंतु उस बेचारी की तो ऐसी हालत हो गई, उसे इतना खून बहने लगा कि अंततः पिताजी के एक अत्यंत स्नेही मित्र डा. घोष को बुलवाना पड़ा।"

उस दिन की बातचीत के बाद कुमार साहब काफी समय तक इधर नहीं आए। परंतु फिर एक दिन सांझ को अचानक ही आ धमके। घर के दरवाजे पर आकर नहीं, बल्कि सामने की सड़क पर ही खड़े होकर जोर-जोर से चौधुरी को पुकारते जा रहे थे, "अरे ओ गांवबूढ़ा, ओ गांवबूढ़ा !" उनकी चीख-पुकार सुनकर चौधुरी बाहर निकल आए और उन्हें प्यार से बुलाया, "आइए, आइए। घर के अंदर तो आइए।" परंतु कुमार साहब सड़क पर से ही ऊंचे स्वर में पूछने लगे, "आज शराब पिओगे न ? आज मेरे पास बड़ी ही फर्स्ट क्लास की शराब है।"

"तुम अंदर तो आओ, भाई ! आओ भी।"

"क्यों आऊंगा तुम्हारे पास ? महा बेरसिक आदमी ! तुम्हें किसी भी रस को चखने की चाह ही नहीं होती। जाने कहां का रसहीन आदमी है तू।"

"ठीक है। मेरे घर के अंदर नहीं आना चाहते, बाहर-ही-बाहर चले जाना चाहते हो, तो ठीक। जाओ। परंतु देखना, जरा सावधानी से जाना। नहीं तो मोटर-गाड़ी वगैरह धक्का मारकर सड़क पर ही गिरा जाएगी।"

इतना सुनते ही कुमार साहब ने छाती तानकर सीधा खड़ा होने की कोशिश की। "अरे जा, जा। कौन मारेगा मुझे रे ? पिछले पचास वर्षों से शराब पीता आ रहा हूं। और तू अपने को समझता क्या है ! तुमने कभी शराब नहीं पी, कभी पिओगे भी नहीं, तो शराब न पीने से तुम कितने अधिक समय तक जीओगे, मैं भी देखूंगा।

अरे ! देखना, तुम्हारी मृत्यु के बाद तुम्हें श्मशान ले जाकर तुम्हारी चिता पर लकड़ियां रख तुम्हें जला लेने के बाद ही मैं जाऊंगा। विश्वास न आ रहा हो, तो अपनी डायरी में लिख रखो। जो मैंने कहा है वह ठीक-ठीक न उतरे तो मिलाकर देख लेने के बाद ही मुझसे कहना।''

तीन

कला और शिल्प के क्षेत्र में किसी दूसरे का अनुकरण करना अच्छा नहीं होता। किसी विशेष क्षेत्र में प्रतिष्ठा पाए हुए किसी महान प्रतिभाशाली व्यक्ति का अंधानुकरण न करके अपनी निजी शक्ति के सामर्थ्य के अनुरूप अपने निजी वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अगर कोई कलाकार कार्य करता है, तो भले ही वह अपेक्षाकृत कम प्रतिभावाला हो, गुण-विशेषज्ञों के समाज में वह भी समादर पाता है। अनुकरण करने में प्रवृत्त होने का मतलब ही यह है कि व्यक्ति अपनी प्रतिभाहीनता, अपनी कमजोरी को स्वीकार कर चुका है। इससे तो उसकी अपेक्षा उस दूसरे से तुलनात्मक दृष्टि से मूल्यांकित करने को बाध्य होना पड़ता है। पश्चिमी बंगाल के एक साहित्य-मर्मज्ञ विद्वान ने एक बार भूदेव चौधुरी को बतलाया था, ''रवींद्र युग में रवींद्रनाथ ठाकुर की कविताओं का अनुकरण कर अनेक कवियों ने ढेर सारी कविताएं लिखी थीं। उनमें से कुछ ऐसे थे जिन्होंने सचमुच ही बहुत अच्छी कविताएं रची थीं। परंतु उनमें से कोई भी विशेष नाम नहीं कमा सका। जब कि उसी युग में कवि नजरुल इस्लाम ने उस धारा से अलग हटकर, बिल्कुल भिन्न शैली में भिन्न प्रकृति की कविताएं रची थीं। इसी से वे नाम कमा सके थे। रवींद्र की तरह उन्हें भी सम्मान प्राप्त हो सका था।''

भूदेव चौधुरी की छोटी बिटिया अनीता बराबर ही उनसे जिद करती रहती है कि ''आप कुछ लिखते क्यों नहीं ? पूरे-के-पूरे दिन बस यूं ही बैठे रहते हैं। अरे और कुछ नहीं लिख सकते तो अपनी एक आत्म-जीवनी ही लिख डालिए न।''

''पागल हो गई है क्या ? लिखूंगा कहने मात्र से अगर कोई लिख ले, तब तो फिर कोई समस्या ही नहीं थी।''

''क्यों ? तुमने पहले कहानियां नहीं लिखी थीं क्या ? लिखी थीं न ? सो भी बहुत अच्छी कहानियां लिखी थीं !''

''ठीक है, लिखी थीं परंतु अच्छी लिखी थीं, इसका क्या ठिकाना ? तुम लोग तो उसे अच्छा बतलाओगी ही। खराब तो कहोगी नहीं ?''

''नहीं पिताजी ! ऐसी बात नहीं। अब आप टालिए नहीं। सचमुच लिखिए। लिखना आरंभ कर दीजिए। आपके लिखने से चाहे और कुछ न हो, मगर आप लोगों

के जमाने का एक प्रामाणिक विवरण अवश्य ही सुरक्षित रह जाएगा।''

''तुम्हारी बात ठीक है, मगर माँ ! अब लिखने की मेरी उम्र नहीं रही।''

''अरे वाह ! लिखने की भी कोई उम्र होती है ? बार्टेंड रसेल ने नब्बे वर्ष की अवस्था में आत्मजीवनी नहीं लिखी थी क्या ?''

कहां तो बार्टेंड रसेल साहब और कहां भूदेव चौधुरी ? 'कहां राजा भोज, कहां भोजवा तेली'। इस प्रकार की परिस्थिति में प्रयुक्त की जानेवाली एक बड़ी भद्दी सी अश्लील लोकोक्ति भूदेव चौधुरी को याद आ गई। परतु अपनी बिटिया के सामने तो उसे कहा भी नहीं जा सकता। अतएव वे मन-ही-मन कुनमुना कर रह गए। अनीता बोल पड़ी, ''बार्टेंड रसेल साहब की आत्मजीवनी की पुस्तक आपके पास है तो। जरा उसे अच्छी तरह उलट-पुलटकर देख लें कि उन्होंने किस रूप में लिखा है ?''

(माने यह कि जिस तरह उन्होंने लिखा है ठीक उसी का अनुकरण करते हुए आप भी लिख जाओ।) परंतु अनुकरण करना क्या इतना आसान काम है ? रसेल साहब इतने महान थे कि उन्होंने तो अपनी गलतियां, अपनी गिरावट तक की बातें, जिनसे उनके चरित्र पर भी धब्बा लगाया जा सकता है, वह सब भी बिना किसी दुराव-छिपाव के स्पष्ट कह डाला है। वे ऐसा कर सकते हैं, इसके कारण उनकी जो गगनचुंबी प्रतिभा है, लोक में उनका जो मान-सम्मान है, उसमें तनिक भी कमी नहीं आएगी। थोड़ी सी भी मानहानि नहीं होगी। लेकिन चौधुरी की अपनी जैसी प्रतिभा है, उसके आधार पर अगर वे कहानी लिखेंगे, तो उन्हें विश्वास है कि वह निहायत बचकानी किस्म की कमजोर और कौशलहीन ही होगी जिसे कम पढ़े-लिखे, कम उम्र के नौजवान लड़के ही पसंद कर सकेंगे, कहानी-शिल्प के जानकार समालोचक अथवा प्रौढ़ वय के रस-विशेषज्ञ नहीं।

जैसे-तैसे लिखने का साहस भी बांधा तो देखा कि आरंभ में ही भारी अड़चन है। जड़ में ही घुन लगा हुआ है। उनकी आत्मकथा में होगा क्या ? लिखने के लिए संबल क्या है ? कुछ भी तो तत्व की, आधार पुष्ट होने की चीज नहीं। उनका तो अत्यंत साधारण जीवन रहा है, न नीचे धरती न ऊपर आसमान। न बहुत नीचा, न बहुत ऊंचा। बिना किसी तड़क-भड़क के, विचित्रताहीन, धूल-धूसरित, जन, प्राणी-पेड़-पत्तों रहित अनंत विस्तृत परती पड़ा मैदान। कुछ भी तो नहीं है उनकी जिंदगी में। भूदेव चौधुरी अपनी सारी जिंदगानी में एक भी ढंग का उल्लेखनीय काम नहीं कर सके। अरे सबेरे-सबेरे नींद छोड़ उठे, जलपान किया, भोजन किया। दिन मटरगश्ती में गुजार दिया, फिर रात को खाट पर जा लेटे। तीन सौ पैंसठ के आगे गुणा का चिह्न लगाकर, जितने वर्ष की अवस्था हो गई है वह संख्या लिख देने मात्र से ही तो हो गया, जिंदगी भर के दिनों का लेखा-जोखा। इसमें अगर कहीं थोड़ा-मोड़ा व्यतिक्रम हो भी तो वह किसी गिनती में गिनने लायक ही नहीं। अत्यंत साधारण।

पूरे जीवन में कोई एक भी काम तो उन्होंने सुश्रृंखल रूप में, अच्छी प्रकार से करके पूरा किया नहीं। कहीं जाना हुआ तो बस पकड़ने जाने में भी सदा-हमेशा देरी ही हुई। शादी-ब्याह भी बहुत विलंब के बाद काफी देर से किया। नौकरी में भी स्थायी रूप से बहुत बाद में ही नियुक्ति पा सके। रहने के लिए जो मकान बनवाया, सो भी बहुत विलंब से, एकदम से सेवा-निवृत्त हो जाने के बाद। यह भी संभव हो सका दिवाकर दास और गजानन राय की वजह से, जो बचपन के प्राइमरी स्कूल के पढ़े हुए साथी थे। क्योंकि जब उन्हें घर बनाने की सूझी तब तक तो शहर में जमीन खरीद पाना असंभव हो गया था। इस इलाके की ओर तब कोई घर-द्वार कहीं था ही नहीं। निवारण कुमार साहब वगैरह के मकान जो बस्ती के आखिरी छोर पर थे, उनके बाद तो फिर जन-मानुषहीन विराट मैदान ही था। इस तरह निर्जन डरावने मैदान में वे दोनों मकान बनवाकर रहने लगे थे। उन्हीं लोगों ने जोर-जबरदस्ती कर वहां थोड़ी सी जमीन चौधुरी को भी खरीदवा दी। सो किसी तरह खड़ा हो सका उनका मकान। वैसे अब तो सारा मैदान इंच-इंच मकानों से भर गया है। एक छोटा-मोटा शहर ही बस गया है यहां। यहां रहनेवालों ने इसका नाम रखा है—शांतिनगर।

चौधुरी के बस दो बेटिया ही हैं, जिनमें बड़ी है रानू और छोटी का नाम है अनीता। अतएव चौधुरी को कोई बड़े मकान की जरूरत भी नहीं थी। अब तक तो दोनो ही बेटियों की शादी भी संपन्न हो चुकी है। रानू का विवाह रमेश बरुआ नामक युवक से हुआ, जो एक बड़ा ही नामी-गरामी चिकित्सक (डाक्टर) है। इसी शहर की एक बस्ती में रहता है। छोटा जमाई रमेन काकती इंजीनियर है। फिलहाल वह भी इसी शहर में है। अनीता स्वयं भी पढने-लिखने में बड़ी प्रतिभासंपन्न रही है। अंग्रेजी विषय मे एम.ए. उत्तीर्ण है। एक स्थानीय महाविद्यालय में पढ़ाती है।

दोनो बेटियों का स्वभाव एक-दूसरे से बिलकुल उलटा है। रानू को पढ़ने में कोई रुचि नहीं थी। किसी तरह बी.ए. परीक्षा भर पास कर ली। बचपन से ही वह गहन गंभीर स्वभाव की है। घर-परिवार अच्छी तरह चला सकती है। लोगों को बड़ी गंभीरता के साथ सलाह-परामर्श देती है। उसकी प्रकृति को देख-समझकर कोई भी उसके सामने उच्छृंखलता दिखाने की हिम्मत नहीं कर सकता। औरों की तो बात ही दूर, स्वयं चौधुरी भी अपनी इस बड़ी बिटिया से थोड़ा डरकर ही चलते हैं। चूंकि वह सिगरेट पीने से मना करती है। विवाह हो जाने के बाद शरीर से भी जरा मोटी-तगड़ी हो गई है, अतः लोग और भी डर-संभलकर व्यवहार करते हैं।

अनीता बचपन से ही चंचल है। पाठशाला में पढ़ने जाना होता था तो भूगोल की पाठ्य-पुस्तक, गणित की पुस्तक खोज-बीनकर मां को ही देनी पड़ती थी। एक तिनका भी तोड़कर दो टुकड़े नहीं कर सकती। अगर कोई काम करना ही पड़ जाए तो उसे संभालने के लिए उसके पीछे-पीछे एक और आदमी को लगे रहना होता

है। एक प्याला चाय बनाने जाए तो प्याला तोड़ डालेगी या कपड़े में आग लगा बैठेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। क्रोध के मारे मां भी उसे कोई काम नहीं सौंपती थी। ससुराल में जाकर अनीता को कैसी-कैसी दुर्गति उठानी पड़ेगी, वही बता-बताकर वे उसे डराती रहती थीं। मां का स्वर्गवास हो जाने के बाद तो फिर बड़ी बहन रानू ही सारा घर-बार संभालती आ रही थी।

अभी भी अनीता के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। चौधुरी के घर आने पर पहले तो घर में काम करनेवाले छोकरे योगेन को डांटना-फटकारना शुरू कर देती है। "पूरे घर में मकड़ों का जाल फैला हुआ है, मुख्य द्वार के सामने ही एक लद्दा गोबर पड़ा हुआ है, यह सब क्या है ?" फिर कमर में आंचल लपेटकर खुद ही सब कुछ ठीक करने में जुट जाती है। चौधुरी की पढ़ने-लिखने की मेज को साफ करने में जुट जाती है, उस पर रखा सारा कागज-पत्र नीचे जमीन पर उतारकर रख देती है, तभी किसी और बात मे जा लगती है, तथा इधर का काम जो अधूरा ही रह गया था, उसे भूल ही जाती है। उसके चले जाने के बाद चौधुरी फिर खुद ही कागजों के उस ढेर को उठा-उठाकर मेज पर जमाकर रखते हैं।

चौधुरी का यह मकान अभी भी अपूर्ण अवस्था मे ही पड़ा है। मकान की छत के किनारे उठी हुई लोहे के सरिए भूत की अंगुलियों की तरह आसमान की ओर उठे हुए हैं। लोगों की सलाह मानकर उन्होंने तीन मंजिला मकान बनाने के लिए तैयारी की थी और उसी के अनुरूप सारा कुछ सरजाम जुटाया था। उसी के अनुरूप काम आरंभ भी किया था, परंतु वैसा पूरा तो कर नहीं पाए। "आखिर ऐसा करने की उन्हें जरूरत ही क्या थी ? क्यों किया ऐसा ?" अब तो इस पर सोच-सोचकर हंसी आती है।

मगर अपनी एक आत्मकथा लिखना आरंभ करने में नुकसान ही क्या है ? 'उसे एक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित कर प्रचारित करना ही होगा'—ऐसी तो कोई बात नहीं। पूरी तरह से निर्धारित मापदंडों के अनुरूप वह एक आत्मकथा ही हो, ऐसा भी तो नहीं। उनके चारों ओर जो नया वातावरण है, उसके संबंध में उनकी अपनी प्रतिक्रियाओं का एक संग्रह भर भी तो हो सकता है। चौधुरी ने पहले कभी सपने में भी तो नहीं सोचा था कि बाप-दादों की पुश्तैनी जगह-जमीन, वंश-परंपरा से प्राप्त मकान-घर-आंगन को छोड़कर वे इस नई जगह पर इस तरह अकेले-अकेले आकर रहेंगे।

आरंभ में दिवाकर दास, गजानन राय और भूदेव चौधुरी, बस ये तीन लोग ही, तीन मकान बनवाकर यहां रहने लगे थे। इस तरह ये तीनों ही इस क्षेत्र के अगुवा थे। परंतु उसके बाद तो फिर अनगिनत लोग आ बसे। उनमें से अधिकतर ऐसे लोग थे, जो किसी नौकरी-चाकरी से सेवा-निवृत्त हो आए थे। सभी के मन

में शांत वातावरण में, लंबे-चौड़े आकार के खुले परिवेश में निवास करने की कामना थी। उनमें से रतिकांत कलिता, रबीन शहरीया, शरत लहकर और सदानंद हजारिका प्रमुख थे। चौधुरी के मकान के दाहिनी ओर के मकान में मदन दास रहते हैं। वह मकान आयुर्वेद महाविद्यालय (मेडिकल कालेज) के एक प्रोफेसर का है, जिसमें दास किराएदार के रूप में रहते हैं। अब तो यह इलाका एक छोटे-मोटे शहर जैसा हो गया है। इस इलाके का नामकरण लोगों ने 'शांतिनगर' के रूप में कर दिया है।

नौकरी-चाकरी से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद एक अद्भुत प्रकार की अवस्था आ उपस्थित होती है—सेवा-निवृत्त व्यक्ति के बारे में जैसे सार्वजनिक घोषणा कर दी गई हो कि इस आदमी का प्रयोजन अब शेष नहीं रहा। अब यह पूरी तरह निकम्मा हो चुका है। एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर चुकने के बाद भी भूदेव चौधुरी कोई नौकरी न मिल सकने के कारण बहुत समय तक खाली बैठे थे। इधर-उधर के अड्डों पर बैठकर गप्प-गपाष्टक लड़ाते हुए कितना समय नष्ट किया था। परंतु उस बेकारी की अवस्था में भी ऐसा भाव तो कभी भी मन में नहीं आया था कि इस धरती पर अब उनकी कोई आवश्यकता नही है। परंतु इस बार की स्थिनि तो अजीब है। जैसे कि एक घिस चुकी बैटरी, जो अपना काम कर लेने के बाद ऐसी फिसड्डी हो चुकी है कि किसी के भी किसी काम की नहीं। नौकरीपेशा जीवन का तो यही एक महा अभिशाप है। नौकरी से अवकाश प्राप्त करने का समय आने के दो वर्ष पहले से ही एक शून्यता का भाव मन मे धीरे-धीरे घुसता चला जाता है। वेतन-भत्तो में होनेवाले नए वेतनमानों के परिवर्तनों, नए-नए उच्च पदों की सृष्टि, आदि बातों के प्रति आग्रह समाप्त होने लगता है। अर्थात जीवन में अब नए सिर से नई-नई आशाओं को जगाए रखने के लिए अब कुछ भी शेष नहीं रहा। यह मनोदशा ही समाप्त होने के रास्ते की ओर लुढ़कने की शुरुआत है। किसी विशेष वस्तु या भावना की ओर मन लगाकर बराबर व्यस्त बने रह सकने से जीवन के अंतिम क्षण तक मनुष्य जीवंत बना रह सकता है। गजानन राय, रतिकांत कलिता, रबीन शहरीया जैसे लोग अभी भी अपने मन को भानेवाले विभिन्न कामों को लेकर चौबीसों घंटे व्यस्त और मस्त बने हुए हैं। भूदेव चौधुरी को जितेंद्र शर्मा की याद हो आई, जो एक बहुत बड़े पद पर प्रतिष्ठित अधिकारी थे। अब सेवानिवृत्त हो गए थे। शिक्षा विभाग की एक विशेष समिति के वे सदस्य थे। संयोग से भूदेव चौधुरी भी उस समिति के एक सदस्य थे। उस समिति की बैठकों में चौधुरी ने देखा कि तुच्छ-से-तुच्छ बातों को भी शर्मा जी इतनी गंभीरता से लेते थे कि कभी-कभी चौधुरी को भी भारी घबराहट हो जाती थी।

क्यों नहीं हो सकेगी ? आत्मकथा लिखने की कोशिश करके देखने में दोष ही क्या है ? उसे पुस्तकाकार प्रकाशित तो करना होगा, ऐसी तो कोई बात नहीं। इससे और चाहे कुछ हो या न हो, कम-से-कम यही एक काम लेकर अपने को व्यस्त

तो रखा जा सकेगा। चौधुरी अभी भी जीवित हैं, और भी कुछ समय तक जीवित रहेंगे। वे अपने मन में यह विश्वास बनाए रखना चाहते हैं कि इस ब्रह्मांड की जो रहस्यमयी गूढ़ परिकल्पना है, उसके बीच उनका भी एक निर्दिष्ट स्थान है। यह बात संभवतः सच्ची है। संभवतः ही क्यों, निश्चय ही सही है। वे क्या कोई एक यंत्रचालित खिलौना हैं कि टूट गया तो बस, सब कुछ समाप्त। समय-समय पर वे अनुभव करते हैं कि उन्हें एक सत्य का साक्षात्कार हो रहा है। परंतु अपनी इस अनुभूति पर वे दृढ़ बने नहीं रह पाते। मन में आशंका उठती है कि यह भाव उनके प्रयोजनों की प्रतिक्रिया मात्र है, अथवा वास्तविक है ? उनकी अपनी सहधर्मिणी पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। तो क्या यही उनकी जीवन-लीला की समाप्ति है ? किसी भिन्न प्रकार के जगत में उनका कोई अस्तित्व नहीं है क्या ? वे पुनर्जन्म की बात नहीं कह रहे। मृत्यु हो जाने के बाद स्वर्ग या नरक में वास करने की भावना के संबंध में भी कुछ नहीं सोचते। वे तो बस यह विश्वास करना चाहते हैं, अपने समूचे अंतःकरण से विश्वास करना चाहते हैं, कि मृत्यु के साथ-साथ ही सत्ता का भी विनाश नहीं हो जाता। अगर ऐसा न मानें तो अनंत काल तक के परिप्रेक्ष्य में जीवन के यश-अपयश, सफलता-असफलता का कोई अर्थ समझ पाना ही मुश्किल होगा। अर्थवान या अर्थहीन हिसाब-किताब बैठाने, हानि-लाभ की गणना करने वगैरह का कोई मूल्य ही नहीं रह जाएगा। यह तो अत्यंत भयावह स्थिति है, ऐसे एक वाहियात भावावेग के समक्ष आत्मसमर्पण कर बैठना तो महा विपत्तिकारक है। चौधुरी सजग हो उठे। मस्तिष्क को ठंडा और तरोताजा करने के उद्देश्य से वे बाहर सड़क पर टहलने के लिए निकल पड़े।

उस ओर से रतिकांत कलिता आ रहे हैं। इतने हड़बड़ाए हुए जैसे बहुत ही व्यस्त हों।

"कहिए कलिता जी ! कहां जा रहे हैं ?"

"अरे कुछ न पूछिए। धौरा बकेना (सफेद रंग का बछड़ा) घर पर है ही नहीं। आज वह कुबड़ा बूढ़ा गोरू चराने इधर ही ले आया था। जरूर उसी ने अपने जानवरों के झुंड में उसे भरमाकर शामिल कर लिया होगा और अपने अड्डे पर लिए चला गया होगा। बड़ा ही मक्कार बूढ़ा है वह।"

"उस गांव में खबर कर दी है ?"

"अचानक ही पहुंचने पर फिर ढूंढ़े भी कहां मिल पाएगा ? खबर तो कुछ इस तरह से करनी होगी कि कोई दूसरा न जान ले। फणी के मामा का घर उसी गांव में है। चलूं, पहले फणी को ही ढूंढ़ूं। देखूं, वह जाकर कुछ अता-पता कर पाता है या नहीं ?"

चार

सोकर, बैठकर कितना समय बिताया जा सकता है ? किताबें भी कितनी पढ़ी जाएं ? पुस्तकें पढ़-पढ़कर समय बिताते हुए भी कभी-कभी कुछ अपने को बड़ा प्रदर्शित करने का, एक प्रकार के घमंडी होने का भाव भी दिखाई पड़ता है। अपनी नौकरी से जब से सेवानिवृत्त हुए है तब से भूदेव चौधुरी की सबसे बड़ी समस्या यही हो गई है कि समय कैसे काटा जाए। और लोगों के घर जाने में भी असुविधा है। सभी-के-सभी तो उनकी तरह बेकार नहीं हैं। ऐसे व्यस्त लोगों के घर जाने पर उस घर के लोग सामने तो काफी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं, परंतु कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि शिष्टाचार प्रदर्शन में भी घर के लोगों को परेशानी हो रही है।

उधर रतिकांत कलिता की हालत यह है कि नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लेने के बाद भी वह बेहद व्यस्त है। इतनी अधिक अवस्था हो जाने पर भी उसे एक क्षण का विश्राम नहीं। बत्तखों, मुर्गियों, कबूतरों वगैरह को दुलारने-पुचकारने के काम में ही चौबीसों घंटे लगा रहता है। उन सबके ऊपर भी उसके पास हैं एक झुंड गायें। इन सबको पालना-पोसना, देखना-भालना, समय से दूध दूहना, क्या कोई साधारण काम है ? उनमें से कोई एक चट स्वभाववाली गाय पगहा तुड़ाकर कहीं भाग गई, तब तो फिर पूछो ही मत। कितना काम बढ़ जाता है। जो गायें बिसुक गई होती हैं, माने दूध देना बंद कर दिए होती हैं, उन्हें सवेरे-सवेरे दिन भर के लिए छोड़ देना होता है, जो सझा समय लौट आती हैं। अगर उनमें से कोई लौटकर नहीं आई तो फिर उसकी खोज में दौड़-धूप करनी होती है। किसी के घर के सामने के हिस्से में तो कभी किसी के बागीचे के पिछले हिस्से में कब कहां छिपी पड़ी हो, कोई ठीक नहीं। किसी की तैयार बागबानी में अगर घुसकर चरने लगी हो, तो कोई बेरहमी से पीट-पीटकर उसकी टांग भी तोड़ दे सकता है। हरे-भरे खेतों में पड़ने पर कोई पकड़कर उन्हें मवेशीखाने में भी ले जाकर बंद करवा सकता है। हाथ में एक लालटेन लटकाए-लटकाए रतिकांत कलिता आधी रात तक गायों-बछड़ों को खोजता-फिरता है। कभी-कभी तो काफी खीझ जाने पर उन्हें अच्छी सीख देने के अभिप्राय से कुछ लोग कभी कष्ट उठाकर भी उसकी गायों को बहुत दूर स्थित मवेशीखाने में ले जाकर भर्ती करवा आते हैं, करीब के मवेशीखाने में नहीं ले जाते।

कभी किसी की खेती-बारी को चर-चुरकर साफ कर देने पर उसका मालिक किसान उनके घर पर आकर गालियां सुना जाता है। अब इतनी मेहनत से उपजाई गई खेती के नष्ट हो जाने पर किसान को गुस्सा नहीं आएगा तो और क्या होगा ?

यह करियई तो महादुष्ट है। गृहस्थ अगर अपने घर के सामने के बगीचे को सुरक्षित रखने के लिए चारों ओर से बाड़ा लगाए हो और मुख्य द्वार को बंद किए हुए हो, तो भी बड़ी चतुराई से द्वार खोल लेती है। महा बज्जात है। धूर्त इतनी

कि कोई भी पकड़ न सके, छटपट ऐसी कि कोशिश करने पर भी कोई जरा सा भी कोंच न पाए। लाठी-डंडा लेकर किसी को अपनी ओर आते देखते ही बिजली के झटके से छलांग लगाकर गायब हो जाती है। इतनी हड़बड़ी में भागते-भागते भी एक गाल मारकर गेंदे के फूलों का हरा-भरा पौधा उखाड़ ले जाती है। अगर कोई मुख्य द्वार की ओर से ही आ घेरे, तो अनायास ही छलांग लगाकर बाड़े को तोड़ती हुई दूसरी जगह से बाहर भाग जाती है। उसकी ऐसी दुष्टता भरी हरकतों के चलते लोग रतिकांत बाबू के घर आ-आकर अपना दुखड़ा रोते हैं। कभी-कभी अत्यंत उत्तेजित होकर कुछ जली-कटी भी सुना जाते हैं। जैसे कि 'उसके मालिक के घर के लोग जितने बज्जात हैं, उनकी यह गाय भी वैसी ही महा बज्जात है।' कभी-कभी सलाह भी सुना जाते हैं कि—'अगर संभालकर नहीं रख सकते तो फिर गोरू पालना ठीक नहीं है, समझे न ?'

भूदेव चौधुरी की जब नई-नई नौकरी लगी थी, तभी उनकी धर्मपत्नी ने सलाह दी थी, "एक गाय क्यों नहीं पाल लेते ? कम-से-कम उससे शुद्ध दूध तो पाते। यह बुद्धप्रसाद जो रोज दूध दे जाता है, उसमें कितना पानी मिलाकर देता है, जानते हो ? मैं तो बता भी नहीं सकती। पानी भी कहां का, कैसा मिलता है इसका भी क्या कोई ठिकाना है ? इधर तो कई दिन से ऐसा खराब दूध दे रहा है कि चाय में डालो तो उसका रंग ही कैसा बदरंग हो जाता है। किसी भले आदमी को उस तरह की चाय का प्याला देते हुए दिल में बहुत कचोट होती है।"

"अरे ठहरो भी। गाय रखोगी ? उसकी देखभाल कौन करेगा ?"

"अरे बीरेन तो है ही। वह भी तो जाने कितने दिनों से एक गाय पाल लेने के लिए कहता आ रहा है।"

"अच्छा तो उसके भरोसे ? अगर वह कहीं अचानक ही फट से गायब हो गया, तब क्या होगा ? अरे घर में काम करनेवाले छोकरे का क्या विश्वास ? अभी भी देखती हो कि महीने में एक बार अपने घर जाए बिना वह नहीं मानता। सो बीरेन की बात तो छोड़ो ही।"

"वाह ! इस तरह की कोई कठिनाई आ ही गई, तब एकाध दिन क्या तुम नहीं संभाल सकोगे ?"

"माफ करना जी ! मैं यह सब नहीं कर सकता। पगहा तुड़ाकर कहीं भाग गई तो रास्ता-घाट, अली-गली ढूंढ-ढांढकर मैं गाय हांककर नहीं ला सकता।"

"और सभी लोग तो पाले हुए हैं।"

"अब रहने भी दो। सभी जो कुछ करते हैं, वह सब कुछ क्या मुझे भी करना होगा ? अरे यह सब बस लोगों की गाली-गलौज सुनने की एक कुबुद्धि ही है।"

"तो इतना गुस्सा क्यों होते हो ? मैंने तो बस अपनी बात भर कही।"

"ठीक है, अब और कभी मत कहना।"

प्रत्येक सांझ की बेला मे चौधुरी की भेंट प्रायः ही रतिकांत कलिता से हो जाती है।

"कहां जा रहे हैं, कलिता जी ?"

"कुछ न पूछें, साहब ! मुंगिया का अभी तक कुछ अता-पता नहीं। आप तो जानते हैं कि वह तो कभी इतनी देर नहीं करती। चाहे जहां कहीं भी रहे, अंधेरा होने के पहले घर पर आकर जरूर हाजिर हो जाती है। जब कि आज इतनी देर हो गई, फिर भी अभी तक नही आई। कहां चली गई भला ?"

इस व्यापक संसार में पृथ्वी पर जाने कितनी एक-से-एक चमत्कारपूर्ण घटनाएं घटती जा रही हैं, जिससे सभी आंदोलित हो उठते है। युद्ध, विप्लव, प्राकृतिक आपदाए, विपत्तियां, परंतु रतिकात कलिता को उनकी ओर भौंह उठाकर देखने की फुरसत नहीं है।

"कहा जा रहे हैं, कलिता जी ?"

"कुछ न कहें। उस भोंदा बुड्ढे को ढूंढने जा रहा हू।"

"क्यों भाई ! उसकी क्या जरूरत आ पड़ी ?"

"अरे करियई को भोकोला हो गया है।"

"भोकोला क्या होता है, भाई ?"

"यही कि गला फूल जाता है। नटई से दाना-पानी कुछ भी अंदर नहीं जा पाता, एक गाल भी नही खा पाती है। उठकर खडी भी नहीं हो पाती है।"

"तो फिर पशु चिकित्सालय के डाक्टर साहब को बुलाकर क्यों नहीं दिखाते ?"

"उससे कोई लाभ नहीं। मेरी एक बछिया ने मा का दूध पीना छोड़ दिया था, तो उसे दिखाने के लिए वही से डाक्टर बुला लाया था। पचास रुपए उसकी आवभगत में भी खर्च कर दिए। पर कोई लाभ नहीं हुआ। अंततः मेरी बछिया मर ही गई।"

रतिकांत कलिता बराबर व्यस्त हैं। एक काम में लगे हुए हैं। अगर ऐसा न हो तो स्वयं भी अशांति में तड़फड़ाते रहते, घर-परिवार में भी अशांति पैदा किए रहते। वैसे उनके घर-परिवार की अवस्था बहुत अच्छी है। डिप्टी इंस्पेक्टर के पद पर नौकरी करते हुए अवकाश ग्रहण किया है। उनका बड़ा बेटा नामी-गरामी वकील है। उनके अपने हितैषी लोग कभी-कभी उस बड़े बेटे से सलाह के रूप में कहते हैं, "तुम्हारे पिता जी इस वृद्धावस्था में गली-गली इधर-उधर डगर-डगर गायें खदेड़ते फिरते हैं, उन्हें मना क्यों नहीं करते ? उन्हें इस अवस्था में देखकर आखिर भले लोग क्या कहते होंगे ?"

"कौन क्या कहता है, इसकी चिंता न करें, जिसके मन में जो आए, कहने दें। मेरे पिताजी की अवस्था कितनी हो गई है, कुछ जानते हैं ? सत्तर वर्ष तो कबके पार कर चुके। हो चुके सत्तर के ऊपर...। चूंकि इन कुछ गायों को लेकर व्यस्त

हैं, अतः अभी भी चुस्त-दुरुस्त हैं। उन्हें घर में आराम से बैठने को बाध्य कर दो, तो दो दिन में ही मर जाएंगे। गायों को पालने में कितना खर्चा पड़ता है, जानते हैं ? उसकी जगह बाजार से दूध खरीदता तो बहुत सस्ते में निबट जाता। परंतु नहीं, वह मुझे स्वीकार नहीं, क्योंकि प्रत्येक दिन तड़के भोरहरी में गायों को दुहकर पिताजी जब भरी बाल्टी दूध उठाए लिए घर में आते हैं, तो उनके चेहरे पर आई चमक को देखकर मैं अच्छी तरह समझ जाता हूं कि वे प्रतिदिन नए-नए रूप मे सृष्टि के आनंद का उपभोग कर रहे हैं।''

स्वयं अपने आप चाहकर चिंतित होने की बात नहीं है। बल्कि इधर कुछ दिनों से परेशानी में डालनेवाली चिंता ही भूदेव के मन में रह-रहकर ताक-झांक करती रहती है। 'अपने इस पूरे जीवन में उन्होंने किया क्या ?' अपनी ओर से क्या रचा है ? एक कण अन्न, एक पंक्ति कविता ? स्वयं बढ़कर कुछ भी तो नहीं बनाया। वे तो बस बिचौलिए की भूमिका ही निभाते रहे। एक प्रकार के दलाल की भूमिका, विद्या के दलाल। इस ओर से ले जाकर उस ओर बोझे को पहुंचा भर देते रहे, वस। एक झटके में फूलकर कुप्पा हो जाने, अचानक बड़ा हो जाने,जैसी कोई चमत्कारिक बात नहीं रही उनके जीवन में। रतिकांत कलिता के संग अपनी तुलना करते हुए अपने को उससे बड़ा समझने की कोई युक्ति भी नहीं है। सभी के द्वारा मानी गई आत्म-प्रवंचना का कोई अर्थ नहीं है।

भूदेव चौधुरी एकाएक सतर्क हो गए। फिर झटपट ही उन्होंने मन में उभरती इस प्रकार की चिंता को धक्का देकर मन से बाहर निकाल फेंकने की कोशिश की।

पांच

रबीन शहरीया भी हमेशा व्यस्त ही रहते हैं। नौकरी के समय टाटा कंपनी में चीफ इंजीनियर के पद पर थे। उन्होंने भी सेवानिवृत्त होकर इसी जगह पर अपना मकान बनवाया है। उनके दो बेटे हैं, दोनों इंजीनियर हैं। बेटी का ब्याह भी इंजीनियर से ही हुआ है। वे सभी-के-सभी अमेरिका में अच्छे पदों पर काम कर रहे हैं। शहरीया और उनकी पत्नी, यानी बूढ़ा-बूढ़ी दोनों एक झुंड कुत्तों को लेकर यहां निवास कर रहे हैं।

रास्ते-घाट में जब कभी भेंट हो जाती है तो शहरीया बड़ी गर्मजोशी से चौधुरी से कहते हैं, ''अरे भाई ! मेरे घर पर कभी पधारो न ! क्यों नहीं आते आप मेरे यहां ? अरे कोई काम-काज तो है नहीं, जो चिंता हो। अगर मेरे घर पधारें तो कम-से-कम दो-एक बातें तो कर सकेंगे हम।''

लेकिन यह सब बस शिष्टता प्रदर्शित करने की बातें हैं, जो वास्तव में सफेद झूठ हैं। बातचीत करने के लिए शहरीया के पास एकदम समय नहीं है। वे तो एक झुंड कुत्तों में ही अतिव्यस्त हैं। एक कुत्ता जो कुकर्म करने पर उतरा हुआ है, उसे उस कुकर्म से दूर हटाना, दूसरा जो दुष्टता कर रहा है, उसे डांट-डपटकर हड़काना—वगैरह कामों में ही वे अतिव्यस्त हैं। एक क्षण के लिए भी शांत हो बैठने का उपाय नहीं। चौधुरी को डर भी खूब लगता है। बचपन से ही वे कुत्तों से आतंकित रहे हैं। उनके हृदय की धुक-धुकी तेज हो जाती है। एक बार उनके एक भतीजे को चौदह इंजेक्शन लगवाने पड़े थे। पेट में जहां सूइयां चुभोई गई थीं, वह जगह फूलकर कठोर हो गई थी।

शहरीया के घर जाने में चौधुरी को कोई आपत्ति नहीं है, परंतु उनके एक झुंड कुत्तों के डर के मारे जाने का साहस नही कर पाते। पहली-पहली बार ही जब उनके घर में प्रवेश किया कि लंबे-लंबे बालोंवाला एक छोटे आकार का कुत्ता उनके चारों ओर घूम-घूमकर प्रदक्षिणा करने लगा था। उनके तो प्राण ही सूख गए। उन्हें डरा हुआ जानकर उस कुत्ते को भी खूब मजा आने लगा था। फिर तो दोनों पैर उठाए कूद-कूदकर उनकी देह पर चढ़ जाने की कोशिश करने लगा। कोई और चारा न देखकर चौधुरी बरामदे में एक खंभे पर चढ़कर ऊपर जाने की कोशिश करने लगे। परतु उनकी कोशिश सफल नहीं हो पाई। यद्यपि बचपन में सुपाड़ी के पेड़ पर सटासट चढ़ जाने का अभ्यास था, परंतु अब इस वृद्धावस्था में एक मामूली खंभे पर जा चढ़ना भी मुश्किल हो गया है। उधर शहरीया उन्हें ढाढस बंधाए जा रहे थे, "कोई डर नहीं है भाई, कोई डर नहीं। यह कुत्ता कुछ भी नहीं करता। कुछ नहीं करेगा, बस यू ही तमाशा कर रहा है, नटखट है न जरा। नीचे उतर आएं, उतर आएं नीचे। नहीं तो गिर पड़ेंगे, गिर ही जाएंगे।"

शहरीया ने आगे बढ़कर कुत्ते को जब पकड़ लिया, तब कहीं जाकर चौधुरी की सांस में सांस आई।

अतएव वे जहां तक संभव हो सकता है, शहरीया के घर जाने से बचते हैं। वहां जाने की इच्छा नहीं होती। उनके कुत्ते भी महाधूर्त और चालाक हैं। वे भी अच्छी तरह जान जाते हैं कि चौधुरी उनसे डरते हैं। अतः चौधुरी को चिढ़ा-चिढ़ाकर वे भी मजा लूटते हैं। यह एक बड़ा ही रोचक तमाशा खड़ा हो जाता है। यहां तक कि जब वे आराम से बैठकर बातें करते होते हैं, तब भी अंदर-अंदर बराबर आतंकित रहते हैं, अतएव बातचीत में ठीक से मन नहीं लगा पाते। कौन सा कुत्ता, कहां से, कब निकल आएगा, कोई ठीक नहीं। अचानक ही एक कुत्ता सोफे के पीछे से निकलकर उनकी गोद में आगे के दोनों पैरों को रखकर उनका मुंह चाटने की कोशिश करने लगा। वे तो मारे डर के पत्थर की मूरत की तरह निष्प्राण हो किसी-न-किसी तरह बैठे रहे।

उस पर भी शहरीया को गप्पबाजी का समय नहीं है। किसी कुत्ते को डांट रहे हैं, एक को ठेल-ठालकर अलग कर रहे हैं। सड़क पर एक बकरी को देखकर एक कुत्ता बडे उत्साह से उसे खदेड़ता हुआ दौड़ाए ले गया है, उसे किसी तरह वश में करके लौटाना होगा। कोई एक दूसरा कुत्ता बगल से गुजरते हुए चाय के प्यालों, राखदानी, वगैरह के ऊपरी ढक्कन को लुढकाता चला गया। एक क्षण भी शांत-स्थिर होकर बैठने का अवकाश नहीं। जब बार-बार की डांट-फटकार से भी नहीं मानते तो शहरीया की पत्नी जी लाठी लेकर कोंच देने की मुद्रा बना-बनाकर उन्हें वश में करने की कोशिश करती हैं। इस नाटक-तमाशे से जान बचाकर चौधुरी जल्दी निकलना चाहते हैं, परंतु शहरीया उठने भी नहीं दे रहे। "अभी कहां जा रहे हैं ? बैठिए, बैठिए न !" परतु इतना कहते-कहते ही वे स्वयं बडे झटके मे बाहर बरामदे की ओर झपट पड़ते है। बाहर के मुख्य द्वार का फाटक खुलने की खट की आवाज होते ही, सारे-के-सारे कुत्ते सारा ठट्ठा-तमाशा छोड़कर एक ही साथ भौं-भौं करते हुए बाहर बरामदे की ओर दौड़ गए थे। उन्हें संभालने के लिए शहरीया भी उनके पीछे-पीछे झपटते हुए दौड़ पड़े थे।

कुत्तों के संबंध में भूदेव चौधुरी के मन में बराबर एक भय और आतंक का भाव बना रहा है। आस-पास में किसी कुत्ते के होने पर वे बडी घबराहट महसूस करते हैं। उनकी इस डरपोक मनोदशा को कुत्ते भी अच्छी तरह समझते है। फलतः वे उन्हें और डरा-डराकर, चिढ़ाकर, दहलाकर मजा पाते है। अपने साले साहब के अलशेसियन कुत्ते की याद आने पर अभी भी उनका कलेजा कांपने लगता है। उनके साले साहब पुलिस कप्तान हैं। उन्होंने अपने घर पर एक बडे ही लंबे-चौड़े आकार-प्रकार का अलशेसियन कुत्ता पाल रखा था, इसी से चौधुरी उनके घर जाने में भारी कठिनाई महसूस करते थे। डिब्रूगढ़ में एक समिति की बैठक में जाना पडा था, तो वे एक सर्किट हाउस में ठहरे हुए थे। चूंकि उनके साले साहब उस जिले में ही पुलिस कप्तान थे, सो उनका सामान उठवाकर उन्हें अपने घर लिवा ले गए। तड़के भोर में अभी नींद की खुमारी में ही थे कि मुंह पर कुछ पिलपिलाहट सी महसूस हुई तो घबराकर एक खोंचा मारकर किसी चीज को दूर ठेला। तभी आंख जो खोली तो देखते ही डर के मारे कलेजा मुंह को आ गया। एक बड़ा सा अलशेसियन कुत्ता अपने अगले दोनों पैर उनके बिस्तर पर टिकाए अपनी लपलपाती जीभ से उनका मुंह चाटे जा रहा था। वे तो फिर पत्थर की तरह जड़ हो गए। सांस लेने में भी डर लगने लगा। वह तो भाग्य अच्छा था कि उसी समय सरहज (साले की पत्नी) जी आ पहुंचीं और उन्होंने बड़ी फुर्ती से उस महा डरावने कुत्ते को खींचकर अलग किया और अपने साथ लिवा ले गई।

चौधुरी जब महाविद्यालय में पढ़ते हुए शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तब उनके अपने घर में भी एक कुत्ता था। वह जाने कहां से अपने आप ही आकर उनके घर रहने

लगा था। उसके मुह पर जैसा भाव बना रहता था, वैसा भाव उन्होंने किसी दूसरे कुत्ते के मुंह पर कभी नहीं देखा। बड़ा ही गहन-गंभीर। देखते ही जैसे भयमिश्रित श्रद्धा का भाव बनाए रखने का मन होता था। यद्यपि वह देशी प्रजाति का ही कुत्ता था, परंतु उसका डील-डौल बड़ा ही भारी-भरकम था। छोटी-मोटी साधारण बातों की ओर तो मुड़कर देखना भी नहीं था। रसोईघर के बरामदे में बैठकर मुंह उठाए हुए कहीं दूर निहारता रहता था। आसपास कहा क्या हो रहा है, इससे पूरी तरह बेखबर। दिन की वेला में किसी को कुछ नहीं कहता था। कोई अपरिचित नया-नया आदमी आ भी गया तो बस एक बार मुड़कर उसे देख भर लेता था। बस एक बार देख लेना ही उसके लिए पर्याप्त था। अगर किसी की ओर घूरकर एक बार जरा कड़ाई से देख ले तो फिर आदमी के कलेजे का खून जमकर जैसे बर्फ हो जाए। परंतु रात की वेला में तो घर की चौहद्दी में किसी बाहरी आदमी के घुस आने का कोई सवाल ही नहीं। इतने जोर से दहाड़कर भौंकता हुआ दौड़ा देता था कि फिर कुछ कहिए मत।

एक बार की बात है। पूजा की छुट्टियां हुई तो घर आ रहे थे, आते समय रेलगाडी बहुत लेट हो गई। चौधुरी जब घर पहुंचे तो रात के एक बज रहे थे। घर की पूरी चौहद्दी बाड़े से घिरी हुई थी। मुख्य द्वार रात में अंदर से ही ताला लगाकर बंद कर दिया गया था। फाटक खुलवाने के लिए वे देर तक आवाज लगाते रहे, किंतु किसी को नींद से जगा नहीं सके। तो फाटक फलांगकर अंदर कूद पड़े कि तभी भौं-भौं करता भूलू चढ़ आया।

"अरे भूलू, मैं हूं, मैं !"

उसके इस तरह चढ़ आने से डर के मारे आवाज भी शायद बदल गई थी, क्योंकि लग रहा था कि भूलू पहचान नहीं पा रहा था। करीब आकर कूदकर वह जैसे ही चौधुरी के ऊपर चढा कि उसी दम चौधुरी ने आंखे मूंद ली। फिर तो निश्चेष्ट हो गए। थोड़ी देर बाद पैरों के पास कू-कूं शब्द होने पर उन्होंने आंखें खोलकर निहारा। ओह कैसा अद्भुत था भूलू का पश्चाताप ! लगता है, चौधुरी की देह की गंध से अंत में उसने उन्हें पहचान लिया था, और पहचानने के बाद आत्मग्लानि के मारे जैसे मरने-मरने को हो रहा था। अपने पूरे पेट को धरती से चिपकाकर उनके पैरों में पड़ा-पडा कू-कूं किए जा रहा था। उसकी ऐसी दशा सचमुच ही मन को मसोस डाल रही थी। बड़ा ही दर्दनाक दृश्य था वह। भूलू का ऐसा हृष्ट-पुष्ट विशाल शरीर था कि उसकी ओर देखने से ही डर लगता था, अब उसी भूलू द्वारा अपने आप को दंडित किए जाने के इस हाव-भाव का दृश्य सचमुच ही बड़ा मर्मस्पर्शी था। उसके स्वभाव से बिलकुल उलटे प्रकार का। भूलू द्वारा अपने आपको धिक्कारने, प्रताड़ित करने के दृश्य को देखकर चौधुरी की आंखें छलछला आईं। "उठो जी, उठो। कोई बात नहीं। जो हुआ सो हुआ।" कहकर वे भी वहीं धरती पर बैठ गए और

हल्के-हल्के उसके सर को हाथ से थपथपाने लगे। भूलू की पूंछ जोर-जोर से हिलने लगी। बस उसी समय एक बार के लिए चौधुरी एक कुत्ते के बिलकुल ही करीब हो गए थे। कुत्ते के प्रति अत्यंत निकटता स्थापित करनेवाला उनका बस यही एक अनुभव है।

छह

अगर इसे विशाल नगरों की तरह का नगर न भी कहें, तो भी शांतिनगर को एक छोटा-मोटा शहर तो कहा ही जा सकता है। पहले तो निवारण कुमार साहब के बंगले के सामने से ही बस दूर-दूर तक फैला विराट मैदान ही था। सुनसान और डरावना। मृत्यु का भी भय न करके बड़ी हिम्मत से पहले-पहल दिवाकर दास और गजानन राय ने यहां मकान बनवाया और रहना आरंभ किया। उन लोगों द्वारा ही बार-बार उत्साहित किए जाने और उकसाते रहने पर फिर भूदेव चौधुरी वहां आए। उसके बाद तो देखते ही देखते वह लंबा-चौड़ा विशाल मैदान मकानों से भर उठा। वैसे शुरू-शुरू में आनेवाले लोगों में ही शरत लहकर भी थे। वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जो जल्दी किसी से बातचीत का सिलसिला नहीं बढ़ाते। बराबर एकांतप्रिय और शांत रहते हैं।

शरत लहकर के सबसे बड़े बेटे को कोई ज्ञान ही नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आदमी को पहचान लेता है, कम-से-कम लहकर को तो अच्छी तरह पहचानता है। वे उसके पास पहुंचते ही अकुलाने-बिकुलाने लगता है। गिनने को तो तीस वर्ष की अवस्था पूरी हो गई है, परंतु उसका मस्तिष्क अभी भी मात्र एक वर्ष के बच्चे जैसा है। अगर लहकर कुछ दिनों के लिए बाहर चले गए हों और कुछ देर से लौटें तो अभी भी उसे गोद में उठाकर लाड़-दुलार करना पड़ता है। जन्म से ही पंगु है। बौनों जैसी देह की गठन है, इतने वर्ष बाद भी पांच वर्ष की अवस्था के बालक जैसा शरीर का आकार-प्रकार है। अपने पैरों पर चलना तो दूर की बात है, वह तो ठीक से बैठ भी नहीं पाता है। खाट से लुढ़ककर कहीं गिर न पड़े इसलिए चारों ओर से लोहे की छड़ का घेरा किए हुए छोटे से पलंग पर उसे सुलाया जाता है। बुद्धि का विकास चाहे भले ही न हुआ, दाढ़ी-मूंछ खूब जम आई है। देखने पर सचमुच ही डर लगने लगता है। छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियां अगर अचानक देख लेते हैं तो चिल्ला पड़ते हैं; इसी से लहकर वगैरह भरसक कोशिश करते हैं कि उसे इस तरह रखें कि लोग जल्दी उसे देख न पाएं। एक प्रकार का भयंकर अभिशाप ही है। इतने लंबे समय तक तो इस लड़के की देखभाल उसकी मां ही करती आ रही थीं। परंतु उनकी मृत्यु हो जाने के बाद शरत लहकर के कष्टों का कोई ओर-छोर

ही नहीं रहा। यह लड़का प्रायः ही कपड़े-लत्ते नष्ट-भ्रष्ट करता रहता है, उसकी जगह दूसरे की व्यवस्था करनी पड़ती है। अपने हाथों से भोजन तक नहीं कर सकता सो उसे खिलाना होता है। और कोई आदमी यह सब कर नहीं सकता, कोई चाहता भी नहीं। इस प्रकार के एक घिनौने जानवर जैसे आदमी के निकट आने में सभी महा घृणा करते हैं।

लहकर के और जो दूसरे बेटे-बेटियां हैं, उनमें शारीरिक या मानसिक दृष्टि से कहीं कोई गड़बड़ी नहीं है। उनका दूसरा बेटा सुधांशु आजकल अलग कहीं भाड़े के मकान लेकर रहता है। हजारों कोशिशें करने पर भी उसकी पत्नी राधिका इस घर में रहने लायक अपनी मानसिक अवस्था नहीं ही बना सकी, उसका मन यहां रहने को तैयार ही नहीं हुआ।

एक दिन उसकी कोठरी में आने पर उन्होंने देखा कि यह लड़का बेहद लाचारी में अपनी जननेंद्रिय को हिलाए जा रहा है। अत्यंत आश्चर्यचकित और आतंकित होकर उन्होंने देखा कि उसकी जननेंद्रिय बहुत तनी हुई है। क्या कुछ हो गया, वे कुछ बता नहीं सकते। बड़ी चोट खाए से डरते-डरते वे कोठरी के बाहर चले आए। उसके बाद से तो उन्हें बराबर ऐसा लगता है कि जैसे अभी कै हो जाएगी, अभी कै करने लगेंगे।

शरत लहकर के मन में तनिक भी शांति नहीं है। इस बात की चिंता कर-करके वे अति ही बेचैन रहते हैं कि उनकी अपनी मृत्यु हो जाने के बाद इस लड़के की क्या गति होगी ? उनकी भी तो अवस्था काफी ढल चुकी है। शरीर की शक्ति भी कम होती जा रही है। अब शरीर चलाए नहीं चलता। ऐसी दशा में अगर उन्हें कुछ हो गया, तो फिर इस लडके का क्या होगा ? अब तो वे सोचते हैं कि जब तक उनमें चलने-फिरने की शक्ति है, उसके दौरान ही अगर इसकी मृत्यु हो जाए तो ही मंगल है। परंतु ऐसा सोचते ही वे अपनी सोच पर जैसे बिजली का झटका लगे, वैसा झटका खा गए। क्या सोच लिया उन्होंने ? उन्हें देखते ही यह लड़का आकुल-व्याकुल हो उठता है। आगे बढ़कर जब उसे गोदी में उठाकर दुलारते-पुचकारते हैं, तब कहीं जाकर शांत होता है। परंतु अब आजकल उसे गोदी में उठाने में भी बड़ी तकलीफ महसूस होती है। यह सोचते-समझते भी लहकर ने उसे गोदी में उठा लिया।

इस तरह शरत लहकर मन-ही-मन बेहद बेचैन हैं। भूदेव चौधुरी का घर उनके पड़ोस में ही है, अतः जब अपने घर में रहते हुए अधिक अकुलाहट महसूस करते हैं तो फिर चौधुरी के घर चले आते हैं। "चौधुरी जी ! अरे ओ चौधुरी !"

"आइए, आइए।"

लहकर जी बैठ जाते हैं, फिर अनमने भाव से पूछ बैठते हैं, "क्यों भाई ! यह मध्य एशिया के खाड़ी के देशों का कांड-कारनामा देख रहे हैं। कैसा लग रहा है आपको ? अब तृतीय विश्व युद्ध ही छिड़ जाएगा क्या ?"

वैसे खाड़ी के देशों में घटनेवाली घटनाओं को जानने के लिए उनके मन में कोई आग्रह नहीं है। उनके संबंध में चौधुरी क्या कुछ कहते चले जाते हैं, उस ओर वे तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनका अंतर्मन किसी और ही चिंता में डूबा हुआ है। चौधुरी बोले ही जा रहे थे कि बीच में ही एकाएक वे पूछ बैठे, ''आज 'रिसर्च डाइजेस्ट' में मैंने एक लेख पढ़ा है जो दया करके मारने (मर्सी किलिंग) पर है। जरा बतलाएं तो इस संबंध में आपके क्या विचार हैं ?''

मध्य पूर्व के देशों की राजनीतिक दशा पर अपनी टीका-टिप्पणी चौधुरी दिए चले जा रहे थे कि अचानक ही लहकर द्वारा पूछे इस प्रश्न से सकपका गए। कुछ सोचकर बोले, ''ऐसे विषय पर हठात कुछ कह पाना कठिन है।''

''आप ठीक कह रहे हैं, सचमुच ही कुछ भी कह पाना बहुत कठिन है। किसी भी मनुष्य को क्या यह अधिकार हो सकता है कि वह एक जीते-जागते प्राण की हत्या कर दे ? अच्छा, चलते-फिरते रहने से ही क्या जीवन का मूल्य अधिक होता है ?''

उनका प्रश्न सुन चौधुरी कुछ भी कह पाने की दशा में नहीं रह गए। वे चुप्पी मारे बैठे रहे। लहकर के इतने समीप रहकर भी वे नही जान सके हैं कि मन-ही-मन लहकर कितना भारी बोझ ढोते फिर रहे हैं। ऐसी विकट दशा है कि कोई भी लहकर की कुछ सहायता नहीं कर सकता। वे बेचारे इस भरी दुनिया में बिलकुल अकेले हैं।

लड़के ने जैसे ही देखा कि लहकर पड़ोस से लौटकर अपने घर आ गए हैं, वह बड़ी बेकली से मचलने लगा। उसे शांत करने के लिए लहकर ने एक झटके में उसे गोद में उठा लिया। एकाएक उनकी कमर खचाक से कर उठी। सचमुच ही आजकल उसे उठाने में उन्हे भारी तकलीफ होती है। उधर उनका वह बेटा कानू बड़ी गंभीर शांति का अनुभव करते-करते उनकी गोद में ही सो गया। धीरे-धीरे खाट के पास जाकर उन्होंने उसे सुलाया, फिर कमर पर हाथ का दबाव बनाकर जैसे-तैसे खड़े हुए। अभी तक कमर चिनकती जा रही है।

सात

भूदेव चौधुरी की छोटी बिटिया अनीता बराबर ही चौधरी पर दबाव डालती रहती है कि वे अपनी आत्मकथा अवश्य लिखें।

लिखने में है ही क्या ? आत्मकथा लिखने का तो मतलब ही है जीवन में पहले घटी घटनाओं की स्मृतियों को बार-बार कुरेदना। एक बार चौधुरी ने कुछ लिख ही देने का मन बनाया। जब लिखने के लिए प्रयत्नशील हुए तो कागजों के रद्दे-पर-रद्दों

के बीच लिखने लायक सफेद कागज ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गए पर कागज नहीं पा सके। फिर तो उन्होंने आगे और कोशिश करना छोड़ दिया और बाहर निकलकर मकान के ओसारे में पड़ी एक कुर्सी पर आ बैठे।

पुस्तकों की दुकान जब बंद रहती है तो दिवाकर दास प्रायः ही भूदेव चौधुरी के घर आ जाया करते हैं। फिर तो दोनों पुराने साथी बेंत की आरामकुर्सी पर जमकर बैठ जाते हैं। उनके बीच कोई विशेष बातचीत नहीं होती। घर में काम करनेवाला लड़का बिना कहे ही दो प्यालों में चाय लाकर उन्हें दे जाता है। वे प्रायः ही मौन बने रहते हैं। आपस में कोई बातचीत किए बिना ही लगता है कि मन के भावों का आदान-प्रदान कर लेना संभव होता है। दोनों ही जन इसी तरह चुपचाप कुछ देर तक बैठे रहते हैं। फिर एक समय दास धीरे से उठते हैं और अपने घर चले जाते हैं। कभी-कभी जाने के पहले कह भी देते हैं, "अच्छा अब चलूं" तो कभी-कभी तो जाते वक्त कुछ भी नहीं बोलते। उस दिन भी चौधुरी ने दिवाकर दास को विदा किया। फिर अपनी चौहद्दी का फाटक बंद करके वे फाटक के पास यूं ही खड़े रह गए। उन्होंने देखा कि दिवाकर दास माथा नीचे किए धीरे-धीरे पांव बढ़ाते चले जा रहे है। अत्यंत शांत, अत्यत मंथर गति से धीरे-धीरे लुढ़कते से जा रहे हैं। चौधुरी को याद आया—पहले तो वे ऐसे नहीं थे। उस जमाने में तो वे बड़े ही तेजस्वी और बड़े ही फुर्तीले नवयुवक थे। कलकत्ता शहर जाने पर भूदेव चौधुरी प्रायः ही सुध-बुध गंवाकर घबरा जाया करते थे। वे मन-ही-मन बार-बार खुद अपने आप से ही कहते थे, "नहीं, मुझसे नहीं हो सकेगा। कलकत्ता शहर की सड़कें, गलियां, गलियारे ढूंढ़-पहचानकर खोज निकालना उनके वश की बात नहीं। कलकत्ता में वे गुजारा नहीं कर सकेंगे।"

उनकी ऐसी हताशा भरी दशा में यही दिवाकर दास और इनके साथी अघोर तथा सत्येन ने उन्हें सिखाना-समझाना, ढाढस बंधाना शुरू किया कि कलकत्ता को कैसे समझा जाए। बिना घबराए उन्हें कलकत्ता का पारंगत बना देने का जिम्मा इन्होंने ही अपने सर पर उठाया। चलती हुई ट्राम गाड़ी से कैसे उतरा जाए, सही-सही संख्या की बस को पहचान कर उसमें कैसे चढ़ा जाना चाहिए, यह सब तो वे सिखाते ही थे, इसके ऊपर से चौधुरी को अपने संग-संग लेकर कलकत्ता में देखने लायक जितनी सारी जगहें थीं, वे उन्हें सभी जगह ले जाकर दिखलाते रहे। विक्टोरिया मेमोरियल हाल, लेक, चिड़ियाखाना, बेलूड़ मठ—हर एक जगह। सब कुछ दिखला देने के बाद गिनती करके दास ने पूछा था, "क्यों, अब सब कुछ हो गया न ? और बतलाओ, और कौन-कौन से प्रश्न उठ सकते हैं, जिनका सामना तुम्हें करना पड़ेगा ?"

अर्थात दुर्गापूजा की लंबी छुट्टियों में जब असम के अपने गांव-घर जाओगे, तो अड़ोस-पड़ोस के जाने-पहचाने आदमी आ जुटेंगे और खोद-खोदकर पूछेंगे कि क्या-क्या देखकर आए हो। एकाएक अपना सर ठोंकते स्वयं बोल पड़े, "अरे, अरे,

यह तो गजब ही हुआ जा रहा था, असली चीज तो देखनी बाकी ही रह गई। इस कलकत्ता की मशहूर चीज बंगाल का उच्च न्यायालय तो देखा ही नहीं।"

उन्हीं दिनों दिवाकर दास को जो भारी सदमा पहुंचा उसे वे आज तक संभाल नहीं पाए। उस सदमे से वे ऐसे सुध-बुध गंवा से बैठे कि उसी जड़ता में आज तक डूबे हुए हैं। उन दिनों चौधुरी उन लोगों के साथ उनके मेस में रहना छोड़कर मिशनरी छात्रावास में आ गए थे। द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो गया था। परिस्थितियां ऐसी होती जा रही थीं कि भारतवर्ष के स्वतंत्र होने की संभावनाएं स्पष्ट होती जा रही थीं। वैसे इस संदर्भ में घटित होनेवाली बड़ी-बड़ी घटनाओं को भी लोग अधिक दिनों तक याद कर-करके हड़बड़ाहट महसूस किए नहीं रख पा रहे थे। कुछ दिन बीतते ही लोगों की जिंदगी फिर सम पर आ जाती थी, वे जिस तरह पहले जीवन बिता रहे थे, फिर ठीक उसी तरह जीवन बिताने लग जाते थे। उन दिनों जो ब्रिटेन से क्रिप्श मिशन आया था, उसके जाने के बाद उसका परिणाम क्या होगा, इस विषय पर चर्चा करने की अपेक्षा उन दिनों आए आस्ट्रेलिया के क्रिकेट दल के सदस्यों के साथ खेले जा रहे क्रिकेट मैच की चर्चा में लोग अधिक व्यस्त हो गए थे।

समय-समय पर किसी विशेष बात की अगर अधिक उत्तेजना फैल जाती थी तो जरूर ही लोग उसमें मतवाले हो उठते थे। भारतीय नौ सेना के अफसरों ने जो विद्रोह कर दिया था, उसके खिलाफ अंग्रेज सरकार जिस तरह से मुकदमा चलाकर सजाएं दे रही थी उसके विरुद्ध प्रचंड प्रतिवाद हो रहा था। उसके लिए जगह-जगह सभा-समितियां हो रही थीं। जुलूस निकाले जा रहे थे। जुलूसों पर पुलिस का बर्बर प्रहार होता था। गोलियां चलती थीं। अनेक लोग मौत के घाट उतार दिए जाते थे, जिसे लेकर कुछ समय तक काफी हल्ला-गुल्ला मचता था, परंतु कुछ दिनों बाद ही फिर सब शात हो जाता था। जब विरोध में कोई प्रतिवाद का माहौल बनता था, तो ऐसे दृश्य तो सामान्य दृश्यों की अपेक्षा बिलकुल दूसरे ही प्रकार के होते थे, परंतु शीघ्र ही सब कुछ स्वाभाविक हो जाता था, जीवन अपनी बंधी-बंधाई लीक पर फिर चलने लग जाता था। अड्डेबाजी करना, गप्पें हांकना, सिनेमा के चित्र देखना, बाजार में खरीद-बिक्री करना, पाठशाला-महाविद्यालय, कार्यालय-कचहरी आना-जाना सभी कुछ स्वाभाविक गति से चलने लगता था। उसमें क्रिप्श मिशन, नौ-सेना विद्रोह आदि सारी उत्तेजक घटनाएं फिर दब जाती थीं। कभी-कभार कुछ समय के लिए एक जोरदार लहर उठती जरूर थी, परंतु फिर सब कुछ शांत हो जाता था।

चौधुरी स्वयं फिर से छात्रावास के सरकार महाशय के साथ शतरंज खेलने में मशगूल हो गए थे। महाविद्यालय की पढ़ाई की कक्षाओं से भागकर ग्लोब सिनेमा हाल में दुपहरिया की कनसेशन रेट की सिनेमा की तस्वीरें देखते थे। बिलकुल शांत, सुस्थिर जीवन, कहीं भी कोई उत्तेजना नहीं।

परंतु इसी बीच जाने कहां से एक अदृश्य प्रकार का विषैला धुआं किस गली से कब घुस आया और देखते-देखते घनघोर काले-कजरारे बादलों की तरह कलकत्ता की अली-गली में फैलते-फैलते संपूर्ण कलकत्ता शहर को ही उसने दबोच लिया। कोई बेचारा मजदूर अपनी ठेलागाड़ी पर माल लादे निश्चित ठिकाने पर पहुंचाने के लिए उसे खींचे लिए जा रहा था, कोई सड़क के किनारे के फुटपाथ पर बैठा धूप-बत्ती बेच रहा था, कोई अपने आप में निमग्न किसी अल्पाहार की प्रतिष्ठित दुकान पर बैठा चाय-जलपान कर रहा था कि अचानक ही सभी सब कुछ भूलकर भयंकर हिंसा भाव में क्षुब्ध होकर एक-दूसरे पर झपट पड़े। ठीक ऐसा लगा कि खून के प्यासे आदिम बर्बर जंगली जानवर हों।

कलकत्ता में उन दिनों जो सांप्रदायिक दंगा हुआ, बेशुमार हत्याएं हुई उसका इतिहास एक राष्ट्र के राष्ट्रीय चरित्र के कलंक का इतिहास है। यही प्रमाणित करता है कि हमारी सभ्यता की यह विशाल अट्टालिका कितनी कमजोर नींव पर खड़ी है। एक जरा सी ठेस ही तो लगी कि टुकड़े-टुकड़े हो धूल-बालू और कूड़ा-करकट में जा मिली। अंधेरे गड्ढों में से दैत्यों की तरह काली-काली डरावनी छायाएं भरभराती हुई निकल आई। सांपों जैसी पतली लचकीली छायाएं, मगर सांपों से भी महाभयानक।

उस समय की बातें याद आने पर भूदेव चौधुरी का शरीर अभी भी कांप उठता है। उस समय की धरती और उस धरती पर रहनेवाले उस समाज का जो रूप देखा था, वह इस धरती पर दिखाई पड़नेवाला सहज स्वाभाविक रूप नहीं था। पहले की सुपरिचित धरती और समाज तो जाने कहां खो गया था। ऐसा लगा जैसे शहर के एक कोने में रहनेवाले श्मशान ने एकाएक अपने आकार को इतना बढ़ा लिया हो कि उसने पूरे कलकत्ता शहर को ही अपने में समेट लिया हो। इस विस्तृत महाश्मशान की भूमि के ठौर-ठौर पर पिशाचों का दुर्दांत उल्लास छा गया था। एक ओर से 'अल्लाहो अकबर' का नारा बुलंद हो रहा था, तो दूसरी ओर से 'वंदे मातरम्' का जयघोष हो रहा था। इतने सुंदर शब्दों का कैसा अपमानजनक दुरुपयोग हो रहा था !

चौधुरी समेत अन्य छात्रावासी उस छात्रावास की चहारदीवारी में ही चाभी भरी कठपुतली की तरह चक्कर लगाने लगे, बिलकुल असहाय और कुछ भी कर पाने में असमर्थ। भयानक डर के आतंक से आंखें फटी-की-फटी रह गई थीं। मन में ऐसा डर समा गया था कि सांस बंद हुई सी लगती थी। सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया था, प्रेम की भावना घातक नारों के प्रहार से छटपटाने लगी थी, उनकी दबी-घुटी सांसों की चीख-पुकार छात्रावास के पूरे परिसर में चिंचियाती फिर रही थी। दिन तो जैसे-तैसे पार भी हो जाते थे, परंतु रात तो किसी तरह कटती ही नहीं थी। लगता था जैसे पृथ्वी ने अपनी धुरी पर घूमने की दैनिक परिक्रमा लगाना ही बंद कर दिया है। छात्रावास के चारों ओर बहुत ऊंची-ऊंची दीवारें थीं। उसकी उस ऊंची घिरी चहारदीवारी के बाहर निकलने की कोई हिम्मत ही नहीं कर सकता था। सूरज

ढलते-ढलते, सांझ के पहले पहर में ही दाल-भात खाकर निचले तल्ले के कमरों में ताला-किल्ली मारकर सभी-के-सभी ऊपर छत पर चले जाते थे। छात्रावास के ऊपरी हिस्से में पत्थर और ईट के टुकडों की ढेरी सी जमा कर रखी थी। छात्रावास के संरक्षक पादरी विलियम साहब के सामने ही छात्रावास की ईट की बनी सीढ़ी को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर तमाम ईंटें इकट्ठी कर ली गई थीं।

बड़ा ही भयानक झगड़ा खड़ा हो गया है, इस बात की कोई भनक भी छात्रावास के किसी छात्र को नहीं हो पाई थी। वह तो जब वासुदेव को उस दशा में देखा तब अंदाजा लगा कि बाहर जरूर कुछ गड़बड़ हुआ है। संध्या के लगभग चार बजे के आसपास अपनी दोनों काखो मे स्काच ह्स्किी की दो बोतल शराब दबाए परम निश्चिंत भाव से कदम बढ़ाता वह छात्रावास की चहारदीवारी के अदर चला आया। उस समय चौधुरी नीचे कल से स्नान कर रहे थे। वासुदेव ने जो चौधुरी को देखा तो दांत निपोरकर फिक्क-फिक्क हंसने लगा। ऐसा लगा कि वह बोतल-बंद शराब भर ही नहीं लाया है, बल्कि बाहर-बाहर से ही चढ़ा भी आया है।

चौधुरी पूछ बैठे, "यह सब तू कैसे पा गया रे ? कहां से उठा लाया इतनी सारी बोतलें ?"

बिना किसी संकोच के वासुदेव ने ऊंची आवाज मे कहा, "पार्क स्ट्रीट मुहल्ले की दुकानों की लूट मची हुई है। आदमियों की भीड़ टूटी पड़ रही है। लोग तो सामानों को तोड़ते-फोड़ते, फाड़ते-फूंकते, नष्ट-भ्रष्ट किए जा रहे हैं। रेडियो की वह जो बहुत बड़ी दुकान थी न, उसके सारे रेडियो को लोगों ने उठाकर सड़क पर पटक फेंका, सब बरबाद कर दिया। खूबचंद की शराब की जो उतनी बड़ी दुकान है, उसकी दुकान की इतनी उम्दा-उम्दा किस्म की शराबों को फेंक-फेंक लोग सर्वनाश कर रहे है। ऐसी बरबादी देखकर मन को बड़ी ठेस लगी। इसी से दो सही-सलामत बोतलें उठा लाया हूं।"

"उठा ही लाए हो, या पीकर भी आ रहे हो ?"

"बिलकुल नहीं साहब, एकदम नहीं।" इतना कहकर वासुदेव फिर खिक्क-खिक्ककर हंसने लगा। आज बड़ी मस्ती में है, खुशी समाए नहीं समा रही। चहारदीवारी के पास की अपनी झोंपड़ी में उन बोतलों को छिपाकर वह फिर बाहर निकल गया।

उसके थोड़ी ही देर बाद भयानक हो-हल्ला मचने लगा। छात्रावास के सामने से कुछ आदमियों का झुंड पीछे की ओर पलट-पलटकर देखते हुए बड़ी तेजी से भागने लगा। उसी दौरान वासुदेव भी पैर पटकता हुआ बड़ी तेजी से भागता हुआ अंदर आ गया।

"अरे बाप रे बाप !"

"क्यों, क्या हुआ रे ?"

"फौज आ गई है। फौजी सिपाही दनादन गोली चला रहे हैं।"

बाहर की परिस्थिति इतनी विकट हो चुकी है, इसका चौधरी पहले कोई अनुमान भी नहीं लगा पाए थे। अचानक छात्रावास के संरक्षक पादरी विलियम साहब हाफते हुए दौड़े आए। वे बड़ी हड़बड़ी में दौड़ते-भागते निर्देश दिए जा रहे थे कि छात्रावास का एक भी छात्र चहारदीवारी के बाहर न जाने पाए। यहां तक कि अपने कमरे के बाहर निकलकर चहलकदमी करने तक से उन्होंने मना कर दिया। छात्रावास के मुख्य द्वार के किवाड़ों को उन्होंने बड़ी मजबूती से स्थायी रूप से बंद करवा दिया। उस दिन की रात में फिर सभी अच्छी तरह समझ गए कि परिस्थिति कितनी भयंकर हो गई है। बाहर जैसे नरक का उल्लास उमड़ आया हो। रह-रहकर महा आतंककारी शोर उठता था—'अल्ला हो अकबर'—'बंदे ऽ ऽ ऽ मातरम्'। छात्रावास के अंदर होने के कारण बस इन भयावह आवाजों का शोर भर ही सुनाई पड़ता था, स्पष्ट रूप से कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। आकाश का कोई-कोई कोना अचानक बड़ी तेज रोशनी से चमक-चमक उठता था। पर कुछ भी साफ दिखाई नहीं देता था। धुंधलके में ढका हुआ दृश्य, अनबूझ, अस्पष्ट कोलाहल मचा हुआ। कुंडली मारे काले धुएं का भारी स्तंभ, जो साफ-साफ दिखाई तो नहीं देता किंतु जिसके कारण डर के मारे कलेजा कांप जाता है। छात्रावास की छत पर खड़े होकर सभी-के-सभी किंकर्तव्यविमूढ़ हो बस देखे ही जा रहे थे।

आतंक से पैदा हुआ डर कलेजे में जैसे रह-रहकर कोंचता जा रहा था। जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, आतंक की यह चपेट और भी असहनीय होती जा रही थी। बराबर यह आशंका बनी रहती थी कि आततायियों का कोई दल छात्रावास पर भी आक्रमण न कर बैठे। उस डर की छाया में जीते-जीते अब तो सभी सोचने लगे थे कि अगर इन दंगाइयों को छात्रावास पर हमला बोलना ही है, तो फिर देरी क्यों ? जितनी जल्दी संभव हो वे अपना हमला करें न। जो कुछ होना होगा, उसका कोई अंतिम फैसला जल्दी ही हो जाए, तो अच्छा हो।

इसी तरह की दुश्चिंताओं में रात जैसे-तैसे कटती थी। दूसरे दिन का सवेरा होने पर, सूर्य किरणों का प्रकाश बढ़ने पर दंगाइयों के आतंक का डर कुछ कम हो जाता था। दिन की बेला में आकर वे हमला करेंगे तो कम-से-कम उन आदमियों को देखा तो जा सकेगा, उनके अत्याचारी चेहरों के भाव और उनकी क्रूर आंखों की दृष्टि को पहचान तो सकेंगे !

तीसरे दिन की रात की बेला में बड़े-बड़े तीन ट्रकों में भरकर गुंडों का एक भारी दल छात्रावास के सामने आ पहुंचा और शोर-शराबा मचाने लगा। अंग्रेज मिशनरी के पादरी की पोशाक पहनकर फादर विलियम तुरंत ही छात्रावास के मुख्य द्वार पर जा पहुंचे। उन्होंने पड़ोस के सुप्रतिष्ठित नागरिक श्री मालिक साहब को भी बुलवा लिया। मालिक साहब का उस पूरे इलाके में बड़ा ही मान-सम्मान था।

शारीरिक दृष्टि से भी वे बड़े ही सौम्य दर्शन थे। लंबी-चौड़ी सुंदर कदकाठी पर करुणाभावमिश्रित मुखमंडल के देखते ही अपने आप ही उनके प्रति श्रद्धा का भाव जग उठता था। ट्रकों में भरकर आए उन दंगाइयों को मालिक साहब ने सौगंधें खा-खाकर विश्वास दिलाया कि यह तो पूरी तरह से एक क्रिश्चियन छात्रावास है, जहां केवल ईसाई धर्म माननेवाले छात्र ही रहते हैं। उनकी बात का विश्वास कर हमलावर दंगाइयों सहित सभी ट्रक धीरे-धीरे वहां से चले गए। मालिक साहब ने अल्लाह के नाम की सौगंध खाकर उन आदमियों को विश्वास दिला दिया कि यह एक क्रिश्चियन छात्रावास है, जहां केवल क्रिश्चियन छात्र ही रहते हैं।

पादरी विलियम और मालिक साहब—एक क्रिश्चियन और एक मुसलमान। मुस्लिमों की आबादीवाले इस इलाके में इन दोनों महापुरुषों ने दंगाइयों की उस विनाशकारी, उन्मत्त और बौराई भीड़ के बीच हिंदू छात्रों के प्राणों की रक्षा की। ऐसे दंगाई माहौल में मालिक साहब ने जाने कैसे-कैसे खतरे उठाकर भी छात्रावास के उतने सारे छात्रों के लिए खाने-पीने की चीजों का इंतजाम कर दिया था।

विशुद्ध सात्विक भाव से किया गया परोपकार के अलावा इसे और क्या कहेंगे ? अपनी जान की परवाह किए बिना दूसरों के प्राण बचाने की तीव्र लालसा के कारण ही तो ऐसा किया वर्ना इसकी जरूरत ही क्या थी ? और खबर लेकर भी कोई क्या कर सकता था ? ऐसी भयानक विपत्ति में जान-बूझकर अपना सर घुसेड़ देने की जरूरत ही क्या थी भला ? इसे सोच-समझकर किया गया उपाय कहना ठीक नहीं, बल्कि सहज स्वभाव कहना ही ज्यादा सही है। अन्यथा ऐसी मारात्मक दशा में उन्होंने जो किया, उसके लिए कोई और तर्क ढूंढ पाना मुश्किल है। उस समय की गई उनकी कार्यवाही की याद आते ही भूदेव चौधुरी का हृदय कांप उठता है, फिर उनकी नासमझी को याद कर उन पर भयानक क्रोध भी उमड़ आता है। उनकी वह करतूत मात्र एक असफल आवेग का परिणाम भर थी। अपनी इस नासमझी और हृदय में उमड़े आवेग के वशीभूत हो विपत्ति के मुंह में कूद पड़ने की कार्यवाही से ही तो वे मरे।

सांझ होने के बस थोड़ी देर पहले ही छात्रावास के मुख्य द्वार के सामने भारी हो-हल्ला मचा। भीषण चीख-चीत्कार के बीच पता चला कि छात्रावास के मुख्य द्वार के ठीक सामने दो नवयुवकों को छुरा घोंप दिया गया है। पादरी विलियम साहब, अपना क्वार्टर छोड़कर तब दिन-रात छात्रावास में ही उपस्थित रहते थे। खबर पाते ही दौड़े गए। छात्रावास के सारे छात्र तब चहारदीवारी की फांक के छिद्रों से डरे-डरे से बाहर का दृश्य देखने की कोशिश कर रहे थे। उसी दौरान चौधुरी ने जो बाहर का दृश्य देखा तो उनके सिर से पैर तक जैसे बिजली का एक मारात्मक झटका सा गुजर गया।

अघोर और दिवाकर ही थे वे, जिन्हें छुरे मार-मारकर सड़क पर लोटा दिया गया था। दोनों को उठाकर छात्रावास के अंदर ले आया गया। परंतु इतनी देर में तो अघोर विश्वास की मृत्यु हो चुकी थी। दिवाकर अभी जिंदा था। उसकी चोट उतनी भयानक नहीं थी।

और कुछ न कर पाने की स्थिति में चौधुरी उन पर भारी क्रोध से चिल्ला उठा, "ऐसी विपत्ति में तुम सब इस ओर आए ही क्यों ?" तब दिवाकर ने बेबस घबराहट में किसी-न-किसी तरह बतलाया था, "अघोर ने ही कहा था कि भूदेव चौधुरी बेचारा बड़े बुरे इलाके में रह रहा है। उस पर क्या कुछ गुजरी है ? इसकी कुछ खोज-खबर तो लेनी ही है न। अगर हो सके तो उसे वहां से निकाल लाने की जरूरत है।"

कुछ दिनों बाद सशस्त्र पुलिस के पहरे में छात्रावास के छात्रों को छात्रावास से निकालकर उनके अपने-अपने स्थानों को जाने के लिए बाहर लाया गया। चौधुरी वगैरह को सियालदह स्टेशन लाया गया था। अभी उस समय तक भी कलकत्ता की गलियों-सड़कों पर मरे हुए लोगों की लाशें जगह-जगह छूटी-छिटकी पड़ी थीं। इतनी सारी लाशों का संस्कार कर पाना संभव भी नहीं था। सूखे चूने को उनके ऊपर छिड़क-छिड़ककर महामारी फैलने से रोकने की कोशिश भर की गई थी, बाकी वे जहां-तहां जैसी-की-तैसी पड़ी थीं। इतनी भीषण दुर्गंध फैल रही थी कि सह पाना मुश्किल था। रेलवे स्टेशन की ओर जाते हुए कोई एक बात भी नहीं कह रहा था। वैसे कहने के लिए कुछ था भी नहीं।

कोई बैल झोंपड़ी में बंधा हो और उसमें आग लग गई हो और जैसे-तैसे उसके प्राण बचे हों, तो ऐसा बैल फिर लाल-सिंदूरी रंग का बादल अगर आसमान में देखता है, तो डर के मारे घबरा उठता है। ठीक उसी तरह सांप्रदायिक दंगों की बात उठते ही चौधुरी का हृदय भी अपने आप कांपने लगता है। मनुष्य के हृदय के भीतरी हिस्से में जड़ जमाए हुई जमाने-जमाने की घृणा का एकाएक बाहर उभर आना, बर्बरता और निर्लज्जता का ऐसा बेखौफ प्रकाश ! जर्जर बूढ़े, अबला नारी, नादान बच्चों की नृशंस हत्या कर उन्हें फेंक देना। जिस किसी को दुर्बल और असहाय समझा उसी पर धावा बोल दिया। मनुष्य ने जिन आदिम दुष्प्रवृत्तियों को ठेल-ठेलकर नीचे दबा देने में हजारों-हजार वर्ष लगा दिए थे; वे दब पाई थीं, और मानव सभ्यता का विकास हो पाया था, इस तरह के सांप्रदायिक दंगों में वे ही दुष्प्रवृत्तियां क्षण भर में सारे दबावों को नेस्तनाबूद कर बाहर आती हैं। इस कुप्रवृत्ति के प्रभाव से छुटकारा पाना बहुत कठिन है। पढ़े-लिखे सुशिक्षित व्यक्ति हों, अथवा अनपढ़ गंवार, कोई भी इसके दबाव से छूट नहीं पाता। यहां तक कि 'अन्याय' का नाम भी बदल जाता है। समझाया जाता है कि सभी क्षेत्रों में हत्या करना अपराध नहीं है। केवल अपने संप्रदाय के आदमी की हत्या करना ही दूसरे संप्रदाय के व्यक्ति के लिए अन्याय

है। दूसरे संप्रदाय के हजारों आदमियों का कत्ल कर देने पर भी आंखों को दिखाई नहीं देता। उसके लिए मन में कोई अपराध भाव नहीं जगता, कोई वितृष्णा नहीं पैदा होती। धार्मिक ग्रंथ बाइबल में दिए गए आदर्श अनुशासनों का अर्थ बिलकुल दूसरी तरह का हो जाता है। समझाया जाता है कि ये अनुशासन और उपदेश तो केवल अपने संप्रदाय के आदमियों के बारे में ही लागू होते हैं।

उन दिनों की बातें मन में उभरते ही भूदेव चौधुरी अभी भी उत्तेजित हो उठते हैं।

आठ

अपने अब तक के जीवन में भूदेव चौधुरी ने जब चाहा बड़ी सरलता से कोई नई विचारधारा स्वीकार कर ली और फिर कुछ ही समय बाद, जरूरत समझी तो उस विचारधारा को त्याग भी दिया, उतनी ही सरलता से। सत्य बड़ा ही भ्रांतिजनक है। कोई एक तथ्य एक व्यक्ति के लिए सत्य है तो वही दूसरे के लिए भी सत्य हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता, दूसरे के लिए वह सत्य नहीं भी हो सकता है। दुनिया में जितनी सारी विचारधाराएं हैं, मतादर्श हैं, उनमें से प्रत्येक विचारधारा को कुछ लोग दिलोदिमाग से मानते हैं, उनका समर्थन करते है जब कि वहीं कुछ दूसरे लोगों का समुदाय उन्हें नहीं मानता, उनका विरोध करता है। हाईफांग बंदरगाह पर माइन स्थापित करने के संबंध में 'टाइम्स' पत्रिका के एक ही कालम में निम्नलिखित दो पत्र प्रकाशित हुए थे।

1. भ्रष्टाचारी शासक का उद्धार करने के लिए हमारी सरकार हमें तृतीय विश्वयुद्ध के करीब खींच लाई है।

2. अंततः हमारे राष्ट्रपति महोदय ने श्रेष्ठ नेतृत्व का परिचय दिया है। सभी लोगों को चाहिए कि वे उनका समर्थन करें। हनोई और हाइफांग को नेस्तनाबूद कर देना ही अमेरिका के लिए सबसे उचित कदम है।

अब तो चौधुरी को ठीक से याद भी नहीं रहा कि कहां पढ़ा था, परंतु वह आदर्श वचन अब भी याद है कि :

'मनुष्य जो विश्वास करना चाहता है, उसके लिए वही सत्य है।'

सचमुच ही यह बड़ी अच्छी उक्ति है। सांप्रदायिक संघर्षों की बेला में तो विशेष रूप से सत्य का नाम बदल जाता है। सन् 1946 में कलकत्ता में हुए सांप्रदायिक दंगों के बारे में जब कभी सोचते हैं, तो फिर इस संबंध में कोई संदेह ही नहीं रह जाता। चाहे कैसा भी भीषण कार्य, कैसी भी असंभव प्रकार की घटना क्यों न हो एक संप्रदाय के विरुद्ध फैलाई गई अफवाह को दूसरे संप्रदाय के आदमी, बिना

सोचे-समझे तुरंत विश्वास कर लेते हैं। सचमुच ही सत्य का कोई निजी स्वरूप नहीं है। हम उसे जो रूप देते हैं, वही उसका स्वरूप बन जाता है।

एक ही समय में किसी सिक्के के दोनों पहलुओं को साथ-साथ देखना, कोई सुखप्रद अनुभूति नही है। अगर ऐसा हो तो मनुष्यों के कामकाज में भारी अड़चनें उत्पन्न हो जाती हैं।

एम.ए. की कक्षा मे प्रवेश लेने में चौधुरी को बड़ी देर हो गई। इसका फल यह हुआ कि विश्वविद्यालय की अपनी व्यवस्था के जो छात्रावास थे, उनमें तो उन्हें कहीं कोई स्थान ही नहीं मिला। कलकत्ता मे रहकर पढाई करनी थी, अतः बाध्य होकर कलकत्ता के एक होटल मे ठहरना पड़ा परंतु होटल में रहकर पढ़ाई तो नहीं की जा सकती। अतः कही अन्यत्र ठौर-ठिकाना पाने की कोशिश शुरू हुई। चौधुरी के अपने देश-गाव-क्षेत्र के कुछ विद्यार्थी हैरीसन रोड के एक प्राइवेट लॉज में ठहरकर पढाई कर रहे थे। अघोर विश्वास और सत्येन सरकार नामक के वे दो परिचित विद्यार्थी अपने उसी प्राइवेट लॉज मे ठहराने के लिए चौधुरी को भी लिवा ले गए।

चौधुरी ने पूछा, "मेरे लिए अलग से कोई जगह भी है ?"

अघोर ने बड़ी निश्चिंतता से कहा, "अरे हो जाएगी, किसी-न-किसी तरह।"

खैर, होने में कोई असुविधा नहीं है। दूसरे तल्ले के बारह नंबर के एक कमरे में अघोर और उसके साथी वगैरह रहते हैं। चौधुरी के वहां पहुंचने के पहले से ही उसमें आठ विद्यार्थी रह रहे थे। अब उसमें अगर एक विद्यार्थी और बढ़ जाता है, तो भी कोई असुविधा नहीं। उस कमरे में एक भी चौकी या चारपाई नहीं है। सभी-के-सभी कमरे के फर्श पर ही सोते हैं। दिन उगते ही बिस्तरे समेटकर दीवार के सहारे लगा दिए जाते हैं। रात होने पर फैलाकर बिछा देने से ही काम चल जाता है। कौन किसके बिस्तरे पर सो पड़ता है इसका भी कोई ठौर-ठिकाना नहीं, न इसकी कोई चिंता ही है। देरी करके आने पर कोई भी अपने निजी बिस्तरे पर सोने की सुविधा नही भी पा सकता है।

उस कमरे में रहनेवाले सभी-के-सभी लड़के चौधुरी के अपने इलाके की ओर के ही हैं। अघोर और सत्येन तो उसके बचपन के बेसिक प्राइमरी स्कूल के दिनों से ही साथी हैं। दिवाकर, सत्य और अन्य विद्यार्थी यद्यपि उनके अपने अंचल की ओर के ही हैं, परंतु अब से पहले उनसे चौधुरी का कोई परिचय नहीं था। यहीं पर साथ होने के बाद परिचय हुआ। वैसे तो सभी-के-सभी लड़के विभिन्न विद्यालयों-महाविद्यालयों में पढ़नेवाले छात्र हैं, परंतु वास्तविकता यह है कि वे सब नाम भर के लिए ही विद्यार्थी हैं। कोई भी अपनी कक्षा में पढ़ने नहीं जाता। किसी के पास भी पुस्तकें या अभ्यासपुस्तिकाएं वगैरह नहीं हैं। अगर कभी कोई अकस्मात अपनी कक्षा में चला भी जाता है तो एक पुस्तक अपनी जेब में रखे पहुंच जाता है। कक्षा में पहुंच जाने पर भी वहां बैठकर पढ़ने का किसी के पास समय भी नहीं

है। घर से आनेवाले रुपयों-पैसों के भरोसे खर्च चला पाने का कोई उपाय भी नहीं है किसी के पास। अतएव हर एक को अपने खर्चे वगैरह की व्यवस्था खुद ही करनी होती है। दिवाकर ट्यूशन पढ़ाता है, अघोर किसी गैर-सरकारी फैक्ट्री में काम करता है, सत्येन लड़के-लड़कियों को गाना सिखाता है।

सब कुछ जैसे-तैसे चलता तो है, पर उनके कमरे को एक प्रकार की धर्मशाला ही कह सकते हैं। उनके गांव-गिरांव, अंचल-इलाके के दूर-दूर तक के लोग भी जब कभी अपने काम से कलकत्ता आते हैं तो बोरिया-विस्तर लिए सीधे उन्हीं के यहां आ धमकते हैं। एकाध व्यक्ति हों तो भी कोई बात नही, वहा तो आदमियों का रेला ही लगा रहता है। कलकत्ता ऐसी महत्वपूर्ण जगह है कि नाना कारणों से लोग यहा आएंगे ही। उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) मे कइयों के कई तरह के काम अटके हैं, विश्वविद्यालय में भी ढेर सारे काम है। किसी की बीमारी जब वश के बाहर होती दिखती है तो विशेष चिकित्सा के लिए उस मरीज को कलकत्ता ले आते हैं। व्यापारी-दुकानदार अपना माल खरीदने कलकत्ता आते ही रहते हैं। कुछ लोग बस कलकत्ता की सैर करने के उद्देश्य से भी कलकत्ता आते हैं। ऐसे वे तमाम सारे लोग जान गए हैं कि कलकत्ता जाने पर कोई असुविधा नहीं है। हैरीसन रोड के उस प्राइवेट लॉज में जहां अपनी तरफ के वे लड़के रहते हैं, वहां पहुंच जाने भर से ही सारी दिक्कते दूर हो जाएगी। वहां केवल ठहरने की ही सुविधा मिल जाएगी, इतनी भी बात नहीं। दरअसल वे लड़के सब-के-सब बड़े भले है। सभी की हर तरह से बड़ी सहायता करते है। वैसे कलकत्ता शहर तो एक ऐसा विकट शहर है कि कोई जान-पहचान न हो तो दिन की दुपहरी के तेज उजाले मे भी भयंकर अंधेरा घिरा महसूस हो। किसी को किसी विशेषज्ञ चिकित्सक से मिलने की जरूरत है, किसी को किसी नामी-गरामी वकील-बैरिस्टर से मिलना जरूरी है, जाने कैसे-कैसे, कितने तरह के काम लोगों के अटके हैं। अब जाना-समझा कोई एक आदमी साथ न होने से कौन, कहां, किस चीज का, क्या पता पाएगा ? जो बस मौज-मस्ती में कलकत्ता की सैर करने भर को ही आए हैं उन्हें भी चिड़ियाखाना, म्यूजियम, जादूघर, हाई कोर्ट भवन वगैरह ले जाकर दिखलाना पड़ेगा। जब कोई कलकत्ता आया, और उसने थियेटर में जाकर नाटक-नाच वगैरह ही नहीं देखा, तो भला कैसे चलेगा ? जो धर्म में विश्वास रखनेवाले लोग हैं, उन्हें तो काली घाट ले जाकर मां काली के दर्शन कराने ही होंगे। सो काम कोई भी हो, ये लड़के हर एक दृष्टि से बड़े पके हुए, सुलझे हुए लड़के हैं। कलकत्ता शहर के गली-कूचे, हर एक स्थान तो उनके नख-दर्पण में है, हाथ पसारा नहीं कि सभी कुछ उन्हें साफ दिखाई पड़ जाता है। हर एक चीज की पूरी और सही जानकारी उन्हें है। कौन सी चीज कलकत्ता के किस अंचल में सस्ते में मिलती है, यह भी वे भली भांति जानते हैं। अच्छे-से-अच्छे चतुर दुकानदार

भी जब उन्हें साथ लेकर जाते हैं, तो अपनी उम्मीद से भी ज्यादा सस्ते में सामान पाकर खुशी के मारे गद्गद हो जाते हैं।

उनके अपने अंचल से आए प्रसिद्ध व्यापारी वृंदावन महाजन तो इन लड़कों के संपर्क में आकर बेहद मुग्ध हो गए। रात में जब उन्होंने थोड़ी शराब चढ़ा ली, तो लड़कों को पकड़कर उन्हें जबरन एक बंडल रुपया देने के लिए जोर-जबरदस्ती करने लगे, जिससे धक्का-मुक्की शुरू हो गई। उनका तर्क यह था कि इन लड़कों की सहायता से उन्होंने जो माल खरीदा है, उससे उन्हें कम-से-कम दस हजार रुपए का अतिरिक्त लाभ होगा। इतने भले लड़के हैं ये। उन्हें साथ लेकर कलकत्ता के बाजार में दिन-रात दौड़-धूप करते रहे हैं। इतना कुछ सबके लिए करने पर भी वे इतना कष्ट झेलकर ऐसी जगह जैसे-तैसे गुजारा करते हैं। महाजन इसीलिए आग्रह कर रहे थे कि कम-से-कम एक हजार रुपए तो उन्हें लेना ही पड़ेगा। वे तर्क भी दे रहे थे कि "मैं कोई ऐसे थोड़े ही दे रहा हूं। मुझे इतना अधिक लाभ होगा, इसी से तो उसमें से थोड़ा सा हिस्सा उन्हें देना चाहता हूं, जो उनका हक है।" परंतु लड़के अपनी जिद पर अड़े रहे, कि नहीं, वे एक पैसा भी नहीं लेंगे। लड़कों ने जब किसी भी तरह उनसे पैसे नहीं लिए तो मारे दुख के महाजन बेचारे फूट-फूटकर रोने लगे।

अघोर और उसके साथियों ने दो सप्ताह में ही भूदेव चौधुरी को कलकत्ता से भली-भांति परिचित करवा दिया था। वे इतने पक्के हो गए कि अकेले-अकेले ही श्याम बाजार इलाके की गली के अंदर के मकान को ढूंढ निकाल सकते थे। इस बीच उन्होंने बहुत सी अत्यंत आवश्यक और उपयोगी बातें जान लीं। जैसे कि आमहर्स्ट स्ट्रीट के लोटस होटल में केवल पांच आने में लूची (मुलायम पूड़ी) और चने की दाल की सब्जी इतनी मिलती है कि खाकर पूरा पेट भर जाता है। बैठकखाना मार्ग के पास ही गली के भीतर नीम अंधेरे में लालटेन की रोशनी में पेड़ के नीचे रखी टूटी बेंचों पर बैठकर बहुत सस्ते में मोगलाई परांठा और मुर्गे का मांस खा सकते हैं। जिस लॉज में वे सब रहते हैं, उसके बिलकुल पास में अभय भाई साहब की चाय की दुकान है, परंतु यह कब खुलती है, इसका कोई ठीक-ठिकाना नहीं है। जब उनकी मर्जी होती है, तभी दुकान खुलती है। कभी-कभी तो पूरे-के-पूरे दिन दुकान बंद ही रह जाती है। कभी पूरी भरी दुपहरी में खुलती है, तो कभी काफी रात गए भी खुल जाती है। परंतु उनकी दुकान को खुलते देखते ही तमाम लोग दौड़ते-भागते उसमें जा घुसते हैं। वैसे उनकी दुकान में चाय और बिस्कुट के सिवा और कुछ होता ही नहीं। परंतु उनकी चाय ? वाह-रे-वाह ! अद्भुत स्वादवाली चाय होती है। अभय भाई साहब की दुकान की चाय की सुगंध और स्वाद की याद भूदेव चौधुरी को आज तक भूली नहीं।

पढ़ाई-लिखाई का जहां तक सवाल है उन लड़कों में से किसी की भी कुछ भी नहीं हो पाती, उसके लिए उनमें से किसी के भी मन में कोई चिंता-फिक्र भी नहीं है। उस लॉज में रहनेवाले उन लड़कों के रहन-सहन, उनकी जीवन-शैली के साथ भूदेव चौधुरी की जीवन-शैली कुछ दिनों में ही पूरी तरह मिल गई। वे भी ठीक उन्हीं की तरह दिन गुजारने लगे। उन्हीं जैसे कामों में रम जाने के कारण किरण फूटने की भोर की बेला से लेकर आधी रात गुजरने तक उन्हें भी जरा सा आराम करने की भी फुरसत नहीं मिल पाती थी।

एक दिन अघोर ने कहा, "भूदेव ! अब तो तू भी बड़ा पक्का हो गया रे। सो शरत भाई साहब की आंखों को दिखाने की व्यवस्था अब तू ही कर। आज मुझे वृंदावन महाजन साहब को हावड़ा के बाजार में ले जाना है। अतः आज तू एक काम कर। रघु को साथ लेकर उन्हें डा. सामंत को दिखा लाने की व्यवस्था कर।"

रघु मधुपुर अंचल की ओर का ही विद्यार्थी है। वह कलकत्ता के केम्बेल मेडिकल कालेज में पढ़ता है। डा. सामंत उसी केम्बेल मेडिकल कालेज में पढ़ाते है।

किसी के पास भी समय नहीं है। आराम करने की फुरसत नहीं है। सब-के-सब हमेशा अति व्यस्त हैं। पढ़ने-लिखने के संबंध में कुछ सोचने-विचारने के लिए किसी के पास कोई समय ही नहीं है। अघोर और उसके साथियों की ऐसी जीवन-शैली के साथ भूदेव चौधुरी की जीवन शैली मिलकर एकमेक हो गई। इसी दौरान अघोर वगैरह ने चौधुरी के लिए दो ट्यूशनों का भी इंतजाम कर दिया था। समय निकाल सको तो ट्यूशन पढ़ा आओ। आसपास के बहुत सारे लोगों से इस लॉज में रहनेवाले इन लड़कों का बड़ा ही घनिष्ठ संपर्क स्थापित हो गया था।

अचानक ही कोई अपनी मोटरकार लिए आ पहुंचता है। बड़ा ही सौम्य-सुशील और प्रभावपरक चेहरा-मोहरा। सत्येन जैसे ही उनके सामने पहुंचता है कि उसे डांटने-फटकारने लगते हैं, "क्यों रे, क्या बात हो गई है ? इतने दिनों से तुम्हारा कोई अता-पता ही नहीं लगता। तुम्हारी मौसी जी उधर क्रोध के मारे लाल हुई जा रही हैं। तुम लोगों के न जाने से बहुत नाराज हैं। सो कल दोपहर को तुम सभी लोगों को मेरे यहां भोजन करने आना होगा। बिलकुल पक्की बात है। इस बार भी अगर तुम लोगों ने फांकीबाजी की तो फिर ठीक नहीं होगा। कहे जाता हूं।" कोई भद्र महिला मौसी जी हैं, कोई भाभी जी, तो कोई मंझली बहन जी। सभी के साथ यथायोग्य घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया है इनका। परंतु कोई भी संबंध, कोई भी बंधन इन लड़कों को बांधे नहीं रख सकता। निकृष्ट किस्म का भोजन करते हैं, निकृष्ट किस्म के कपड़े पहनते हैं। किसी भी कष्ट को कष्ट के रूप में लेते ही नहीं। एकदम से निस्स्वार्थ भाव से, बिना किसी लोभ-लालच के कर्तव्य करते चले जाते हैं, बिलकुल संन्यासियों की तरह। किसी के प्रति कोई गिला-शिकायत नहीं। किसी से घृणा नहीं, किसी के प्रति बदले की कोई भावना नहीं। ईर्ष्या-द्वेष नहीं। आज

के जमाने के प्रचलित मानदंडों पर तौलकर देखें तो इन लड़कों में से किसी एक को भी बड़ा आदमी नहीं कह सकेंगे। पढ़ने-लिखने में कोई विशेष चोखे नहीं, आर्थिक दृष्टि से पैसे-रुपयों के मामले में तो उनकी दशा बेहद सोचनीय है। उनका ज्ञान और बौद्धिक क्षमता भी सीमित है। उनका स्वभाव, उनका चरित्र अत्यंत निर्मल है, यह बात भी हम जोर देकर नहीं कह सकते हैं। अघोर लुक-छिपकर शराब पीता है। दिवाकर जुआ खेलकर रुपए कमाता था। उनमें से अतुल भाई साहब एक ऐसे थे जो उम्र में सभी से बड़े थे। किसी-किसी दिन रात की बेला में वे लापता हो जाया करते थे। जब काफी रात बीत जाने पर भी वे डेरे पर नहीं लौटते तो कोई-कोई फुलझड़ी छोड़ता, "इसका मतलब यह कि अतुल भाई साहब आज ससुराल गए हुए हैं।" अर्थात ऐसी बस्ती में गए हैं, जहां भले आदमियों को जाना मना है।

अपने इस जीवन में चौधुरी ने अनेकों बड़े आदमियों का संग-साथ पाया है। शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से बड़े आदमी, पद-मर्यादा और उच्चाधिकार की संपन्नतावाले बड़े आदमी। देश के बड़े-बड़े नेता और ऐसे व्यक्ति जिन्हें लोग पूजनीय मानते हैं। उन लोगों के साथ रखकर तुलना करने पर तो इस लॉज के निवासी इन लड़कों में कहीं कुछ भी नहीं है। हर तरह से ये उनकी अपेक्षा गए-बीते ही ठहरते हैं। फिर भी ये अभागे लड़के ही भूदेव चौधुरी के मन के आकाश में अभी तक सबसे अधिक चमकनेवाले सितारे की तरह देदीप्यमान हैं।

नौ

हैरीसन मार्ग के उस प्राइवेट लॉज को छोड़कर अगर वे दूसरी जगह नहीं चले गए होते, तो भूदेव चौधुरी की दशा कैसी हुई होती ? यह सोचते ही भूदेव चौधुरी की देह कांप उठती है। अघोर ने तो व्यर्थ की बात में ही अपने प्राणों की आहुति दे दी। अगर उसकी ऐसी मृत्यु को आत्महत्या करना कहें, तो कह ही सकते हैं। वह तो उस दंगे की भेंट चढ़ गया। सत्येन सरकार मधुपुर में एक मनिहारी की दुकान चलाता है। वैसे कोई खास बिक्री-बट्टा नहीं है। एक झुंड बच्चे-बच्चियों का परिवार लिए बड़े कष्ट में जिंदगी गुजार रहा है। दिवाकर दास ने उस दंगे में जो चोट खाई, सो उस चोट से अभी आज तक निस्तार नहीं पा सका है। उससे कोई बात कहो तो कुछ समय तक खोई-खोई दृष्टि से कहनेवाले की ओर एकटक निहारता रहता है, ऐसा जान पड़ता है जैसे उस बात को वह समझ ही नहीं सका है। वहां होते हुए भी बात करते समय जैसे वह कहीं और था, बस अब वहां आ पहुंचा है।

वैसे आजकल दिवाकर दास 'साधना पुस्तक भंडार' नामक एक दुकान पर काम करता है। दुकान पर कैश-बाक्स यानी मुद्रा की पिटारी की देखभाल करता

वह बैठा रहता है। असलियत तो यह है कि वह अपनी नौकरी से अवकाश ले चुका है। वह तो सरोज दत्त है जिसने उसे जबरदस्ती खींच तान कर दुकान की मुद्रा-पिटारी के पास ला बिठाया है। उसकी दुकान पर दिन भर में ही हजारों रुपयों की बिक्री होती है। सारी खरीद-फरोख्त नगद रुपयो में ही होती है। दुकान में इतने सारे कर्मचारी भरे हैं, कौन कब-क्या कर बैठे, कोई ठिकाना नहीं। सो दिवाकर दास को रुपए-पैसों की जिम्मेदारी सौंप सरोज दत्त तो निश्चिंत हो गया है।

सरोज दत्त के पिता घनश्याम दत्त उस पुराने जमाने में ही बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर कुछ दिनों तक असम की तत्कालीन राजधानी शिलांग में ठहरकर किसी अच्छी नौकरी की आशा में दौड़-धूप करते रहे थे, फिर कुछ भी जुगाड नही बैठा पाए। गुवाहाटी नगर को पान बाजार मुहल्ले के निवासी अपने बहनोई की सलाह मानकर उन्होंने फिर व्यवसाय करना आरंभ किया। उस इलाके मे पुस्तकों की कोई दुकान थी नहीं, अतः उन्होंने धुबरी के एक ऐसे इलाके में पुस्तकों की दुकान खोलने का फैसला लिया। उनकी इस कोशिश मे दिवाकर ने उनकी भरपूर मदद की थी। कलकत्ता के गली-कूचे तो उन लोगो को भली-भांति मालूम ही थे। विद्यालयों-महाविद्यालयों में चलनेवाली पाठ्य-पुस्तको के अतिरिक्त अन्य प्रकार की पुस्तके, ऐसी पुस्तकें जिनमें कुछ खराबी आ गई थी, बेकार समझकर कोनों में फेंके-पवारे स्लेट, कापियां इत्यादि बस नाममात्र के दामों पर उन्हें खरीदवा दिया। लक्ष्मी महात्म्य की कथा, सत्यनारायण कथा, बटतला से प्रकाशित साधारण कोटि के उपन्यास वगैरह ऐसी पुस्तके तो तराजू पर जोखकर बहुत सस्ते दामों पर उसने जुटवा दिया। इसी तरह 'साधना पुस्तक भंडार' का आरंभ हुआ। घनश्याम दत्त के प्रति भाग्यदेवता प्रसन्न थे। फलतः दुकान की अच्छी बिक्री और बहुत अच्छा लाभ होने लगा। उनके छल-कपटहीन, सीधे-सरल स्वभाव के कारण भी लोग उन्हें चाहते थे, सो व्यापार जोर-शोर से चल पड़ा।

घनश्याम दत्त में साहस और काम करने में अथक प्रयास करने की क्षमता थी। धुबरी जैसी जगह पर दुकान करते हुए खाते-पहनते रहते हुए भी कोई बहुत बड़ी उन्नति कर लेने की कोई विशेष संभावना नहीं थी। अतः खतरा मोल लेते हुए दुस्साहस करके उन्होंने धुबरी की दुकान उठा दी और उसके बदले अपने बहनोई के पान बाजार स्थित घर के अगले हिस्से के कमरे में नई दुकान शुरू की। उनके इस पागलपन को देख उनके जो शुभचिंतक थे वे बहुत रुष्ट हुए। सभी ने उन्हें समझाने की कोशिश की, "यह सब पागलपन क्यों कर रहे हो ? इससे तो अच्छा है कि किसी प्राइमरी पाठशाला वगैरह में कोशिश कर लग जाओ। सुना है, जिलाधिकारी कार्यालय में कुछ लोगों को नौकरी दिए जाने की बात चल रही है। उसी के लिए कोशिश क्यों नहीं करते ? अगर कहो तो मैं भी कुछ कोशिश कर सकता हूं।"

शुरू-शुरू में खाने-पीने रहने का कार्य बहन के घर चल जाता था, ताकि दुकान का काम चल सके। घनश्याम दत्त का लोगों के प्रति व्यवहार बहुत ही अच्छा था। सभी लोग उन्हें प्यार करते थे, उनका भला चाहते थे। इसी से फिर बिक्री में तेजी आने लगी। धीरे-धीरे उन्होंने और भी काम फैलाया और असमिया भाषा की पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करने लगे। नाम रखा—'साधना प्रकाशिनी'। परंतु केवल नाम भर के लिए प्रकाशिनी थी। उनका अपना कोई मुद्रणालय या छापाखाना नहीं था। छपाई वगैरह का सारा काम कलकत्ता में ही होता था। और कलकत्ता में उनका समस्त कार्य दिवाकर दास ही संभालते थे। छोटे-छोटे प्रेसों का पता कर वहां कम मूल्य पर कपोजिंग करवाने, प्रूफ उठवाने, प्रूफ जांचने, फिर उसे किसी दूसरे प्रेस में ले जाकर छपवाने का प्रबंध करने, बैठकखाना में पहुंचाकर वहां के जिल्दसाजों से पुस्तकाकार रूप में बंधाई करवाने का कार्य जैसे सारे कार्यो को करने-करवाने का उत्तरदायित्व दिवाकर दास पर ही था। दिवाकर दास की विशेषता है कि वे जो कोई भी काम करते हैं पूरी निष्ठा और आंतरिक भावना से करते हैं। सो वे सारे कार्य दिवाकर दास बहुत कुशलता से करते थे। वास्तविकता तो यह है कि 'साधना प्रकाशिनी' के आरंभ में ही वे उससे घनिष्ट भाव से जुड़े हुए थे।

घनश्याम दत्त ने फिर कुछ पुरानी मशीनें और कल-पुर्जे खरीदकर यहीं (गुवाहाटी में) एक मुद्रणालय या छापाखाना खोला। फिर जोर देकर दिवाकर दास को यहीं खींच लाए और अपने मुद्रणालय के काम में लगा दिया। अब चाहे उन्हें मुद्रणालय का प्रबंधक कहें, चाहे छपे फर्मो का प्रूफ-रीडर कहें, मुद्रणालय के भीतरी सारे कार्य वे ही देखते थे।

घनश्याम दत्त की आज की अवस्था देखकर कोई भी व्यक्ति यह अनुमान नहीं लगा पाएगा कि शुरू-शुरू में घनश्याम दत्त ने अपना व्यवसाय किस हालत में आरंभ किया था। बीस-पच्चीस वर्षो के अंदर ही कहां-से-कहा उतने ऊंचे जा पहुंचे थे। एक प्रकार का जादू ही समझें। उनके राजप्रासाद जैसे विशाल अट्टालिकामय भवन के सामने से गुजरते हुए यात्री के मन में अपने आप ही यह कौतूहल जाग पड़ता है—'बाप रे बाप ! यह राजप्रासाद जैसा किसका भवन है ?" दत्त परिवार की संपत्ति का अनुमान लगा पाना भी बहुत मुश्किल है। अति आधुनिक श्रेणी का उत्तम मुद्रणालय, पुस्तकों की ऐसी विराट दुकान को देखते ही रह जाओ। वैसे अब घनश्याम दत्त स्वयं सक्रिय रूप से काम-काज की देखभाल स्वयं नहीं कर पाते। फिर भी वे घर बैठे-बैठे ही हर एक बात की खोज-खबर रखते हैं।

घनश्याम दत्त के तीन पुत्र हैं—तीनों-के-तीनों उच्च शिक्षित, शिष्ट व्यवहार में निपुण और कर्मठ हैं। सबसे बड़ा बेटा अनुपम दत्त एक विख्यात सामुदायिक प्रतिष्ठान में बड़े ऊंचे ओहदे पर अफसर है। सबसे छोटा (विदेश में) लुइविल विश्वविद्यालय में शिक्षक है। मंझला बेटा सरोज ही उनके सारे व्यवसाय का संचालन करता है।

घनश्याम दत्त वैसे तो भजन-कीर्तन में लगे रहते हैं, फिर भी चारों ओर के माहौल पर सतर्क नजर रखते हैं। सरोज दत्त ने उस दिन बात उठाई तो बोल पड़े, "अच्छा ! ऐसी बात है क्या ?" उन्होंने जिस स्वर में पूछा उससे सरोज कुछ सकपका सा गया।

"दरअसल बात यह है कि मुद्रणालय (प्रेस) का काम ही इतना अधिक फैल गया है कि पुस्तकों की दुकान की ओर अच्छी तरह दृष्टि रख पाना ही असंभव हो गया है। अतः मैं सोचता हूं कि दुकान का काम बंद ही कर दिया जाए और सारी शक्ति इस ओर ही लगाकर काम करें तो अच्छा हो।"

"ऐसी बात है क्या ?"

"अब देखिए न, इतनी बड़ी दुकान है। बिक्री भी बहुत अच्छी ही होती है। परंतु उस अनुपात में कुछ भी लाभ नहीं होता।"

"होगा भी कैसे ? नकद पैसे का कारबार है वह। अपना बहुत विश्वास-परायण कोई भला आदमी जब तक न हो; लाभ होगा भी कैसे भला ?"

"मगर आजकल के जमाने में कोई विश्वास-योग्य भला आदमी तुरत-फुरत कहां मिल पाएगा ?"

"जरूरत पड़ी तो मैं स्वयं ही उस दुकान पर बैठ सकता हूं।"

"ये आप क्या कह रहे हैं ?"

"देखो बेटे ! मैं जब तक जिंदा हूं, 'साधना पुस्तक भंडार' भी तब तक बना रहेगा। हां, मेरी मृत्यु के बाद तुम लोगों का जो मन आए करना।"

सरोज कुछ देर तक चुप बैठा रहा।

तभी घनश्याम दत्त एकाएक बोल पड़े, "एक काम करो न। दिवाकर को बुलाकर दुकान का नकदी-संदूक, खरीद-बिक्री के सारे हिसाब-किताब की देखरेख का सारा भार उसे ही सौंप दो न।"

"आप का क्या खयाल है ? वे इस तरह बुलाने पर आएंगे ?"

"हां। तुम उससे बस यह कहना कि ऐसा करने के लिए मैंने कहा है। मैंने स्वयं उससे अनुरोध किया है, इस बात का विश्वास दिलाना। कहना कि कुछ दिनों तक वहां रहकर उसे सही रास्ते पर चलाकर, उसकी सद्‌गति बनाकर फिर वह चाहे तो लौट जा सकेगा।"

हैरीसन रोड (कलकत्ते की) के उस प्राइवेट लॉज के अशुभ प्रभाव से बचकर वे अगर दूर नहीं चले गए होते, तो फिर उनके जीवन की क्या दिशा हुई होती ? इस बात पर सोचते-विचारते हुए अब भी भूदेव चौधुरी का शरीर कांप जाता है। तमोली नामक विद्यार्थी उन्हें जोर-जबरदस्ती से खींचकर उस गर्हित परिवेश से दूर मिशनरी छात्रावास में ले गया था। यद्यपि उस प्राइवेट लॉज में रहनेवाले छात्रों की मानसिक अवस्था

के साथ चौधुरी की मानसिक अवस्था ऐसी मेल खा चुकी थी कि मिशनरी छात्रावास में जगह पाकर भी वे वहां जाने से हिचकिचा रहे थे। जैसे-तैसे बचकर उसी पुराने परिवेश में बने रहना चाहते थे। परंतु दिवाकर और उसके साथियों ने भी जोर देकर उन्हें उस परिवेश से दूर विदा कर दिया। "जाओ यहां से, जितनी जल्दी हो दूर चले जाओ। यहा रहने पर पढ़ना-लिखना कुछ भी नहीं हो पाएगा। यहां पढ़ाई का माहौल ही नहीं। खुद ही विचारकर देखो न, मैं कितने सालों से अभी बी.काम. में ही घसीटता जा रहा हूं। मन में पढ़ने की उत्कट इच्छा रखते हुए भी यहां रहकर पढ़ाई कर पाने का कोई उपाय नहीं है। दरअसल यह जगह तो एक बाजार है। कोई छात्रावास थोड़े ही है। सो तुम्हें यहां से हटने का जो सुयोग मिला है, उसे गंवाओ मत। तुरंत चले जाओ।"

"लेकिन मेरी बात पर ध्यान दो।"

"ध्यान देने की कोई जरूरत नहीं है। उसके अलावा इस लॉज की देख-रेख करनेवाला प्रबंधक भी बराबर आपत्ति करता रहता है। उसकी आपत्ति सही भी है : मेरे इस कमरे में नियमानुसार चार विद्यार्थियों के रहने की जगह है। इसके अलावा एक-दो दिन के लिए कोई मेहमान और आ जाए तो वह उसका बुरा नहीं मानता। उससे कुछ अधिक पैसे भी पा जाता है। भोजनालय में मिलनेवाले कुछ पैसों का उसे लालच रहता है। मगर इतने सारे लोगों का छात्रों की तरह ही बराबर टिके रहना ? ना बाबा ना। बहुत अच्छा सुयोग बैठ गया है। सच भाई, तू यहां से चला जा। यहां से न जाने का तो कोई माने ही नहीं है।"

ईसाई मिशनरी छात्रावास का वातावरण बिलकुल अलग प्रकार का है। यहां रहनेवाले सारे-के-सारे छात्र प्रायः धनी-मानी संपन्न परिवारों के लड़के हैं। पढ़ाई-लिखाई में ही रुचि रखनेवाले, अतएव पढ़ाई में अच्छे भी है। साधन-संपन्न व्यवस्थित परिवारों के लड़के हैं। पढ़ाई-लिखाई के अतिरिक्त और किसी चीज की परवाह नहीं। बाहरी बातों में बिलकुल रुचि नहीं है, उन्हें लेकर कोई हल्ला-गुल्ला करने में नहीं लगते। किसी के साथ भी बुरा व्यवहार नहीं करते और किसी को सर चढ़ाकर नाचने भी नहीं जाते। उनके माता-पिता अभिभावक उनके भविष्य के संबंध में निश्चिंत रह सकते हैं। ये लड़के बड़े बुद्धि-संपन्न और सतत सतर्क हैं। अचानक उठी किसी भी लहर में वे बिना सोचे-समझे कूद नहीं पड़ते। नई होने की वजह से ही वे किसी विचारधारा को अंगीकार नहीं करते। वस्तुतः वे समाज के सुदृढ़ स्तंभ हैं।

परेश सेन नामक छात्र द्वारा व्यक्त विचारों से यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है। छात्रावस्था में जैसा होता है, परमात्मा और अन्य देवी-देवताओं के सचमुच होने अथवा न होने के संबंध में छात्रावास के सामने के बरामदे में कुछ छात्रों में ऊंचे स्वर में उत्तेजनापूर्ण तर्क-वितर्क हो रहा था। परेश सेन ऊंची

कद-काठी, हृष्ट-पुष्ट आकृति, और गंभीर प्रकृति का छात्र है। उससे ऊंची कक्षाओं में पढनेवाले विद्यार्थी भी उसे बड़े सम्मान से 'परेश भाई साहब, परेश भाई साहब' कहकर पुकारते हैं। शेष छात्रों में जब जोर-शोर से तर्क-वितर्क हो रहा था तो परेश चुपचाप उनकी बातें सुन रहा था। बिराज ने उसे अपनी बात का समर्थन करने के अभिप्राय से अचानक कहा, "परेश भाई साहब ! आप तो बिलकुल गुमसुम हो मौन साधे बैठे हैं। आप भी बताइए न कि आप के क्या विचार हैं ? हम लोग जो नाना प्रकार के देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करते है, ये देवी-देवता क्या सचमुच हैं, उनका सच्चा अस्तित्व है भी क्या ? ये सब आदमियों द्वारा ही बना लिए गए नहीं हैं क्या ?"

एकाएक उन्हें बीच में घसीट लेने से परेश ने कुछ परेशानी का अनुभव किया। कुछ देर तक पहले की तरह ही चुप बने रहने के बाद फिर वे गंभीर स्वर में बोले, "देख बिराज ! इस प्रसंग मे कोई मत व्यक्त न करने में ही भलाई है। अब इस मां काली की ही बात लो न। अगर उनका कोई अस्तित्व नही है, तब तो ठीक है कि वे नहीं हैं। परंतु अगर कहीं वे हैं, तब ? क्या होगा तब ? अगर तब हम कहें कि वे नहीं हैं, तो क्या वे क्रोध के मारे आग-बबूला नहीं हो जाएंगी ? तब क्या वे हमें ऐसे ही छोड़ देंगी ? सो भाई, इन सब बातों को लेकर तर्क न करना ही अच्छा है।"

परेश भाई सभी को 'तू' कहकर ही पुकारते थे। सो वह तो कोई खास बात नहीं थी। बल्कि बात चाहे जैसे भी निकली हो, परेश भाई साहब के मुह से निकली यह बात बड़ी मूल्यवान थी। अपने आप पर कोई आफत-विपत न आने पाए, हर एक प्रकार की संभावित विपत्ति से अपने आपको बचाए रखते हुए चलने की बात ही सबसे महत्वपूर्ण बात है।

मिशनरी छात्रावास में रहने के उस समय में भूदेव चौधुरी सभी प्रकार की बाहरी बातों से पूरी तरह मुक्त थे। राजनीतिक और सामाजिक—सभी प्रकार की समस्याओं से बहुत दूर। बिलकुल अप्रभावित। यह संसार, यह पृथ्वी जैसी है उसे ठीक उसी रूप में ग्रहण करने की भावना उनमें जड़ जमा गई थी। वैसे अगर देखें तो यह पृथ्वी क्या बुरी है ? यहां तो उनका भी स्थान है। अच्छी तरह से पढ़ाई-लिखाई करके, अच्छी श्रेणी में परीक्षा उत्तीर्ण करके जीवन में अच्छी तरह चला जा सकेगा। उनकी आशाओं का क्षितिज सीमित था और यही तो अच्छा, सहज, सुंदर जीवन है।

इस छात्रावास में रहते हुए ही भूदेव चौधुरी ने शतरंज खेलना सीखा। उस छात्रावास के प्रबंधक सरकार महोदय ने ही उन्हें शतरंज खेलना सिखाया। शतरंज का खेल एक ऐसा खेल है कि उसे खेलते हुए उसी में ऐसा निमग्न हुआ जा सकता है कि और कोई चिंता-भावना मन में आए ही नहीं। उन्हें तो ऐसा अभ्यास हो

गया कि प्रत्येक शाम को वे सरकार महोदय के साथ शतरंज खेलने लगे। खेलते-खेलते अगर वे चाल चलने में कोई गलती कर बैठते तो सरकार महोदय मारे गुस्से के चिल्ला पड़ते, "यह क्या कर दिया रे तूने ! घोड़े के सामने हाथी को क्यों ला खड़ा किया ? रहने दे, तुझसे नहीं होगा। जा भाग जा। शतरंज खेलना छोड़ दे। जाकर नए-नए पढ़ने आए बी.ए. प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों के साथ लूडो खेलना शुरू कर दे।"

दिवाकर दास से बी.काम. परीक्षा पास कर पाना संभव नहीं हो पाया। कलकत्ता के उस सांप्रदायिक दंगे में जो मारात्मक चोट उन्हें लगी थी, उसके बाद से ही वे न जाने कैसे, अत्यंत अंतर्मुखी प्रकृति के हो गए। किसी भी काम के प्रति कोई आग्रह नहीं दिखाते। बातचीत भी ज्यादा नहीं करते। सब कुछ से निरासक्त, चुपचाप, ढीले-ढाले पड़े रहते। ठीक ऐसे ही समय में घनश्याम दत्त ने अपने पुस्तक प्रकाशन का सारा कारबार कलकत्ता में रहकर संपन्न करने-कराने के लिए जो दिवाकर के जिम्मे सौंपकर स्वयं निश्चिंत रहने का उपाय किया, तो इससे दिवाकर दास की जड़ता टूटी, वे भी संभल गए। यह काम उनके मन के माफिक काम था, सो इस काम में वे पूरी तरह से लग गए। अपनी सारी क्षमता से, पूरी निष्ठा से वे प्रकाशन का काम संभालने लगे।

घनश्याम दत्त पूरी तरह से प्राचीन परंपराओं को माननेवाले परंपरावादी आदमी ठहरे। भावुकता को वे छोड़ नहीं पाए। दिवाकर दास की क्षमताओं को पहचानकर उन्होंने गुवाहाटी में ही एक मुद्रणालय खोल दिया और उसका सारा कार्यभार दिवाकर दास को सौंप दिया। यहां तक कि अपने एक दूर के संबंध की भतीजी के साथ दिवाकर दास का विवाह भी करवा दिया। विवाह की चर्चा जब उन्होंने पहले-पहल दिवाकर दास से छेड़ी थी तो दास ने बड़ी लज्जा महसूस की थी और विवाह करने से आनाकानी करने लगे थे; तब दत्त ने डपटते हुए कहा था, "अरे वाह ! इसमें लज्जा की क्या बात ? जीवन में अगर विवाह करना है तो यही समय सबसे अच्छा है। अभी कर लो। विवाह करना हो तो तीस वर्ष की अवस्था होने के पहले ही कर लेना चाहिए। अगर इस समय नहीं करते तो फिर पूरे जीवन के लिए उसे छोड़ दो। फिर विवाह करवाने की कोई जरूरत ही नहीं।"

"नहीं ऐसी कोई बात नहीं, मेरा मतलब है कि घर-द्वार..."

"अरे रोको भी अपनी वाहियात बातें। सारी झंझटों को निपटा लेने के बाद ही अगर विवाह कराना उचित हो तब तो रिटायर हो जाने के पहले किसी का भी विवाह करवाना ठीक नहीं है।"

"नहीं, मेरा मतलब है कि..."

"रहने भी दो अपना मतलब-सतलब। हां, अगर यह लड़की तुम्हें पसंद न आ रही हो, तो दूसरी बात है। फिर अन्य कोई कन्या देखूं। हां, यह मत समझना कि इस कन्या की सिफारिश मैं इसलिए कर रहा हूं कि यह मेरी संबंधी है। मैं इस कन्या को बहुत अच्छी तरह जानता-समझता हूं, इसलिए इससे विवाह करने को कह रहा हूं। देखने-भालने में सुंदर तो है ही इसका स्वभाव-चरित्र भी अच्छा है।"

गजानन राय को कुछ अधिक ही जगह-जमीन की आवश्यकता है। फूलों के प्रति उनमें नए सिरे से विशेष आकर्षण उत्पन्न हुआ है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ जीवन के प्रति वे निरासक्त नहीं हुए। शहर से काफी दूर बाहरी इलाके में नव बरा में तीन बीघे जमीन खरीदकर वहीं अपना घर बनाया। गजानन राय की देखा-देखी दिवाकर दास को भी नया उत्साह हुआ, अतः उन्होंने वहीं थोड़ी सी जमीन खरीदकर घर बनवाना शुरू किया। उन्हें ऐसा करते देख घनश्याम दत्त ने पूछा, "क्यों जी ! इतनी दूरी पर ? यहीं कहीं आसपास में थोड़ी सी जमीन क्या नहीं पा सके ?"

"बाप रे बाप, यहां ? यहां इतना अधिक दाम है। फिर यहां कैसे ले सकता हूं ?"

"अरे वाह ! मैंने तुमसे कहा था न कि तुम्हारी कोई-न-कोई व्यवस्था किए बगैर मै जाऊंगा नहीं।"

"देखिए ! इसे लेकर आप सोच-विचार में न पड़ें। हम दो बूढ़े-बूढ़ियों का किसी-न-किसी तरह गुजारा हो जाएगा।"

घनश्याम दत्त गंभीर हो गए, फिर बोले, "तुम्हें पेंशन देने की बात मन में सोचता रहा हूं। परंतु अब वह नहीं करूंगा। क्योंकि मेरे मर जाने के बाद अगर ये सब न दें, तो तुम फिर कहां-कहां मामला-मुकदमा करते फिरोगे ? अतः तुम्हें जो कुछ देना है मैं अभी इकट्ठे ही दे दूंगा। उसे 'फिक्स्ड डिपाजिट' में जमा कर देना। मेरी उम्र अब बहुत अधिक हो चुकी है। शरीर अब कब तक साथ दे सकेगा ? कुछ कह नहीं सकता।"

सबेरे-सबेरे की बेला में वर्षा हुई थी। भूदेव चौधुरी के घर में प्रवेश करते हुए फाटक के सामने की फिसलन भरी चिकनी माटी में गजानन राय के पैर रपटा खा गए। वह तो किसी-न-किसी तरह से उन्होंने अपने को संभाल लिया, नहीं तो चारों खाने चित्त गिरते। चौधुरी सामने ही अपने बरामदे में बैठे हुए थे। उन्हें गिरते देख वहीं से बोले, "देखिएगा भाई ! जरा संभाल के।"

राय महाशय ने कुछ बनावटी क्रोध दिखाते हुए कहा, "ये सब क्या कर रखा है जी ? फाटक के सामने के इस हिस्से को इतना फिसलन भरा क्यों बना रखा है ? आदमियों को इसमें गिराकर मार डालने का मतलब है क्या ?

"मगर फिर इस बुढ़ौती में तुम्हारे पांव क्यों फिसलने लगे हैं ? अभी भी अपने आपको वश में क्यों नहीं रखते ?"

गजानन राय चौधुरी के घर प्रायः ही आते रहते हैं। अपने जीवन की आरंभिक बेला में जी सकने के लिए उन्होंने विकट संघर्ष किया है। वैसे पढ़ने-लिखने में बड़ी ही तेज-बुद्धि के चोखे विद्यार्थी थे। परंतु भाग्य बहुत ही खराब था। हाई स्कूल की परीक्षा देने का समय आया तो उसके पहले ही कालाजार की भयंकर बीमारी ने ग्रस लिया। उतनी बीमारी की हालत में भी परीक्षा दी, तो भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए, किंतु छात्रवृत्ति पाने में कुछ अंकों की कमी रह गई, सो छात्रवृत्ति नहीं मिली। आगे पढ़ाई जारी रख सकने का कोई सहारा नहीं था। किसी-न-किसी तरह ढाका शहर के असानुल्लाह विद्यालय में ओवरसीयरी की पढ़ाई शुरू की। उसका भी खर्च चला पाना मुश्किल हो गया, अंततः पढ़ाई छोड़ देने को मजबूर होना पड़ा। अपने संबंधी मामा के ठेकेदारी के काम में लगकर उनके ठेके का कामकाज देखने लगे। मामा को भारी फुरसत मिल गई। ठेकेदारी के काम अकसर बीहड़ इलाकों में होते। जंगलों-मैदानों में ठेके की जगह के एक किनारे त्रिपाल के तंबू बनाकर गजानन ही वहां रहते। सारा कामकाज देखते। ठेकेदार चूंकि उनके अपने मामा थे, अतः इस ठेकेदारी के काम को संभालने के बदले उन्हें मासिक वेतन मिलेगा या ठेके में जो लाभ होगा उसमें से हिस्सा मिलेगा ? इस बारे में कुछ भी स्पष्टतः तय नहीं हुआ। ठेकेदारी का काम चलाने के लिए मामा रुपए देते थे। उसी में से गजानन का अपना खर्चा-पानी भी चल रहा था। कुछ समय बाद मामा ने ठेकेदारी के काम में हीलाहवाली करना शुरू कर दिया और धुबरी शहर में जमीन खरीदकर कई मकान बना लिए और उन्हें भाड़े पर उठाने का व्यवसाय करने लगे। अब वे ठेकेदारी को लेकर जगह-जगह भटकने का काम छोड़कर स्थायी संपत्ति बनाने के काम में लग गए। सन् उन्नीस सौ पचास के दशक में ठेकेदारी का काम भी लगभग समाप्त सा ही हो गया। मामा रुपए वगैरह देने में आनाकानी करने लगे। जिस काम में एक सौ रुपए की जरूरत होती वहां बीस रुपए देते, सो भी काफी धक्का-फजीहत के बाद। ठेके में काम करनेवाले मजदूरों की मजदूरी देने के बाद राय के पास अपने लिए कुछ भी नहीं बचता। ऐसी दशा में उनका परिवार चल पाना मुश्किल हो गया। इसके पहले ही वे विवाह करके घर बसा चुके थे। बाल-बच्चे हो जाने से जिम्मेदारियां बढ़ गई थीं। जितने दिनों तक ठेके का काम चल रहा था, उतने समय तक उनके परिवार का गुजारा भी हो रहा था। मगर अब तो उनके लिए भारी मुश्किल आ पड़ी। मामा से आरजू-मिनती की तो मामा ने साफ सुना दिया, "नहीं जी, नहीं।

ठेकेदारी का काम अब और नहीं करूंगा। यह काम निहायत छोटे लोगों का है। अब इस बुढ़ापे की अवस्था में तो इसे कर भी नहीं पाऊंगा। बुढ़ापे की इस बेला में अपना खर्च किसी-न-किसी तरह इन मकानों के भाड़े से मिले रुपयों से ही चल जाएगा। सो मैं तो अब ठेकेदारी करने से रहा। अच्छा तू बता। तूने क्या करने का सोचा है। ?"

"अभी क्या बताऊं ? देखूंगा। अब जरा देखें कि हिसाब-किताब करने पर मेरे हिस्से में क्या कुछ आता है ? उसमें से जो कुछ पाऊंगा उसके आधार पर तो..."

मामा ने उनका वाक्य पूरा होने नहीं दिया। एक झटके में कूदकर खड़े हो गए। "क्या पाओगे, पूछते हो ? अरे अब पाने को बचा क्या है ? पाओगे क्या ? अपने विवाह के समय मुझसे कितना रुपया लिया था, कुछ याद भी है ? तुम्हारे बड़े बेटे को डिप्थीरिया हो गया था, उसे बचाने की कोशिश में कितने रुपए खर्च हो गए थे, कुछ उसका हिसाब ? अब जब तक ठेकेदारी का काम चलता रहा, सारा रुपया-पैसा तो तुम्हारे ही हाथ में रहता था। तूने ही सब खर्च किया, जब-जब जितने-जितने पैसे की तुम्हें इच्छा हुई तुम लेते चले गए। सब कुछ जान-बूझकर भी मैंने कभी कुछ कहा नहीं। अब तू मुझे हिसाब दिखाने आया है ? तो उठा ले आ कागज-पत्र। तू ही हिसाब कर न।"

"देखिए, मेरा यह मतलब नहीं है। मैं तो बस इतना ही कहता हूं कि ठेकेदारी में जो लाभ होता रहा है उसमें से मेरा हिस्सा..."

"हिस्सा ? किस बात का हिस्सा ? अपने काम में मुझे किस बात के लिए किसी हिस्सेदार की जरूरत आन पड़ी जी ? तुम्हें क्या मैंने हिस्सेदार बनाया था ? कहा था कभी कि लाभ में मैं तुम्हें भागीदार बनाऊंगा, उसमें तुम्हारे भाग का बंटवारा कर तुम्हें दे दूंगा ? कहा था कभी ?"

"भाग देने की बात तो नहीं कही थी, किंतु इतना तो कहा था न कि तुम्हारा कुछ होगा उसमें से। कहा था न, जरा याद तो करें।"

"ठीक ही तो कहा था। भूखों तड़पते-तड़पते घर से मरने के लिए निकले थे। दया आ गई सो काम में लगा दिया। उसमें भी तू मालिक बनकर अपनी इच्छानुसार दोनों हाथों से खर्च करता रहा। आंख की लाज रखने के लिए तब कभी कुछ मैंने कहा नहीं। सब सहता रहा। अब आए हो भाग बंटवाने ! किस चीज का भाग लोगे जी तुम ?"

फिर तो कहां कौन सा भाग या हिस्सा मिलता है ? रुपए-पैसे की बात चलाते ही मामा आग-बबूला हो उठता। जोर-शोर से चीखने-चिल्लाने लगता। उछल-कूद मचाने लगता। मुहल्ले के ढेर सारे आदमी तमाशा देखने के लिए इकट्ठे हो जाते। "लूट-लूटकर खा गए। मेरा अच्छा-भला व्यवसाय नष्ट हो गया। अरे मैं ही अंधा

था। गाय का दूध पिला-पिलाकर काले सांप को पालता रहा। अंततः मेरा सर्वनाश करके ही छोड़ा। अब और नहीं। खबरदार जो मेरे घर में पांव भी रखा। चले जाओ यहां से हमेशा-हमेशा के लिए, नहीं तो ठीक नहीं होगा। जा, जाकर मेरे खिलाफ कचहरी में मुकदमा कर। मामला-मुकदमा लड़कर तेरा कुछ होता है तो ले लेना। जा, भाग यहां से।''

इसके बाद तो मामा ने गजानन राय को ऐसी-ऐसी गालियां बकना शुरू किया, ऐसे-ऐसे दोषारोपण करने लगे कि सारे संबंधों को समाप्त कर देने को ही मजबूर कर दिया।

इतना अपमानित होने पर भी कचहरी में मामला-मुकदमा दाखिल करने का तो कोई सवाल ही नहीं था। इतने लंबे समय तक उनके यहां काम करते रहे, परंतु लिखित रूप में तो कहीं कुछ भी दस्तावेज नहीं था। क्रोध के मारे राय ने मामा की हत्या कर देने का विचार किया। कभी सोचा कि धुबरी शहर के उनके उतने बड़े मकान में एक ओर से आग लगा दें। क्रोध से गरमाए मस्तिष्क की विकृत कल्पना उनमें उभरती-गिरती रही। मामा सोचता था कि गजानन राय ने उन्हें ठगा है और गजानन सोचता कि मामा ने उसे ठगा है।

जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, गजानन राय की दशा उतनी ही खराब होती चली गई। ऐसी विपत्तिपूर्ण दशा हो गई कि कुछ करते ही नहीं बनता था। उस समय और कहीं भी ठेके का कोई काम नहीं मिला। छोटे-छोटे ठेके जो मिलते उनके लिए ही ठेकेदारों में मारामारी हो रही थी। सरकारी दफ्तरों में जान-पहचान हो गई थी, छोटा-मोटा कोई काम कोशिश करने पर मिल जाता तो काम चल सकता था, परंतु उसके लिए काफी समय तक प्रतीक्षा करनी होगी और इतनी प्रतीक्षा कर सकने लायक दशा रही नहीं। हाथ में एक पैसा भी बचा नहीं रहा। मामा के साथ काम करते समय वे कोई कम पैसा नहीं पाते थे। परंतु उसे आवश्यकतानुसार खर्च करते रहे। बचाकर रखने की बात तो कभी सोची ही नहीं। हमेशा यही सोचते रहे कि जैसे अब चल रहा है, उसी तरह आगे भी सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहेगा।

सो अब एक नया अध्याय शुरू हुआ। इसके आरंभ में राय ने कभी इससे दो सौ, तो कभी उससे एक सौ रुपया उधार लेकर परिवार का खर्च चलाना शुरू किया। इन सबके चक्कर में साइकिल, घड़ी, रेडियो वगैरह औने-पौने दामों में बिक गए। बाद में तो ऐसी अवस्था आ गई कि दस रुपए, पांच रुपए यहां तक कि दो रुपए तक का उधार मांगने को विवश हो जाना पड़ा।

महेंद्र ठेकेदार गजानन राय का बड़ा ही घनिष्ठ मित्र था। इस बीच गजानन राय ने उससे एक बार सौ रुपए और दूसरी बार पचास रुपए उधार लिए थे। उन्हें चुका न पाने पर भी विवश होकर एक बार फिर वे उसी महेंद्र ठेकेदार के पास हाथ पसारने पहुंचे।

"देखो भाई ! कम-से-कम दस रुपए मुझे दे दो। कल से ही परिवार के सभी बाल-बच्चे भूखे-प्यासे पड़े हैं। अब तुमसे कोई झूठी बात क्यों कहूंगा ?"

महेंद्र ठेकेदार चुप्पी मारे रहा। कुछ भी नहीं बोला। बस एकटक दृष्टि से गजानन राय के फीके पड़े सूखे चेहरे की ओर निहारता रहा। उसके चेहरे और पहनावे से उसकी दरिद्रावस्था अपने आप प्रकट हुई जा रही थी।

गजानन ने फिर कहा, "अच्छा पांच ही दे दो। थोड़ा चावल और दाल खरीदकर अपने नादान बच्चों को कुछ तो खिला सकूं।"

इस पर भी महेंद्र ठेकेदार चुप्पी साधे बैठा रहा। अब तो गजानन अपना सारा संयम गंवा बैठा। उसने आगे बढ़कर महेंद्र का दाहिना हाथ पकड़ लिया, "भाई मेरे, दो रुपया ही दे दो। एक सेर चावल भर ही ले जाऊं।"

महेंद्र ठेकेदार ने अपना हाथ धीरे से छुड़ा लिया और बड़ी विचित्र नजरों से गजानन की ओर देखने लगा।

"कोई काम क्यों नहीं करते ? इस तरह भीख मांग-मांगकर भला कितने दिन चला पाओगे ? आज मुझसे दो रुपए लेकर बेटे-बेटियों को मान लो खिला भी लो, तो कल क्या करोगे ?"

"काम करना ! अरे काम पाऊंगा कहां ? दो न। तुम्हीं कोई काम दो। तुम्हारा तो कई जगहों पर काम चल रहा है।"

"कला केंद्र का एक भवन बनवा रहा हूं। पत्थर की छोटी-छोटी छर्रियों, बालू वगैरह को झारने-बराने, काम लायक सामान को अलग इकट्ठा करने के काम के लिए आज एक आदमी की जरूरत है। करोगे ?"

गजानन राय को तो जैसे काठ मार गया।

"क्या कहा तूने ? एक कुली-मजदूर का काम करने को तुमने मुझसे कहा ? दो रुपए मांग लिए तो मेरा इतना अपमान कर रहे हो ?"

"देखो भाई ! भीख मांगने की अपेक्षा कुली-मजदूर का काम करने में भी बहुत कम अपमान है।"

"यह बात है। तो ठीक है। मैं वहीं करूंगा।"

"तो फिर लो रखो यह दस रुपया। कल सबेरे काम पर चले जाना।"

"नहीं। इसकी अब कोई जरूरत नहीं। मैं आज ही, अभी से काम करूंगा। काम पूरा करके शाम को हाजिरी मजदूर की दैनिक मजदूरी ही लूंगा।"

ठीक वहीं से शुरुआत हुई। वह घटना ही उनके नए जीवन की भूमिका बनी। गजानन राय ने निर्मम सत्य का साक्षात्कार किया। अब तक जो वे कर रहे थे वह भिक्षा नहीं थी, तो फिर क्या था ? अपनी ही दशा पर उन्हें इतना तरस आया कि आंखों से आंसुओं की धार उमड़ पड़ी। बड़ी-बड़ी कोशिशों से किसी-न-किसी तरह उन्होंने आंसुओं की धारा रोकने की चेष्टा की।

उनका मन, उनका शरीर, उनके शरीर की एक-एक मांसपेशी और एक-एक शिरा-अपशिरा ने विरोध करना शुरू कर दिया। सभी जवाब देने लगे, परंतु गजानन राय रुके नहीं, वे लगातार सब्बल मारते रहे। लोहे के उस मोटे सब्बल से पत्थर तोड़ते-खोटते उनके हाथों में छाले उभर आए। फिर तो फफोले भी फूट गए और उनसे खून बहने लगा। इससे असहनीय पीड़ा होने लगी, फिर भी वे रुके नहीं। सब्बल मारते ही रहे। उनकी देह से पसीना ऐसे बहने लगा जैसे पानी से नहाने पर बहता है। थकान के मारे आंखों के सामने अंधेरा छाने लगा। हर एक बार जब सब्बल उठाते तो उनका सारा शरीर असहनीय पीड़ा से कराह उठता। फिर भी उन्होंने काम रोका नहीं, लगातार लगे रहे। महेंद्र ठेकेदार एक आश्चर्यजनक दृष्टि से कुछ देर तक उनकी ओर निहारता रहा, फिर मुंह से बिना कुछ कहे वहां से दूर हट गया। वही शुरुआत थी। वही उनके नए जीवन की भूमिका बनी।

अखिल भारतीय कला केंद्र की सभापति कमला अस्थाना धुबरी का दौरा करने एक दिन पहुंचीं। स्थानीय शाखा केंद्र की सभापति दीप्ति बरुआ को साथ लेकर वे अकस्मात ही शाखा केंद्र निर्माण के काम का निरीक्षण करने आ गईं। उस समय काम की जगह पर महेंद्र ठेकेदार था नहीं। गजानन राय ने विशुद्ध अंग्रेजी भाषा में कला केंद्र के नए भवन के निर्माण कार्य संबंध से सारी उपयोगी बातें उन्हें अच्छी तरह बतला दीं। एक साधारण से मजदूर के मुंह से ऐसी विशुद्ध अंग्रेजी सुनकर और निर्माण कार्य के संबंध में ऐसी सही जानकारी रखने की उसकी क्षमता देखकर वे दंग रह गईं। गजानन राय की बात और व्यवहार का उनके मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा।

उसके दूसरे दिन वे यहां फिर आईं और गजानन राय को पास बुलवाकर उनके संबंध में शुरू से लेकर अब तक की सारी जानकारी हासिल की। उसी समय उन्होंने उनसे एक आवेदन-पत्र देने के लिए कहा। फिर गुवाहाटी केंद्र पर एक काम की व्यवस्था कर उन्हें गुवाहाटी भेज दिया।

वहीं से तो आरंभ हुआ, उनके इस नए जीवन का आरंभ वहीं से हुआ। वहीं पृष्ठभूमि बनी। कला के प्रति उनके मन में जो अनुराग, जो जिज्ञासा सोई पड़ी थी, अनुकूल वातावरण पाकर वह प्रस्फुटित हो पड़ी। अब काम करके उन्हें किसी के घर मजदूरी करने जैसी अनुभूति नहीं होती थी, बल्कि अब काम करके उन्हें सच्चा आनंद प्राप्त होने लगा। उनके सोचने-समझने के ढंग में परिवर्तन आया। नई जीवनदृष्टि विकसित हुई। अब वे अपने आपको एक सुखी मनुष्य मानने लायक हो गए। अपनी क्षमता, कर्तव्यनिष्ठा और अथक प्रयास से धीरे-धीरे उनकी पदोन्नति होती गई।

अभी कुछ समय पहले ही वे अखिल असम कला केंद्र के सचिव के ऊंचे पद से सेवा-निवृत्त हुए हैं। गजानन राय ने शांतिनगर में जो अपना विशाल भवन

बनवाया है, उसे एक कला संग्रहालय ही कह सकते हैं। विशेष रूप से गोवालाड़ा की लोकसंस्कृति का उनका जो संग्रह है, वह अकेला प्रामाणिक और तथ्यपूर्ण सच्चा संग्रह है। उन्होंने अपने घर के चारों ओर कितने ही प्रकार के फूलों-लताओं के पौधे और बल्लरियां लगा रखी हैं ! उनकी तो गणना कर पाना भी मुश्किल है। देश-विदेश के अनगिनत किस्म के फूलों, अनगिनत प्रकार के ऐसे पेड़-पौधों से, जो बड़ी मुश्किल से ही कहीं पाए जा सकते हैं, उनका उद्यान भरा पड़ा है। इधर कुछ वर्षो के भीतर ही उनका घर एक आश्रम की भांति हो गया है।

ग्यारह

तड़के ही स्नानघर की बाल्टी में नल से पानी गिरने का शब्द सुनकर भूदेव चौधुरी का मन प्रफुल्लित हो गया। चलो, फिर भी रक्षा हुई। बच तो गए। कल सारे-के सारे दिन नल में पानी नहीं आया था। इस अंचल की ओर पानी पहुंचाने की व्यवस्था अभी भी गड़बड़ ही है।

जनता स्टोव पर पानी गरमाकर एक कप चाय ढालने के लिए जो चायपत्ती का डिब्बा खोला तो देखा कि उसमें चायपत्ती का एक दाना भी नहीं है। दरअसल वह कल ही खत्म हो गया था। खरीदकर ले आने की बात वे भूल ही गए थे। सबेरे-सबेरे नल में पानी आने से मन में जो खुशी उमड़ी थी, वह रफूचक्कर हो गई। मन फिर झुंझलाहट से भर गया। सबेरे-सबेरे चाय न पीने से उन्हें अच्छा नहीं लगता। अब चायपत्ती या तो तिमुहानी की दुकान से जाकर लानी पड़ेगी, अथवा फिर वहां जाकर शैलेन चायवाले की दुकान पर बैठकर पीनी पड़ेगी। आजकल जलपान गृह में बैठकर एक प्याला चाय पीने में भी उन्हें भारी परेशानी अनुभव होती है। अपने चारों ओर बैठे नौजवान लड़कों के हंसी-ठट्ठों, किलकारियों के बीच बैठना उन्हें बड़ा बेमेल और अटपटा लगता है। उनकी उपस्थिति से नवयुवकों को भी परेशानी होती है। सहज ही उनके मन में प्रश्न उभरता है, 'यह बुड्ढा हमारे बीच यहां क्यों आ धंसा ?'

उन्हें अपने आप पर ही गुस्सा आ जाता है। चाय-जलपान वगैरह की दुकान में बैठकर नहीं खाएं-पिएंगे, नगर बस सेवा की बसों में नहीं चढ़ेंगे, तो फिर करेंगे क्या वे ? वाल्मीकि ऋषि की तरह चींटों द्वारा बनाई गई बांबी में छुपे हुए ध्यानमग्न हो बैठे रहेंगे ?

चौधुरी का मन खिसियाहट से भर उठा। उनके घर में काम करनेवाले लड़के, योगेन को उसके गांव-घर पर शादी-ब्याह संस्कार पड़ने, भजन-कीर्तन का आयोजन होने पर गांव जाने देना होगा। अगर जाने से मना करो तो हांड़ी जैसा मुंह लटकाए

मनहूस पड़ा रहेगा। इसी मनहूसियत से बचने के लिए उसे गांव चले जाने दिया था। उसके कल लौट आने की बात थी। मगर कल लौटा नहीं। अब देर से लौटने पर कोई-न-कोई एक बहाना बनाएगा। जैसे कि मां भयंकर रूप से बीमार पड़ गई थी, या फिर लौटने के लिए कोई बस-मोटर वगैरह मिली नहीं। भला देखो तो उसके मन में इस बात की कोई चिंता नहीं कि एक बूढ़ा आदमी अकेले-अकेले घर में पड़ा है। खैर जाने भी दो। ऐसा ही सुविचार वाला होता, सोचने-समझने की ऐसी ही क्षमता होती तो दूसरे आदमी के घर में घरेलू नौकर बनकर पेट पालने की आवश्यकता ही क्यों होती ?

दोनों हाथों से पैंट पकड़कर एक टांग पैंट के एक पांयचे में डालते समय जितनी देर तक दूसरी एक टांग पर ही खड़े रहना होता है, उतनी देर में ही चौधुरी को ऐसा लगता है जैसे जमीन पर गिर पड़ेंगे। फिर तो पैंट पर से एक हाथ बाहर खींचकर उसी समय दीवार अथवा किसी एक पुख्ता चीज का सहारा लेना पड़ता है। सचमुच ही वे काफी बूढ़े हो गए हैं। बूढ़ा होना आजकल के जमाने में कोई मान-सम्मान की बात नहीं रही। यह अपना देश भी अब अमेरिका हो गया है। जैसे वहां बूढ़ों की कोई इज्जत नहीं रही, बूढ़ों को वाहियात, निकम्मा, बेमतलब का और मूर्ख गिना जाता है, वही दशा यहां भी हो गई है। पहले यहां सभी लोग वृद्ध जनों को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उनके प्रति श्रद्धा का भाव रखते थे। उन्हें जीवन-जगत का अनुभव रखनेवाला और ज्ञानी समझा जाता था। कहावत है कि उम्र का तीसरा पन पारकर चुके हुए लोगों अर्थात काफी वृद्ध जनों से सलाह-परामर्श लेकर काम करना चाहिए।

जब यह पृथ्वी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है तो फिर मनुष्य इतनी जल्दी, अकस्मात नई परिस्थिति के साथ संग-साथ के अनुभव से रहित नहीं हो जाता। अब आज के जमाने की परिस्थिति ही बिलकुल अलग किस्म की हो गई है और उससे भी बढ़कर हादसा यह हुआ कि राजनीति के क्षेत्र में जो बड़े-बड़े बूढ़े-बूढ़े नेता हुए उन्होंने अपनी महाघृणित किस्म की लालच और दुर्दांत लोभ-लालसा का जो नंगा प्रदर्शन किया है उससे वृद्ध जनों के प्रति मनुष्यों में जो थोड़ी सी श्रद्धा-भक्ति बची हुई थी, उसे भी नेस्तनाबूद कर दिया है। 'अंगम् गलितं, पलितं तुंडम्' जैसी स्थिर न रह सकनेवाली, कांपती-कांपती किसी-न-किसी प्रकार चल सकनेवाली अवस्था में भी उनकी आंखों में कैसी लोलुपता झलकती है, कितना क्रोध आक्रोश भरा होता है।

भूदेव चौधुरी को शशी चाचा की याद आ गई। इस धरती पर रहते हुए भी इसके धूल-धक्कड़ से, इसके कीचड़-कांटों से बहुत–बहुत दूर रहनेवाले। निर्लोभी और निरासक्त। एकदम जैसे ऋषि-महर्षि। जैसी धारणा ऋषियों के संबंध में है उसके अनुरूप ऋषि को कम-से-कम वैसा ही होना चाहिए। किसी पर, किसी भी कारण

उन्हें क्रोध नहीं था, किसी से भी घृणा नहीं थी। सभी की कमजोरियों को बड़ी सहानुभूति के साथ देखने-समझने की उनमें ताकत थी। इस तरह के सद्‌गुण भला कहां से आते हैं ? यद्यपि वे एक संस्कृत पाठशाला के अध्यापक थे, फिर भी अपने निजी प्रयत्नों से उन्होंने बहुत अच्छी प्रकार की अंग्रेजी भाषा सीख ली थी। भूदेव चौधुरी यद्यपि उन्हें 'चाचा' कहकर पुकारते थे, किंतु वास्तव में चौधुरी से उनका कोई ऐसा पारिवारिक संबंध नहीं था। शशी चाचा की जातीय उपाधि थी 'गोस्वामी'। उस जमाने में चाहे कोई किसी का सगा संबंधी हो या नहीं; उम्र में बड़े लोगों को कोई न कोई संबंध बनाकर ही पुकारने की प्रथा थी। सो उन्हें 'चाचा' कहकर ही पुकारते थे। शशी चाचा भूदेव चौधुरी को बहुत प्यार करते थे। वैसे केवल भूदेव चौधुरी को ही नहीं, पढ़ने-लिखने में जो भी लड़का तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देता उन सभी को विशेष प्यार करने की उनकी सहज प्रवृत्ति थी। शशी चाचा, अंग्रेजी भाषा में लिखी हुई दर्शन शास्त्र की एक प्रसिद्ध पुस्तक के संबंध में प्रायः ही भूदेव चौधुरी से चर्चा किया करते थे। उनके ज्ञान की अपार सीमा का विस्तार समझकर चौधुरी आश्चर्यचकित रह जाते थे। हां, इतना जरूर था कि चूंकि उन्होंने अंग्रेजी भाषा केवल अपने निजी प्रयन्तों के भरोसे सीखी थी, किसी अग्रेजी भाषा के शिक्षक से उसके आचरण आदि की शिक्षा नहीं ली थी, अतः प्रायः ही अग्रेजी भाषा के शब्दों के उच्चारण में गडबड़ी कर जाते थे। परंतु उसकी वजह से कोई विशेष कठिनाई नहीं होती थी। बस थोड़ी, बहुत हास्यास्पद स्थिति जरूर आ जाती। जैसे कि संस्कृत के भाग्य शब्द के लिए अंग्रेजी के जिस पर्यायवाची शब्द का उच्चारण चौधुरी 'फारचून' करते थे, शशी चाचा के लिए उसका उच्चारण 'फारटून' होता था।

विख्यात विद्वान आचार्य प्रफुल्ल बरा की ख्याति का मूल आधार है 'वेद वाङ्मय की भूमिका' नामक ग्रंथ, जिससे उनका नाम देश-विदेश में प्रशंसित हुआ है। इस ग्रंथ के लेखक के रूप मे उनकी चर्चा महान विद्वानों में की जाने लगी है। परंतु इसकी असलियत के बारे में चौधुरी खूब अच्छी तरह जानते हैं। वास्तविकता तो यह है कि इस महान ग्रंथ के मूल लेखक हैं शशीनाथ गोस्वामी। प्रफुल्ल बरा ने तो बस जहां-तहां कुछ फेर-बदल करके उसको कुछ आज के जमाने के अनुकूल भर कर दिया है और अकेले अपने नाम से छपवा लिया है। यहां तक कि भूमिका में आभार प्रकट करने के लिए भी कहीं रंचमात्र का संकेत शशीनाथ बाबू के लिए नहीं किया है। उनके प्रति कोई कृतज्ञता ज्ञापित नहीं की है, न धन्यवाद दिया है जब कि सभी कुछ शशीनाथ बाबू का ही किया हुआ था। उनकी यह चार सौ बीसी देख चौधुरी के क्रोध का पारा तो सातवें आसमान पर चढ़ गया था, परंतु शशीनाथ वाबू इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे तो एक बढ़े-बूढ़े की अत्यंत निश्चल शांतिपूर्ण, संतोषयुक्त हंसी हंसकर रह गए। उनका ऐसा व्यवहार देख चौधुरी का क्रोध और भड़क उठता है।

"अरे शांत होओ जी। इतना क्रोध क्यों करते हो ? मैं अपने नाम की ख्याति चाहता हूं, यह बात तुमसे किसने कही ? मुझे दुनिया में मशहूर होने की कोई इच्छा नहीं है। मैंने तो यह कोशिश केवल इसलिए की थी कि आजकल के जमाने में बहुत सारे लोग बात-बात में वेदवाक्य की दुहाई देते हैं, परंतु वेदों में सचमुच क्या है, इसे बिलकुल ही नहीं जानते। अतः लोगों की भलाई के लिए वेदों के मर्म को सबकी सुविधा के लिए मैंने सबके सामने पहुंचाने की कोशिश भर की थी। उसे इस रूप में प्रकाशित कर जन-जन तक पहुंचाकर प्रफुल्ल जी ने बड़ा ही अच्छा काम किया है।"

"अच्छा ! यह काम क्या प्रफुल्ल ने खुद किया है ?" दरअसल चौधुरी प्रफुल्ल को बहुत अच्छी तरह से जानते थे। वे जिस महाविद्यालय में पढ़ते थे उसी में उस समय प्रफुल्ल साहब अध्यापक थे। उनके क्रिया-कलापों का अच्छा-खासा परिचय चौधुरी को था। इसी से उनके इस पाखंडी रूप से वे चिड़चिड़ा उठे थे। उनके क्रोध को देख शशी चाचा हंस पड़े, "बैठो भाई, बैठो। क्रोध मत करो। अरे भाई, प्रफुल्ल साहब का अपना योगदान भी काफी है। मैंने तो बस एक कच्चा चिट्ठा भर ही तैयार कर दिया था। उसे सजा-सवारकर उन्होंने पूरी तरह सुंदर रूप-आकार दिया। अतः उन्हें दोष नहीं दे सकते। छोड़ो भी। ये सब तो बहुत मामूली बातें हैं।"

"मामूली बातें हैं ?"

प्रफुल्ल बरुआ आज अखिल भारतीय ख्याति-प्राप्त सम्मानित विद्वान माने जाते हैं। जाने कितने राष्ट्रीय महत्व के संस्थानों के सदस्य बना दिए गए हैं, कितनी मशहूर संस्थाओं के अध्यक्ष हैं।

एक बार जब शशीनाथ चाचा के दूसरे बेटे की मृत्यु एक स्कूटर दुर्घटना में हो गई, तब उनके शोक का अनुमान कर चौधुरी साहस ही नहीं कर पा रहे थे कि कैसे वे शशीनाथ चाचा के सामने खड़े होंगे, उन्हें सांत्वना बंधाने के लिए। परंतु शोक की इस घड़ी में जाना तो पड़ेगा ही, यह विचार कर वे उनके घर गए। देख कर आश्चर्यचकित रह गए कि शशी चाचा उस समय भी अपने स्वभाव के अनुरूप पूर्णतः अविचलित, शांतचित्त बने हुए थे। इस दारुण घटना से आघात उन्हें भी जरूर लगा है लेकिन इसकी वजह से चीख-चिल्लाहट नहीं है। भगवत् गीता में दुख और सुख को समान रूप में ग्रहण करनेवाले जिस स्थित-प्रज्ञ पुरुष की चर्चा की गई है, शशी चाचा ठीक वैसे ही लगे। चौधुरी उन्हें क्या सांत्वना देते ! उलटे वे ही चौधुरी को साहस बंधाने लगे। "अरे भाई, इतना विचलित क्यों होते हो ? दैव द्वारा दी गई इस विपत्ति पर बिलखकर क्या कर पाओगे ? जिसने भी जन्म लिया है, उसे मरना तो पड़ेगा ही। मृत्यु से तो किसी को छुटकारा नहीं।"

वैसे ये कुछ उपदेश-वाक्य तो ऐसे हैं जिन्हें प्रायः सभी लोग सभी समय दुहराते ही रहते हैं, परंतु इनके अर्थ की गंभीरता को न कोई गंभीरता से लेता है और न

लेना चाहता है, बस कहने भर के लिए, वस्तुतः पूरी तरह निरर्थक रूप में इन वाक्यों का उल्लेख कर देता है। परंतु शशी चाचा तो इन्हें पूरे अंतःकरण से विश्वास करते हैं, और उसी सहजता से इन्हें मानकर चलते हैं।

शशी चाचा स्वर्गवासी हो चुके हैं। आजकल के लोग उनकी याद भी भूल चुके हैं। अपने जीवन की किसी कीर्ति का कोई भी प्रत्यक्ष स्मारक वे छोड़ नहीं गए हैं। फिर भी उनके कुछ प्रिय छात्रों, जो उन्हें श्रद्धा भाव से देखते थे, के मन में अभी भी उनकी स्मृति जगी हुई है। इन कुछ लोगों की भी जब मृत्यु हो जाएगी तो फिर स्मृति रूप में कुछ नहीं बचा रह पाएगा। परंतु इस सहज साधारण बात पर चौधुरी विश्वास करना चाहते ही नहीं। उनका मन करता है कि नहीं, सभी कुछ समाप्त नहीं हो जाता। कुछ ऐसा जरूर है जो शेष रह जाता है, निश्चय ही बचा रह जाता है।

बारह

अनंत काल से चले आ रहे असीम ब्रह्मांड के इस विस्तार में मनुष्य के द्वारा किया जानेवाला सारा-का-सारा प्रयत्न उसके द्वारा स्थापित की जानेवाली सारी उत्कृष्ट संरचनाएं क्या नगण्य हैं ? पानी के बुलबुलों की तरह थोड़ी देर मे ही फूटकर बिखर जानेवाली चीज हैं ? अपनी नौकरी से सेवानिवृत्त हो जाने के बाद से इस प्रकार की चिंताएं उन्हें प्रायः ही आ दबोचती हैं। जब नौकरी में व्यस्त थे, तब तो इस तरह की चिंता उनके पास फटकती भी नहीं थी। ये चिंताएं ऐसे प्रश्नों की तरह हैं जिनके कोई उत्तर होते ही नहीं, पर मन में बार-बार इनके उठते रहने के कारण इन पर सोचने को मजबूर होना पड़ता था और उस मजबूरी से जान बचाने के लिए वे अकसर बाहर निकल जाते थे।

पहले भूदेव चौधुरी के पास सचमुच ही समय नहीं था। परंतु अवकाश ग्रहण करने के बाद तो इतना अधिक समय है कि काटे न कटे। घर पर बैठे रहते हैं तो लगता है कि बैठे-बैठे यूं ही समय गंवा रहे हैं। अब तो अभ्यास हो गया है। चलते-फिरते रहते हैं तो समय नष्ट होने का भाव नहीं होता। जब स्वयं जवान थे, और अपनी नौकरी के काम में व्यस्त रहा करते थे तब बूढ़े आदमियों को घूमते-फिरते देखते थे उन पर हंसी आती थी। प्रायः उन पर टिप्पणी कसते थे, "अब देखो न, इस बूढ़े के पास कोई काम तो है नहीं, सो घर पर बैठकर करे भी क्या ?" उन्होंने लक्ष्य किया था कि अगर किसी के घर विवाह का आयोजन होता तो मंडप में या तंबू में बैठे-बैठे अनेक बूढ़े आदमी आपस में घंटे-दर-घंटे बातें ही करते रहते थे। तब तो इस गप्पबाजी का वे कोई कारण नहीं समझ पाते थे, परंतु अब इसका कारण

उनकी समझ में आ गया है। वे लोग नाना प्रकार की समस्याओं को उठा-उठाकर उनके समाधान के संबंध में तर्क-वितर्क प्रस्तुत कर-करके यह अनुभव करने की चेष्टा करते हैं कि अभी भी वे बेकार नहीं हो गए हैं, अभी भी वे जिंदा हैं, जीवन की ताजगी अभी भी उनमें विद्यमान है। जिंदगी की रंगीनी और प्रकाश की चमक के इस समारोह से अलग होकर सीमातीत सूनेपन के अपने खो जाने के डर का ही परिणाम है कि वे अपने आपको जीवन के समारोहों से संयुक्त किए रखना चाहते हैं। चौधुरी भी अब इधर-उधर घूमने-फिरने लगे हैं। पहले जिनके घर कभी भी नहीं गए, अब अचानक ही उनके घर भी जा पहुंचते हैं। जरा सी भी आत्मीयता की कोई बात हो तो उसी का सहारा ले पहुंच जाते हैं। परिचय की अत्यंत क्षीण, बिलकुल धूमिल रेखा दिखाई पड़ी नहीं कि उसी के सहारे जा पहुंचे किसी के घर। प्रातः सबेरे-सबेरे उठने के साथ ही तो सोचने-विचारने लग जाते हैं कि 'आज किसके घर जाया जा सकता है ?'

उनके एक बहुत पुराने शिक्षक श्री प्रफुल्ल दत्त अभी भी जीवित हैं। वैसे उनकी अवस्था अस्सी वर्ष से ऊपर ही हो चुकी होगी। बहुत पहले उन्होंने भूदेव चौधुरी को पढ़ाया था। आज से कुछ समय पहले तक उनसे भूदेव चौधुरी की मुलाकात रास्ता-घाट-बाजार वगैरह में हो जाया करती थी। पर इधर काफी दिनों से वे दिखाई नहीं पड़े। सचमुच ही वे एक श्रेष्ठ अध्यापक थे। अपने विषय को बड़ी ही स्पष्टता से समझाया करते थे। वे जिस विषय को पढ़ाते थे उस विषय में कई-कई छात्र विशेष योग्यता (डिस्टिंक्शन) प्राप्त कर उत्तीर्ण होते थे। जिस वर्ष चौधुरी की परीक्षा हुई थी, उस वर्ष वे ही बस अकेले परीक्षार्थी थे जिन्हें विशेष योग्यता प्राप्त हुई थी। तब दत्त महाशय ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा था, "बेटे ! तुमने मेरे सम्मान की रक्षा कर ली।"

पिछले कुछ ही वर्षों में शहर में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि किसी विशेष स्थान को ढूंढ पाना कठिन हो गया है। तीन-तीन, चार-चार मंजिल ऊंची अट्टालिकाओं से शहर भर गया है। नई-नई इतनी अनगिनत गलियां बन गई हैं कि कहना क्या ? चौधुरी दत्त महाशय के घर पहुंचने के लिए परिचित रास्तों से गुजरे तो फिर कई आशंकाओं में फंस गए। कहां आ निकले वे ? पान की दुकान के सामने कुछ नौजवान लड़के खड़े होकर आपस में बातें कर रहे थे। चौधुरी ने उन्हें ही संबोधित कर पूछा, "क्यों बच्चो ! तुम लोग इसी मुहल्ले के रहनेवाले हो ?"

"हां। क्या बात है ? बतलाइए न !"

"प्रोफेसर प्रफुल्ल दत्त का मकान कौन सा है, क्या बतला सकते हो ?"

"प्रोफेसर ? यहां तो किसी प्रोफेसर का कोई मकान नहीं है। यहां कोई प्रोफेसर नहीं रहता।"

"मेरा मतलब है कि वे काफी पहले प्रोफेसर थे। सेवानिवृत्त हो चुके हैं।"

पान की दुकानवाले ने तब उन्हें अपने पास बुलाया।

"काफी बूढ़े-बुजुर्ग आदमी हैं न ?"

"हां, हां।"

"तब ठीक है। मैं समझ गया। शंभू दत्त के बाबा, यानी उसके पितामह के बारे में पूछ रहे हैं। उनका मकान तो बस यही सामनेवाला है।"

चौधुरी ने गौर से निहारा। एक जमाने में यह मकान बड़ा ही खूबसूरत था। अब तो इसकी दशा बहुत जर्जर हो गई है। इसकी अगल-बगल में दोनों ओर बहुमंजिली अट्टालिकाएं खड़ी हो गई हैं जिन्होंने इसे बीच में ही चांप रखा है।

दत्त साहब के मकान के सामने का बरामदा बांस की खपच्चियों से बनी जालीदार दीवार से घिरा है। उन्होंने देखा कि प्रोफेसर दत्त उसी बरामदे में एक आरामकुर्सी पर बैठे हुए हैं।

"प्रणाम गुरु जी !"

प्रोफेसर दत्त ने कोशिश की, मगर पहचान नहीं पाए। दरवाजा खोलकर वे काफी देर तक चौधुरी के चेहरे को देखते रहे, किंतु कुछ भी निश्चित नहीं कर पाए। तब चौधुरी ने याद दिलाया, "मैं भूदेव हूं, गुरुजी !"

"अरे ! आओ, आओ, अंदर आओ।"

भूदेव चौधुरी को अपने घर पाकर वे बहुत प्रफुल्लित हो गए। "अच्छा बताओ यहीं बैठोगे या भीतर कमरे में चलकर बैठना पसंद करोगे ?"

"यहीं ठीक है, गुरुजी !"

"अच्छा, अब बतलाओ, क्या हाल-चाल हैं तुम्हारे ? तुम तो विश्वविद्यालय के परिसर के क्वार्टर में ही रहते हो न ?"

"नहीं गुरु जी ! वहां से तो सेवानिवृत्त हो गया हूं।"

"सेवानिवृत्त हो गए ! कब हो गए जी ?"

"तीन-चार वर्ष पहले ही।"

"वाह ! देखो न। समय कैसे इतनी जल्दी गुजर जाता है, कुछ कह ही नहीं सकते। खैर कोई बात नहीं। बाकी और सब तो ठीक है न ?"

"सब आप की दया है। पहले 'बुक्स लिमिटेड' की दुकान पर प्रायः ही आप के दर्शन पा जाता था। परंतु इधर काफी दिनों से आप वहां नहीं दिखे। इसी से मन में आया कि क्यों न आपके घर चल कर ही आपका कुशल-क्षेम जानूं। इसी से इधर चला आया। आपका स्वास्थ तो ठीक है न, गुरुजी ?"

"नहीं जी, नहीं। और ऊपर से..." प्रफुल्ल दत्त ने अस्वीकारसूचक भाव-भंगिमा बनाई।

"तो फिर कौन सी बीमारी है ?"

"वैसे तो कोई बीमारी नहीं है, परंतु कमजोरी इतनी आ गई है कि क्या कहूं। आज छह महीने होने को आए, अपने घर की चहारदीवारी के मुख्य द्वार के बाहर कदम नहीं निकाल पाया। जरा सी देर के लिए भी एक जगह खड़ा रह जाऊं तो सर में भयानक चक्कर आने लगता है।"

"रक्तचाप की परीक्षा करवाई है ?"

"हां, करवाई थी। चिकित्सक का कहना है कि वह तो वहुत ही अधिक ऊंचा चढ़ गया है।"

"तो फिर कौन सी दवा ले रहे हैं ? एडिलफिन खा रहे हैं क्या ?"

"नहीं जी। अब तो हालत ऐसी हो गई है कि एडिलफिन का कुछ असर ही नहीं होता। चिकित्सक कोई और ही औषधि दे रहे हैं। अच्छा, यह सब छोड़ो भी। बोलो, चाय मंगवाऊं, पिओगे ?"

"नहीं गुरुजी ! उसकी कोई जरूरत नहीं।"

"क्यों भाई ? जरूरत क्यों नहीं। चाय भी नहीं पिओगे ? ऐसे ही चले जाओगे ?"

उनका रक्तचाप और भी अधिक ऊंचा चढ जाएगा, इस आशंका से चौधुरी कुछ बोले नहीं, मौन साधे बैठे रहे। प्रफुल्ल साहब घर के अंदर चलते चले गए। उनका अत्यंत जर्जर बुढापा आ गया है। उनकी दशा देखकर एकाएक चौधुरी के मन में उससे मिलती-जुलती एक उपमा जग पड़ी और उस उपमा के औचित्य पर सोचते ही चौधुरी घबरा उठे। प्रफुल्ल दत्त जब जा रहे थे तो उनकी गर्दन चिड़िया के बच्चे जैसी लग रही थी, जब वे छोटे होते हैं, उनके पंख नहीं जमे होते हैं, उस समय उनकी गर्दन जैसी होती है।

प्रोफेसर दत्त जब लौटे तो फिर अपना दुखड़ा रोने लगे, "पहले तो पुस्तकों के सहारे दिन काट लेता था। मगर अब तो वह भी नहीं कर सकता। कभी पढ़ने की कोशिश करता हूं, तो दो पंक्तियां पढ़ते-पढ़ते ही आंखों से पानी बहने लगता है। रात की बेला में तो एकदम ही कुछ नहीं कर सकता। मेरे लिए तो यही सबसे बड़ी सजा हो गई है।"

चौधुरी अब प्रोफेसर दत्त की मानसिक अवस्था को भली भांति समझ सकते हैं। अब तो वे बेचारे पूरी तरह से संग-साथविहीन, एकदम अकेले पड़ गए हैं। केवल मनुष्यों के संग-साथ से ही नहीं, घटनाओं के प्रवाह से भी पूरी तरह अलग-थलग।

प्रोफेसर दत्त कहते जा रहे थे, "मेरे अपने बेटे तो विदेशों में ऊंचे पदों पर काम करते हैं। मैंने तो अध्यापक की नौकरी से जब अवकाश ग्रहण के बाद कलकत्ता में ही जमीन खरीदकर एक मकान बनवा लिया। परंतु वहां रहते हुए महसूस किया कि नहीं, मैं वहां नहीं रह सकता हूं। थोड़े दिन रहकर ही मैं वहां के परिवेश से ऊब गया। एक छटपटाहट सी होने लगी। जगह-जमीन-मकान सब कुछ बेचकर वहां

से भाग आया। वस्तुतः अपने इस शरीर की नस-नस तो अपनी इस माटी से जुड़ी हुई है। इस स्थान को छोड़कर कहीं और जाना मेरे लिए बिलकुल ही असंभव है। यह बात और कोई समझ ही नहीं पाता। अपने निकट संबंधी मेरे यहां इस तरह रहने पर बहुत झुंझलाते हैं, मुझसे बुरा मानते हैं। परंतु मैं करूं क्या ? मैं तो लाचार हूं। यह स्थान छोड़कर और कहीं जा ही नहीं सकता।''

यही तो है एक जीवन की अत्यंत कारुणिक परिणति। एक आदर्शवादी अध्यापक द्वारा अपने मन से गढ़ी हुई पृथ्वी पर बने रहने की हर संभव चेष्टा। मन से जिन्हें अपने से जोड़ा उन्हीं के साथ जिंदगी गुजारने की तमन्ना। नौकरी के समय में जिस महाविद्यालय में काम करते थे, अभी तक अपने आप को उस महाविद्यालय का अभिन्न अंग समझते हैं। उस महाविद्यालय के विद्यार्थी हों, चाहे शिक्षक हों, उससे जुड़ा हुआ जो कोई भी हो, हर एक ऐसे व्यक्ति के साथ अपना अत्यंत नजदीकी संबंध मानते हैं। यद्यपि उस महाविद्यालय से तो जाने कब से सेवानिवृत्त हो चले आए हैं। वह महाविद्यालय तो उन्हें पूरी तरह भुला चुका है, किंतु वे हैं कि अभी तक महाविद्यालय को भुला नहीं सके। यही तो जीवन की बेबसी है।

उस महाविद्यालय से जब सेवानिवृत्त हो गए थे, तो उसके बाद भी अपने उस विभाग में बराबर आते रहे थे। इतने वर्षों पुराने अभ्यास को छोड़ा नहीं था। जो नवयुवक अध्यापक थे, प्रायः सभी-के-सभी उनके पुराने छात्र ही तो थे; सो उन्हें आवश्यकतानुसार सलाह-परामर्श बिना पूछे ही देते रहते थे। परंतु धीरे-धीरे वे समझ गए कि शिक्षकों को यह बात पसंद नहीं आ रही। वे तो इसे इस रूप में लेते थे कि इस आदमी के पास अब कोई अधिकार नहीं है, जो उनका कुछ बिगाड़ सकने की ताकत नहीं रखता वह भला क्यों बेमतलब उनके कामों में हस्तक्षेप कर रहा है ? प्रोफेसर दत्त को बड़ा पछतावा हुआ, उन्हें तो यह समझ काफी पहले आ जानी चाहिए थी। परंतु नहीं, उन्हें तो यह बात उस दिन जाकर समझ में आई जब नए प्रधानाध्यापक ने उनके इस तरह के सुझावों पर अपनी खीझ खुले आम जाहिर की। वस्तुतः उसी दिन वे पूरी तरह से अकेले हो गए। सारे संगी-साथी छूट गए। अब तक जो नासमझी करते आ रहे थे, उससे इतने हताश हुए कि लाज ढंकने के लिए अपने को एक ढक्कन में बंद कर लिया। अपने चारों ओर जो उन्होंने एक आवरण बना लिया था, समय बीतते-बीतते वह और भी मोटा, और भी मजबूत होता चला गया। लोक जीवन से वे अलग-थलग पड़ गए।

वैसे, इतना जरूर था कि वे अपने आप को चाहे जितना भी आसपास के परिवेश से दूर रख रहे हों, फिर भी जब उनके अपने महाविद्यालय का नाम आता तो उसका नाम सुनते ही उनके मन का इकतारा बजना शुरू हो जाता। जब कभी बी.एस-सी. की परीक्षा का परिणाम निकलता तो उसे जानने के लिए वे व्याकुल हो उठते। उनका उत्साह इतना बढ़ जाता कि जिस आदमी का उस परीक्षा परिणाम

से कुछ लेना-देना नहीं, कोई मतलब ही नहीं, उससे भी बड़े उत्साह से बताने लगते, "जानते हो, इस बार भी मेरे ही महाविद्यालय का छात्र प्रथम श्रेणी में प्रथम आया है। इतना ही नहीं, पूरी कक्षा में जो मात्र चार परीक्षार्थी प्रथम श्रेणी पा सके हैं; उनमें से तीन तो मेरे ही महाविद्यालय के हैं।"

जब कि हालत यह है कि उस महाविद्यालय के छात्र तो उन्हें पहचानते भी नहीं। और छात्र ही क्या, अधिकांश शिक्षक भी उन्हें नहीं पहचानते, जानते भी नहीं। सही हालत तो ठीक वैसी ही है जैसे किसी विशाल उद्यान के कोने में पड़ी एक पुरानी-धुरानी टूटी मूर्ति की हो। घूमते-फिरते कोई कभी उधर आ पहुंचा तो एक अलसाए कुतूहल से इतना पूछ बैठता, "क्यों भाई ! यह किसकी मूर्ति है ?"

महाविद्यालय के शिक्षकों के सभागार में जब कभी प्रोफेसर प्रफुल दत्त की चर्चा चल पड़ती है तो नए शिक्षकों में से कोई एक पूछने लगता है, "प्रफुल दत्त ? वह कौन आदमी है, भाई ? आखिर कौन है यह प्रफुल दत्त ?"

तेरह

भूदेव चौधुरी की कुल दो बेटियां है। उनमें से बड़ी वाली रानू बहुत गंभीर स्वभाव की है। उसका पति यानी कि चौधुरी साहब का बड़ा दामाद रमेश बरुआ इस अंचल का बड़ा ही नामी-गरामी चिकित्सक है। चौबीसों घंटे व्यस्त ही रहता है। यहां तक कि समाज में रहते हुए जिन संपर्कों को बनाए रखना अति आवश्यक होता है, उन संपर्कों की भी रक्षा नहीं कर पाता है। चौधुरी का छोटा जमाई रमेश इंजीनियर है। वह बड़ा ही मुंहफट है। अकसर अपने श्वसुर के सामने ऐसी बातें कह बैठता है जो बड़े-बूढ़े लोगों, विशेषतः श्वसुर के सामने तो कहनी ही नहीं चाहिए किंतु आदत से लाचार वह कह ही बैठता है। परिणामस्वरूप उसे अपनी पत्नी अनीता की डांट-फटकार खानी पड़ती है।

"आप एक लड़के को रखने की बात करते हैं। परंतु आपको एक लड़का देने से आपका काम तो चलेगा ही नहीं। दिन भर इधर-उधर घूमता-फिरता जाने कहां रहेगा। काम की बेला में घर पर मिलेगा ही नहीं। सो आप एक लड़की ही क्यों नहीं रख लेते ?"

इतना सुनते ही अनीता ने रमेश की बकवास बंद कर देने की कोशिश की। परंतु रमेश कहां माननेवाला ? उसने अपने प्रस्ताव के पक्ष में तर्क देना शुरू किया—

"अब इस उम्र में डरने की तो कोई बात नहीं, कोई खतरा हो ही नहीं सकता। फिर कोई बदनाम क्या करेगा ?"

अनीता से सहा नहीं गया, डपट पड़ी, "चुपचाप बैठो। दुनिया भर की असंभव बकवास बंद करो।"

"ठीक है, ठीक है। तुम कहती हो तो कुछ भी नहीं बोलूंगा।"

अनीता ने तब अपने पिता (चौधुरी) से कहा, "कुछ दिनों के लिए आप हमारे यहां आकर रह सकते हैं। यहां की कोई चिंता न करें। ये (उसके पति) किसी एक चौकीदार को यहां रखवाली के लिए तैनात करवा देंगे।"

रमेश तुरंत बोल पड़ा, "क्यों नहीं ? क्यों नहीं रखवा दूंगा ? ठीक ही तो है। आप हमारे यहां चलिए।"

"अरे ठहरो भी। इतना परेशान होने की जरूरत नहीं है। अरे थोड़ी सी सर्दी लग गई थी। अब आज तो पूरी तरह स्वस्थ हो गया हूं। अगर जरूरत समझूंगा तो मैं स्वयं ही तुम्हारे यहां पहुंच जाऊंगा।"

रमेश ने फिर कहा, "इसमें फिर संकोच किस बात का है ? कन्या के घर पर रहने पर लोग कुछ व्यंग्य करेंगे, यही सोचकर डर रहे हैं क्या ?"

अनीता ने फिर डांटा, "अब तुम चुप भी रहोगे कि नहीं ?"

"ठीक है, ठीक है। अच्छी बात है।"

चौधुरी रमेश की बातों पर कोई विशेष ध्यान नहीं देते। वे रमेश को दिल से खूब प्यार करते हैं। विशेषकर जब कौतूहलवश रमेश की दोनों आंखें बड़ी चंचलता से नाचने लगती हैं, तो उन्हें देख चौधुरी का मन खिल उठता है।

मृणाल ने जब चौधुरी की अस्वस्थता के संबंध में सूचना दी तो उसे सुनते ही पिताजी का कुशल-क्षेम जांचने अनीता यहां आ पहुंची। मृणाल ने बतलाया था कि चौधुरी बाबा बहुत भयंकर रूप से बीमार हैं। घर पर कामकाज करनेवाला लड़का भी आजकल नहीं है। अपने घर चला गया था, अभी लौटा नहीं है। इससे चौधुरी जी को भारी परेशानी हो रही है। वह तो भाग्य की ही बात थी कि इस बीच वह अचानक वहां पहुंच गया। सो इन दो-चार दिनों तक रसोई-पानी, घर-बाजार का सारा काम-धाम वही संभालता रहा है।

अनीता ने रोष प्रकट किया, "तुमने तुरंत ही हम लोगों को सूचित क्यों नहीं किया ?"

"सूचना दूं भी तो कैसे ? जब वहां पहुंचा और घर में प्रवेश किया, तो उनकी जैसी दशा थी, उसकी वजह से तो फिर घर के बाहर कदम ही नहीं रख पाया। अब आज चौधुरी बाबा की तबीयत कुछ संभली है, तो फुरसत मिलते ही सूचना देने आ पहुंचा हूं।" वैसे अभी भी सूचना देने की वह नहीं सोचता। दो-चार दिन और वहीं रहकर उनकी सेवा-सुश्रूषा कर जाता जो ज्यादा अच्छा था। पर करे क्या ? अब कोई और उपाय भी तो नहीं है। उधर अपने इलाके में उसका कुछ ऐसा जरूरी काम अटका पड़ा है कि उसे वह किसी भी तरह छोड़ ही नहीं सकता। उसके वहां

न पहुंचने पर तो सर्वनाश ही हुआ समझिए। सो वहां से चले जाने को मजबूर हो गया है।

अनीता ने चिंतित होते हुए पूछा, "पिताजी को आखिर कौन सी बीमारी लग गई है ? अब जब तुम वहां से चले आए हो तो उनकी सेवा-सुश्रूषा कौन कर रहा है ? मेरे जीजा जी को सूचना भिजवाई है या नहीं ?"

मृणाल ने अनीता के इन हड़बड़ाहट भरे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं दिया। वह वहां से जाने लगा।

"अब मुझे जाने की इजाजत दीजिए। मेरी बस छूटने का समय हो गया है। अच्छा जरा एक काम तो कीजिए। मुझे दस रुपया दे दीजिए। दरअसल मेरे पास खुले पैसे हैं नहीं। और बस का कंडक्टर भला सौ रुपए का नोट कैसे तुड़वाएगा ? देरी न करें। जरा जल्दी दे दें, नहीं तो बस..."

बेमतलब झूठ बोलने की आदत मृणाल को बचपन से ही है। झूठ बोले बिना वह रह ही नहीं सकता। जहां झूठ बोलने की कोई आवश्यकता नहीं, कोई स्वार्थ सिद्ध होनेवाला नहीं, लाभ-हानि होने की कोई संभावना नहीं, वहां भी वह झूठ बोलता रहता है। हालत यह है कि बात करने के लिए मुंह खोलते ही झूठ की धारा उसके मुंह से फूट पड़ती है।

भूदेव चौधुरी ने अनीता वगैरह से कुछ भी नहीं कहा। मृणाल द्वारा कही गई बातें कितनी विश्वसनीय होती है, यह वे सब भी अच्छी तरह जानते ही हैं। उस संबंध में कुछ भी कहना अनावश्यक है।

दो दिन पहले अचानक ही मृणाल आ धमका था। जब उसने जाना कि घर का कामकाज करनेवाला लड़का यहां नहीं है तो असाधारण रूप से व्यस्त हो गया।

"ऐसी हालत में रसोई-पानी कौन कर रहा है ? आपको तो लगता है कि सर्दी-जुकाम हो गया है। ज्वर भी है क्या ? फिर खा-पी कैसे रहे हैं ? अब इस उम्र में ! हाय-हाय, यह सब क्या कांड हो रहा है ? आप अपने आप पर यह सब कैसा-कैसा अत्याचार किए जा रहे हैं ? कहिए तो रानू बहन को बुला लाऊं ? या फिर अनीता बहन को सूचित करूं ? ठीक है, ठीक है। आप कोई चिंता न करें। घर में काम करनेवाला छोकरा योगेन जब तक नहीं लौट आता, तब तक मैं स्वयं ही यहां रह जाता हूं। आपने दोपहर का भोजन किया कि नहीं ? छिः छिः ! अब यह सब काम काज करने की आप की अवस्था है क्या ? उधर बड़ी बहन रानू भी तो अपने बेटे-बेटी को लेकर व्यस्त हैं। मगर यह छोटी बहन अनीता आखिर क्या कर रही है ? क्या वह यहां आकर कुछ दिन रह नहीं सकती ? ठीक है, मैं उसके यहां जाकर खूब खरी-खोटी सुना आऊंगा। बुरा माने तो माने। मुझे इसकी कोई परवाह नहीं।"

मृणाल ने ऐसा भाषण झाड़ना शुरू किया जैसे उसकी तेज धारा में चौधुरी बह जाएंगे। बड़ी मुश्किल से थोड़ा सा अवसर पाकर चौधुरी बोल पड़े, "थोड़ा रुको न भाई ! इतना हैरान-परेशान क्यों हो रहे हो ? मुझे कुछ भी नहीं हुआ है। बस जरा सी सर्दी लग गई है।"

"ठीक है, ठीक है। चिंता करने की कोई बात नहीं। दो दिन ठहरकर मैं ही सब कुछ संभाल जाऊंगा। अब इस समय यहां घर में चाय पीने की मुझे कोई तलब नहीं है। मैं चाय की दुकान पर जाकर ही पी लूंगा। हां, जरा इतना करें कि थोड़ा रुपए दे दें। अब बाजार जा ही रहा हूं, तो मछली भी लेता आऊं। रात की बेला में आज और कुछ नहीं पकाऊंगा। रसदार मछली और भात। बस इतने से ही हो जाएगा या रोटी पका दूं ? आप जैसा कहें ! अगर मन कर रहा हो तो कहें, परांठा भी बना दे सकता हूं।"

रात नौ बजे तक तो चौधुरी उसकी बाट जोहते रहे, फिर स्वयं ही भोजन पकाने के लिए रसोईघर में चले गए। मृणाल अगर अतिथि रूप में न आया रहा होता तो वे पावरोटी और दूध लेकर ही सो रहे होते। परंतु अब चूंकि मृणाल भी आया हुआ है तो उसकी वजह से कुछ अन्य चीजें भी तो पकानी ही होंगी।

रात के ग्यारह बजे मृणाल बड़ी हड़बड़ाहट मे लौटा, "अरे चौधुरी साहब ! कुछ न पूछिए। रबीन दास का बड़ा ही खतरनाक ऐक्सिडेंट हो गया है। उसी वजह से तो वहां रुक जाना पड़ा, सो इतनी रात हो गई आने में। अब इतनी रात गए नगर बस सेवा की कोई बस मिली ही नहीं। किसी-न-किसी तरह ट्रक-फ्रक से तिमुहानी तक आ सका। वहां से तो फिर पैदल-पैदल ही आ रहा हूं।"

मृणाल की बातों को कोई महत्व न देने पर भी चौधुरी ने जब एक्सिडेंट वाली बात पर ध्यान दिया तो आशंकित हो उठे।

"कैसा एक्सिडेंट हुआ जी ?"

"मोटर से एक्सिडेंट। और क्या ?"

"कहां हुआ जी ? कैसे हो गया ?"

"घर पर ही।"

"घर पर ! घर पर एक्सिडेंट कैसे ?"

"अपनी मोटरकार में एक पहिया लगा रहे थे। जिस जैक पर मोटरगाड़ी खड़ी की थी वह जैक ही फिसल गया। सो उनका दाहिना हाथ ऐसा दब गया कि चिपटकर एकदम बजबज हो गया।"

"किसी चिकित्सक को दिखाया ?"

"नहीं। डेटॉल लगाकर अपने से ही पट्टी बांध ली है।"

अब चौधुरी समझ गए कि कोई विशेष दुर्घटना नहीं हुई है। चिंता की कोई

बात नहीं। सो सहज भाव से बोले, "अब जाने भी दे। जो होगा सो होगा। आओ चलो, भोजन कर लें। काफी रात हो चुकी है।"

"भोजन ? भोजन किसने पका दिया ?"

"और कौन है यहां जो पकाएगा ? जा, हाथ-मुंह धोकर आ जा।"

"यह तो अच्छी बात नहीं हुई। दरअसल बात यह है कि मैं रबीन के घर भोजन करके आया हूं। काफी रात हो गई थी न; अतः किसी तरह छोड़ता ही नहीं था, खाकर जाओ, खाकर जाओ करते-करते परेशान कर दिया था। सो अब मैं तो खा नही सकूंगा यहा।...अच्छा नहीं हुआ। खैर कोई बात नहीं।...हां, चाचा जी ! सबेरे की क्या व्यवस्था है ?"

"सबेरे की व्यवस्था भी हो जाएगी। पावरोटी रखी हुई है।"

"अच्छा मैदा है कि नहीं ?"

"है।"

"और घी ?"

"घी कहां मिलेगा भला ? हां, डालडा है शायद।"

"ठीक है। तो उसी से काम चलेगा। सबेरे लूची (महीन पूड़ी) ही बनाऊंगा। गरमागरम लूची और आलू-प्याज की भाजी। अव्वल दर्जे की होगी। अब आप देर क्यों कर रहे हैं ? रात बहुत अधिक हो गई है। उधर आपका बीमारी का शरीर ठहरा। जल्दी से भोजन करके सो जाएं।"

दूसरे दिन सबेरा होने के बहुत बाद नौ बजे तक तो वह सोया ही रह गया। जब जगा तो चौधुरी ने उसके लिए चाय बनाकर दे दी। पाव रोटी खाकर चाय पीकर वह फिर निकल पड़ा। जाने के पहले उन्हें बार-बार जोर दे-देकर चेता गया, "चाचा जी, आज दुपहरिया को भी आप उस्तादी दिखाते हुए भोजन बनाने मत लग जाइएगा। आपका शरीर तो वैसे ही स्वस्थ नहीं है, उस पर इस बीमारी की हालत में आप काम करने लग जाते हैं, यह बिलकुल ठीक नहीं है, हां। मैं तो बस यह गया, वह आया। बस तुरत-फुरत आकर आज का भोजन बना दूंगा। मूंग की दाल घर में है न ? और मक्खन ? कोई बात नहीं। तो ठीक है। मैं लौटते समय लेता आऊंगा।"

मगर मृणाल फिर लौटा ही नहीं। उसी दिन अनीता के घर पहुंच गया था। वहीं दोपहर का भोजन कर दस रुपए उससे लेकर अपने गांव चला गया। 'चौधुरी बड़ी ही बुरी तरह बीमार पड़े हुए हैं।' यह सूचना वही अनीता को देता गया था।

मृणाल के पिता गिरिपद बरुआ भूदेव चौधुरी के मामा के बेटे हैं। गिरिपद बरुआ चौधुरी को अपने छोटे भाई की तरह प्यार करते थे। दैव योग से बहुत कम उम्र में ही उनकी मृत्यु हो गई। उनका एकमात्र बेटा मृणाल तब बहुत ही छोटा था। मरने के पहले चौधुरी का हाथ पकड़कर बरुआ ने कहा था, "भूदेव ! मेरे इस बेटे

को देखना, भाई ! तुम्हारे भरोसे ही उसे छोड़े जा रहा हूं। तू ही उसे पाल-पोसकर, अच्छी शिक्षा-दीक्षा दिलाकर मनुष्य बनाना।''

''मृणाल को मनुष्य बना दिया है,'' यह कहकर चौधुरी कोई गर्व का भाव प्रगट नहीं कर सकते। वैसे इस लड़के का मन तो बहुत साफ है, बहुत अच्छा है, परंतु अपने उत्तरदायित्व को निभाने का तनिक भी ज्ञान नहीं है। किसी भी बात के लिए उस पर भरोसा करके उस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। मामूली-से-मामूली बात के लिए भी उस पर विश्वास कर पाना कठिन है। झूठ बोलने की तो उसे जैसे बीमारी ही है। जहां झूठ बोलने की कोई जरूरत नहीं, झूठ बोलने से न कुछ मिलने का लोभ है, झूठ बोले बिना ऐसी संकट की स्थिति भी नहीं है कि झूट न बोलने से कोई आफत आ जाए, वहां भी वह फर्राटे से झूट बोलता जाता है।

कुछेक दिन और बीतने के बाद मृणाल फिर चौधुरी के घर आ धमका। अबकी बार काफी व्यस्त और डरा-सहमा-घबराया हुआ था। आते ही उसने सूचना दी कि गुवाहाटी के बाहरी क्षेत्रीय कस्बे मालीगांव में तो अब तब कर्फ्यू निश्चय ही लगा दिया गया होगा। बड़ी जोरों की मारपीट हो रही है। भयानक खून-खराबा जारी हो गया है। उसने स्वयं अपनी आंखों से पांच लाशें पड़ी देखी हैं वहां की सड़कों पर। अब गली-कूचे के भीतरी हिस्से में और क्या कुछ घटित हो गया होगा, इसके बारे में तो कोई कुछ कह ही नहीं सकता।

''ऐसी खतरनाक स्थिति मे तू आया कैसे ?''

''पास की तिमुहानी तक तो पुलिस की गाड़ी ही पहुंचा गई।''

''चलो, अच्छा हुआ। अब देरी न कर। हाथ-मुंह धो लो। चलो, थोड़ा भोजन कर लो। काफी देर हो चुकी है।''

''नहीं, बिलकुल नहीं। भोजन करने के लिए मेरे पास समय ही नहीं है। वो तो आप को सूचना देनी बहुत आवश्यक थी, सो चला आया। नहीं तो आप बराबर चिंता में पड़े रहते। अब मैं चलूं। शहर के पश्चिमी भाग में भी कब कर्फ्यू लगा दे, कोई ठीक नहीं। पुलिसवाले बतला रहे थे कि परिस्थिति बहुत ही खराब हो चुकी है।''

''मगर ऐसी हालत में तू जाएगा कैसे ? बस-गाड़ी कुछ चल भी रही है ?''

''अब तिमुहानी तक तो जाना ही पड़ेगा। वहां से पुलिस की गाड़ियां आ-जा रही हैं। कोई जुगाड़ कर जैसे-तैसे चला ही जाऊंगा। मुझे तो सभी पहचानते हैं। गुवाहाटी में रहनेवाले गजेन के पास मेरे कुछ रुपए पड़े थे, जो आज मिलनेवाले थे। मगर आज की ऐसी विकट स्थिति में रुपए वसूल करने के लिए अब कहां जा पाऊंगा ?''

मृणाल की बातों पर विश्वास न करने पर भी चौधुरी कुछ विचलित जरूर हो गए थे। जाने कहां, क्या घटित हो गया हो ? परंतु कहीं से भी कुछ असामान्य

घटित होने का कोई चिह्न नजर नहीं आ रहा था। सब कुछ रोज की तरह ही सीधी-सरल चाल से चल रहा था। कुछ देर बाद लगभग दिन के डेढ़ बजे मदन दास को अपनी पत्नी और बाल-बच्चों के साथ बाजार से घर की तरफ आते देखकर उन्होंने आवाज दी और मदन दास को पास बुलाया, "कहो जी मदन ! तुम लोग कहां से आ रहे हो ?"

"कुछ न पूछें, चाचा ! इन बच्चों के उत्पात के आगे अपनी कुछ नहीं चल पाती। इन्होंने सिनेमा देखने के लिए इतनी जिद कर रखी थी कि अंततः इन्हें पिक्चर दिखलाकर ले आना पड़ा।"

"तो गुवाहाटी शहर की अवस्था अब कैसी है ?"

"ऐसा क्यों पूछ रहे हैं ? गुवाहाटी में क्या हो गया है ?"

"सुना है कि वहां सरकार ने कर्फ्यू लगा दिया है।"

"कर्फ्यू ? आपसे किसने कहा ? ऐसा तो नहीं।वहां कुछ भी नहीं हुआ है।"

"कहते हैं कि मालीगांव इलाके में भयंकर मारपीट मची हुई है।"

"नहीं तो। वहां ऐसा कुछ भी नहीं। हम लोग अभी उधर से ही तो आ रहे हैं। ओ हो ! हां, सुना था कि किसी एक पाकेटमार को पकड़ लिया था। उसी की वजह से थोड़ा शोरगुल हुआ था। ऐसा कुछ सुना था।"

मृणाल एक काल्पनिक जगत में निवास करता है। वह जान-बूझकर झूठ नहीं बोलता। जिस समय वह जो बात कहता होता है, सभवतः तब वह उस पर विश्वास करता होता है। जान पड़ता है कि वह वास्तविक जगत में न रहकर अपने मन द्वारा गढ़ी हुई काल्पनिक दुनिया में विचरता रहता है।

चौदह

भूदेव चौधुरी की छोटी बिटिया अनीता आजकल चौधुरी के पीछे पड़ी है कि वे अपनी 'आत्मकथा' लिखें। परंतु लिखना चाहने भर से कोई लिख सकता है क्या ? झटकेबाजी में, हड़बड़ाने से ही कोई काम सिद्ध थोड़े हो जाता है ! अगर थोड़ी देर के लिए मान भी लें कि चलो, अपनी एक आत्मकथा लिख ही डालें, तो फिर सवाल उठेगा कि वे उसमें लिखेंगे क्या ? मूल्यबोध, आदर्श, अनुभूति वगैरह आवश्यक श्रेष्ठ वस्तुएं उनके जीवन में आसानी से पहचानने लायक स्थिति में हैं क्या ? उनका सारा-का-सारा जीवन ही अस्थिर और चंचल रहा है। सभी कुछ में ऐसा बदलाव आ गया है कि किसी भी रूप को ठीक से पहचाना ही नहीं जा सकता। पुरानी धारणाएं घिसते-घिसते कब समाप्त हो गईं, नई धारणाएं कब आईं, और छा गईं, फिर पुरानी धारणाएं और

नई धारणाएं परस्पर ऐसी गड्डमड्ड हो गईं कि नई धारणाओं का रूप और गुण दोनों ही बदल गया है।

अपने समूचे जीवन में वे नए मूल्यबोध, नए संस्कार और नई-नई विचारधाराओं को ग्रहण करते रहे हैं। उनकी इस प्रवृत्ति में अभी भी कोई कमी नहीं आई है। एक समय बड़ी मेहनत-मशक्कत करके किसी तरह पाई गई विचारधारा को दूसरे समय पर बिना किसी हील-हुज्जत के बड़ी आसानी से उन्होंने छोड़ दिया है। परंतु किसी विचारधारा को क्या पूरी तरह से त्याग पाए हैं ? उसमें कुछ-न-कुछ बचा नहीं रह गया है ?

भूदेव चौधुरी की माता जी देवी-देवताओं के पूजा-पाठ में पूरी तरह तटस्थ थीं, एकदम पक्षपात-शून्य। पुरोहित जी महाराज की सहायता से शालिग्राम की मूर्ति पर एक सौ आठ तुलसी के पत्ते चढ़ाती थीं तो ठीक उतनी ही श्रद्धा-भक्ति से मां काली की भी पूजा करती थीं। (जहां शालिग्राम पूजन वैष्णव भक्तों का काम है तो काली पूजन शाक्तों का) पूरी तरह से गणतांत्रिक व्यवस्था थी उनकी। गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती चाहे जिसकी भी पूजा का समय आए, वे सभी की समान रूप से पूजा-अर्चना करती थीं। इनके बीच ही सत्यनारायण पूजा भी करती थीं। दूसरी ओर, सुवचनी महादेवी की पूजा, मनसा देवी की पूजा करना भी बंद नहीं करती थीं। शिवरात्रि के दिन शिव माटी जुटाकर अपने हाथ से ही मिट्टी के शिवलिंग का निर्माण करके बड़े भक्ति भाव से शिव की पूजा करती थीं। इन सबके अलावा भी भिन्न-भिन्न महत्वपूर्ण तिथियों को भजन-संकीर्तन का आयोजन करतीं। इसे उनके इलाके में नामधरा यानी 'प्रभु के नाम का जाप करना' कहा जाता था। जब भी ऐसा सुयोग होता तो उस दिन तड़के भोर में ही चौधुरी वगैरह मुहल्ले के घर-घर जाकर सभी को सूचना दे आते थे। फिर सायंकाल सभी घरों की महिलाएं इकट्ठी होकर नाम जप करती थीं।

सांझ की बेला में तुलसी चबूतरे पर तुलसी के पौधे के सामने दिया जला दिया जाता था। चौधुरी और उनकी उम्र के बच्चे सांझ होते ही हाथ-पांव धोकर तुलसी के पौधे के सामने घुटना टेककर अपना श्रद्धा-भाव व्यक्त करते हुए प्रणाम करते थे। मां की बगल में खड़े होकर देवता से आशीर्वाद मांगते थे, "हे बलराम बाबा ! देखना प्रभु ! सुनाम देना, समृद्धि देना, सुमति देना, सुबुद्धि देना।"

मां की इस तरह की कातर प्रार्थनाओं पर देवता कैसी प्रतिक्रिया करते, उनकी प्रार्थनाओं को कहां तक स्वीकार करते, चौधुरी कुछ कह नहीं सकते। उनकी धारणा प्रायः यही होती कि मां की प्रार्थनाएं स्वीकार नहीं होतीं।

धर्म के दार्शनिक तत्व के संबंध में मां कोई माथा-पच्ची नहीं करतीं। अद्वैतवाद, एकेश्वरवाद जैसे शब्द तो उनकी समझ के बाहर थे, उनके लिए इन शब्दों का कोई अर्थ ही नहीं था। केवल अकेले भूदेव चौधुरी की ही नहीं, बल्कि सभी

की धर्म संबंधी शिक्षा-दीक्षा उनकी मां के माध्यम से ही आरंभ होती है। चौधुरी की वेला में भी वही हुआ था। धर्म के विषय में चौधुरी की धारणा अस्पष्ट है। जो कुछ है मनोवेगों के सहारे ही है, उसके अलावा कुछ भी नहीं। यद्यपि आगे चलकर अपने जीवन में उन्होंने बहुत सारे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ ग्रंथों का अध्ययन-मनन किया है, फिर भी धर्म के संबंध में बनी उनकी पहले की मानसिक अवस्था में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। उलटे इन सबकी वजह से उनके मन में नाना प्रकार की धारणाओं के संघर्ष ही उत्पन्न हुए हैं। आरंभ से ही पड़े हुए संस्कारों को छोड़ नहीं सकते और पूरे मन-मस्तिष्क से विश्वास भी नहीं कर पाते। अभी भी उधर यात्रा पर जाते हैं और कामाख्या मंदिर की बगल से जब गाड़ी गुजरने लगती है तो वे (कामाख्या पहाड़ की सबसे ऊंचाई पर स्थित) भुवनेश्वरी देवी के मंदिर की ओर आंख उठाकर अपना प्रणाम व्यक्त करते हैं। कभी-कभी जब ज्यादा सजग साथी लोग साथ होते हैं तो वे अपनी श्रद्धा इस कुशलता से व्यक्त करते हैं कि अगल-बगल का कोई व्यक्ति जान न सके, परंतु जैसे भी हो देवी को प्रणाम किए बगैर नहीं रह सकते।

बचपन के दिनों में चौधुरी ने अपने पढ़ने के कमरे के एक कोने में देवी की मूर्ति की स्थापना कर ली थी। एक डिब्बे के ऊपर सरस्वती देवी की एक फ्रेम में जड़ी हुई तस्वीर रख दी थी। उस तस्वीर की अगल-बगल में एक तरफ गणेश जी और दूसरी तरफ शंकर जी की मिट्टी की मूर्तियां सजा दी थीं। उस डिब्बे के चारों ओर बोतलें सजाकर रख दी थीं जिनमें सदाबहार पौधे की शाखाएं भर कर सजावट कर दी थी। बोतलों में थोडा सा पानी भी डाल रखा था ताकि शाखाओं की जड़ को पानी मिलता रहे। शेफाली (हरशृंगार) फूल फूलने के दिनों में वह सांझ की बेला में ही कलियों से लदी-फदी छोटी-छोटी टहनियों को लाकर बोतलों में भर देते थे। रात की बेला में ही वे कलियां फूल जातीं और प्रातःकाल होते-होते सरस्वती की तस्वीर के आगे झर पड़ती थीं। इससे प्रातःकाल की बेला में चौधुरी असीम आनंद से प्रफुल्लित हो जाते थे।

धर्म की जो शिक्षा चौधुरी ने अपनी मां से पाई थी उसे महिम शर्मा ने और भी सहज-सरल बना दिया था। वे हिंदू धर्म और संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने के लिए प्राणपण से जुटे हुए थे। 'हिंदू मिशन' के सक्रिय सदस्य स्वामी ओंकारानंद के वे प्रिय शिष्य थे। चौधुरी वगैरह तब नवीं कक्षा के छात्र थे। महिम शर्मा के वे सब बड़े भक्त थे। समय-समय पर इसके लिए सार्वजनिक सभाएं आयोजित की जाती थीं। तब चौधुरी वगैरह बड़े उत्साह से कुर्सी-बेंच वगैरह ढो-ढोकर करीने से लगाते थे। एक बार के समारोह में सात सागर पार के देश ग्रीस से एक ग्रीक महिला पधारी थीं, जिन्होंने हिंदू धर्म अपना लिया था। उस बार की सभा के लिए समारोह के बहुत दिन पहले से ही चौधुरी वगैरह छपे हुए पोस्टरों, पर्चों को जगह-जगह

चिपकाते, बांटते रहे थे। ग्रीक महिला की शिक्षा की सूचना देनेवाला प्रतीक एम. ए., एम.एच., पी-एच.डी. उनके नाम के आगे लगा था। बड़ी ही महान विदुषी थीं। जानने को लालायित बालकों को महिम शर्मा बड़ी श्रद्धापूर्वक उनके संबंध में समझा रहे थे। महिम शर्मा के जीवन में यही सबसे बड़ी महत्वपूर्ण घटना थी। बड़ी उत्तेजना से चिल्ला-चिल्लाकर वे बालकों को तरह-तरह के निर्देश देने में इतने व्यस्त थे कि बोलते-बोलते उनका गला बैठ गया। जब समारोह आरंभ हुआ तो उस सभा में गला बैठ जाने के कारण वे कुछ बोल ही नहीं सके। सभामंडप में ग्रीक महिला के पास एक कुर्सी पर परम कृतार्थ मुद्रा में बैठे रहे। ग्रीक महिला विदेशी होते हुए भी भारतीय स्त्रियों की भांति साड़ी पहने हुए थीं, उन्हें देखने के लिए भीड़ उमड़ रही थी। उस सभा में भाषण देते हुए ग्रीक महिला ने क्या कुछ कहा था, अब चौधुरी को उसमें से कुछ भी याद नहीं। और, याद किए रखने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। इतना भर याद है कि औरों की तरह वे भी विस्मय-विमुग्ध हो उस ग्रीक महिला की ओर ही निहारते रहे थे।

'हिंदू मिशन' द्वारा प्रकाशित पुस्तकें और पत्रिकाएं महिम शर्मा जी के पास आती रहती थीं। उन पत्रिकाओं में धर्म के संबंध में किन गंभीर तत्वों को समझाया गया था, इस सबके बारे में चौधुरी को अब रंचमात्र भी कुछ याद नहीं है। हां, पत्रिका के अंतिम अंशों में हिंदू महिलाओं पर मुस्लिम गुंडों द्वारा जो जंगली जानवरों जैसा अत्याचार किया गया था उसका विस्तृत विवरण था, उन्हीं में से कुछ घटनाओं की बात अभी चौधुरी को याद है।

जब कक्षा दस में पहुंचे, तो एक बार फिर विचारधारा में परिवर्तन हुआ। रमाप्रसन्न बरुआ जी के संपर्क में आकर चौधुरी वगैरह महात्मा गांधी के आदर्शों में श्रद्धा-भक्ति रखने लगे। ब्राह्मण, शूद्र, हिंदू, मुसलमान—अगर यह भेद-भाव बना रहेगा, तो देश की उन्नति किसी भी तरह नहीं हो सकती। जोश इतना बढ़ा कि महात्मा गांधी के आदर्श ही चौधुरी वगैरह के आदर्श बन गए। वैसे यह बात पूरी तरह सच नहीं है। सच यह है कि रमाप्रसन्न जी जो कुछ समझाते थे, चौधुरी वगैरह उसे ही मान लेते थे। यह एक भारी परेशानी थी।

वस्तुतः उनका मन एक ऐसा स्थान था जहां नाना प्रकार की धारणाओं को एक-पर-एक करके इकट्ठा रख दिया जाता हो। अहिंसा आंदोलन, सत्याग्रह—ये सब शब्द भर थे, केवल शब्द। वैसे मनुष्य के जीवन में शब्दों का प्रभाव भी कोई कम नहीं होता। मंत्र की तरह ही शब्द काम करते हैं। मंत्र मुनष्य को प्रेरणा देते हैं, उत्तेजित कर देते हैं। मंत्रमुग्ध कर देने की बात तो विख्यात ही है। भूदेव चौधुरी उस बेला में मंत्र-मुग्ध या मोहाच्छन्न अवस्था में ही थे। रमाप्रसन्न बरुआ के प्रत्येक आदर्श-निर्देश को पूरे मन से मान लेते थे। चर्खे पर सूत भी कातते थे।

कांग्रेस पार्टी जब कोई सभा-समिति बुलाती थी तो उसमें कोई भीड़ जुटती नहीं थी। रमाप्रसन्न बरुआ और उनके भक्त गला फाड़-फाड़कर चिल्लाते थे–'महात्मा गांधी की–जय', 'बंदे–मातरम्' !

परंतु जिस दिन महात्मा गांधी आए थे उस दिन तो आदमियों की भीड़ का सैलाब ही उमड़ पड़ा था। मानो एक प्रकार का मानवों का समुद्र ही हो। महात्मा गांधी के आने के एक दिन पहले रूपसी के जमींदार साहब ने 'पंक्ति भोजन' का प्रबध किया था, माने हर एक जाति के लोगों का एक साथ बैठकर, ऊंच-नीच का भेद भुलाकर एक साथ भोजन करने की व्यवस्था। उसके दूसरे दिन सवेरे-सबेरे ही महात्मा गांधी ने पैदल-पैदल चलकर अपनी यात्रा आगे बढ़ाई और रूपसी से धुबरी चले जा रहे थे। उस दिन के पहली रात से ही दूर-दराज से आकर लोग उनके रास्ते के दोनों ओर इकट्ठे हो गए थे। आदमियों के आने का क्रम ऐसा जारी था कि उसे आदमियों की उमडती तरंग या बहती धारा ही कहा जा सकता था। उस समारोह में चौधुरी स्वयंसेवक की भूमिका निभानेवाले नवयुवकों में से एक थे। उमड़ती भीड़ को संभाले रखने का उत्तरदायित्व इन्हीं स्वयंसेवको के कंधों पर था। दूर-दूर के अत्यंत दुर्गम भीतरी पहाड़ियों तक के गांवों से उमड़ती चली आती भीड़ में महा जर्जर बूढ़े, वयस्क, नौजवान सभी तरह के अनगिनत आदमी थे, परंतु ये सब आदमी गांधी जी के आदर्शो का मर्म क्या जानते हैं ? एक अर्द्धनग्न, अत्यंत दुर्बल, पतला, हिलता-डुलता मनुष्य धूल-धूसरित राह पर धीरे-धीरे पांव बढ़ता चलता चला जा रहा है। अनगिनत मनुष्य सम्मोहित हो, मंत्रमुग्ध से आकुल-व्याकुल हो बड़ी उत्सुकता से एकटक स्थिर दृष्टि से उसी ओर देखते जा रहे हैं।

रमाप्रसन्न बरुआ वगैरह ने मधुपुर में गांधी जी को रुपयों की थैली भेंट करने की व्यवस्था की थी। जमींदार साहब के घर के सामने के चौक पर खड़े होकर गांधी जी ने एकत्रित जनता को लक्ष्य कर कुछ भाषण दिया। उन्होंने क्या कुछ कहा था, चौधुरी ने सुना ही नहीं। सुन पाने का कोई उपाय ही नहीं था। गांधी जी जैसे ही उस चौक पर खड़े हुए कि चारों ओर से आदमियों की भीड़ वहीं इकट्ठी होने के लिए धक्का-मुक्की करने लगी। फिर तो चौधुरी और उनके सारे साथी भीड़ को नियंत्रित करने में ही अत्यंत व्यस्त हो गए। फिर भाषण कैसे सुन पाते ?

वहां एकत्रित हुए उन तमाम लोगों पर महात्मा गांधी के कथन का प्रभाव कितना स्थायी हुआ था, यह बता पाना तो कठिन है, परंतु गांधी जी के यहां आने से अमर डे के जीवन में एकाएक परिवर्तन आ गया।

अमर डे महादेव बरुआ के घर रहकर यहां के एक विद्यालय में पढ़ाई करता था। कक्षा दस में पढ़ता था, परंतु उसकी उम्र कुछ अधिक ही थी। पढ़ने में बहुत ही तेज लड़का था। शांत, निरीह, भोला-भाला और लज्जालु प्रकृति का लड़का था वह। भूदेव चौधुरी को उसकी एक विशेषता अभी भी अच्छी तरह याद है। उसे पसीना

बहुत आता था। अपने पैरों में वह कोई जूता-चप्पल नहीं पहनता था। जहां कहीं खड़ा होता, थोड़ी देर में ही वह जगह उसके पसीने की छाप से गीली हो जाती। महात्मा गांधी जी के आने के उपलक्ष्य में रूपसी के जमींदार ने जो पंक्ति-भोजन करवाया था, उसमें अमर भी भोजन कर आया था। महादेव बरुआ की मां को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने भयानक शोरगुल मचा दिया। उनका कहना था कि इस पाप के लिए उसे गोबर खाकर प्रायश्चित करना पड़ेगा। यह क्या कोई मामूली बात है ? मोची, मेहतर के साथ-साथ बैठकर भोजन कर आया है। फिर जाति-धर्म रहा कहां ? ऐसे ही हड़बड़-हड़बड़ घर के अंदर चला आया, बस हो गया काम खत्म ? नहीं, बिलकुल नहीं। इस तरह वह घर में नहीं रह सकता। प्रायश्चित करना ही पड़ेगा। परंतु अमर इसे पाप नहीं मानता, अतः उसने कोई भी प्रायश्चित करना स्वीकार नहीं किया। फिर तो अमर डे जाने कहां चला गया। उसने महादेव बरुआ का घर ही नहीं, पूरा मधुपुर ही छोड़ दिया। वहां से चले जाने के बाद उसका क्या कुछ हुआ, चौधुरी कुछ बता नहीं सकते।

"ताई बिटिया यहीं पर रहती है क्या ?"

सदानंद हजारिका की आवाज सुनकर चौधुरी के सोचने की तंद्रा टूटी। उन्होंने देखा कि मदन दास की पत्नी मीना अपने घर के बाहर के बरामदे में आ खड़ी हुई है और इधर चौधुरी के बरामदे के उस छोर पर जाकर हजारिका साहब बड़ी ही अशालीन दृष्टि से उसकी ओर टकटकी लगाए देख रहे हैं।

चौधुरी ने उन्हें आवाज दी, "आइए, हजारिका साहब ! आइए, बैठिए।"

"क्यों जी, इस तरह ध्यानमग्न हो क्यों बैठे हुए हो ? अथवा फिर किसी की ओर टकटकी लगाए देख रहे हो जिससे और किसी चीज की सुध-बुध ही नहीं। ह ह ह ह, वाह रे वाह !"

चौधुरी ने तब स्वर को कुछ और गंभीर बनाते हुए कहा, "आप बैठें तो !"

हजारिका ने पूछा, "ये सब यहीं रहते हैं क्या ?"

" 'ये सब' का क्या मतलब है ?"

"माने मदन और मीना। ये दोनों यहीं साथ-साथ रहते हैं, अथवा मदन को छोड़कर अब वह किसी और के साथ यहां आकर रह रही है ?"

"ये सब अनाप-सनाप आप क्या बके जा रहे हैं ?"

"क्यों न बकूंगा ? आप ही बतलाएं। ताई अगर स्वयं अच्छे स्वभाव-चरित्र की रही होती तो एक मल्लाह का लड़का क्या एक ब्राह्मण की लड़की को बहला-फुसलाकर उससे विवाह कर सकता था ? अरे हमारा यह पूरा देश ही नीचे गिरते-गिरते रसातल को चला गया है।"

"मीना ब्राह्मण की कन्या है क्या ?"

"ब्राह्मण की कन्या है के माने ? अभी आप यह पूछते हैं ? अरे ब्राह्मणों में भी श्रेष्ठ, वह गोस्वामी परिवार की कन्या है। उसके पिता परमानंद पंडित अत्यंत प्रसिद्ध विद्वान हैं। उस इलाके के सारे-के-सारे लोग उनके शिष्य हैं। सभी लोग उन्हें देवता के समान मानते-पूजते हैं। उतने ऊंचे वंश के घर की कन्या का ऐसा निकृष्ट काम ! मैंने तो उन्हें पहले ही मना किया था। पर माने नहीं। लड़की को पढ़ाकर एम.ए. की पदवी दिलाएंगे। पा गए न मजा ?"

"क्यों इसके विवाह में घरवाले सहमत नहीं थे ?"

"क्या कहते हैं आप ? इतने जानकार आदमी होकर आप यह क्या कह रहे हैं ? अरे इसके पिता ने तो मारे क्रोध के कह दिया था—कि उनकी मंझली लड़की मीना मर चुकी है—वे तो बस उतने से ही शांत हो गए थे। अगर कहीं वह मेरी कन्या रही होती तो उसे टुकड़े-टुकड़े काटकर ब्रह्मपुत्र में बहा दिया होता।"

चौधुरी भी तो बूढ़े आदमी ही हैं। परंतु 'ऐसा करके मीना ने कोई अपराध किया है'—ऐसा वे किसी भी रूप में सोच नहीं सके। मगर आज से चालीस वर्ष पहले अगर ऐसी घटना हुई होती तो उस समय चौधुरी क्या सोच रहे होते ? तब क्या इतनी सरलता से ऐसी बात को स्वीकार किए होते ? एक ही मनुष्य का मूल्य-बोध समय के साथ-साथ धीरे-धीरे बदलता रहता है। इन सब बातों के बारे में चिंतित होने से कोई लाभ नहीं। ये तो काल्पनिक परिस्थिति में की जानेवाली काल्पनिक प्रतिक्रियाएं भर हैं।

पंद्रह

भूदेव चौधुरी की नींद अचानक ही खुल गई। आजकल ऐसे ही अपने आप एकाएक नींद उचट जाती है। जग जाने के बाद अपने आसपास के परिवेश के संबंध में कुछ भ्रम सा हो जाता है। कुछ तय नही कर पाते। समय और अपनी आयु की अवस्था की धारणा से एक भूल-भुलैया सी बन जाती है। सपने के जगत से निकलकर यथार्थ के जगत से अपने आपको ठीक-ठीक रूप में जोड़ने में कुछ समय गुजर जाता है। नींद टूटकर जगने के साथ-साथ ही सपने में देखे गए दृश्य मन के पर्दे से तुरंत गायब हो जाते है। परंतु सपने में पाई गई अनुभूतियां मन के आकाश में बहुत देर तक कुहरे की भांति उमड़ती-घुमड़ती रहती हैं।

धीरे-धीरे चौधुरी अपने आसपास के स्थान और समय के प्रति सजग हो उठते हैं। घर में चूंकि एक नन्हा बच्चा है, अतः मदन दास के शयनकक्ष में बत्ती रात भर जलती रहती है। उनकी खिड़की के शीशों से रोशनी आकर चौधुरी के सोने के कमरे की दीवार पर पड़ती है। बैठकखाने के स्प्रिंगदार सोफे पर किसी चीज के

धप्प से गिरने का शब्द हुआ। लगता है, छत में लटके पंखे पर से कोई छिपकली गिरी है। परंतु छिपकली का जैसा आकार-प्रकार है, उसकी अपेक्षा तो यह शब्द काफी ज्यादा है। उनके पलंग के नीचे फिर कुरुक्-कुरुक् करके बार-बार आवाज होने लगी। जान पड़ता है कि चूहा पुस्तकों को कुतर रहा है। पलंग के नीचे पुस्तकों का अंबार लगा है। आलमारी, रैक, मेज, कुर्सी और कहीं भी जगह नहीं बची है। उस पर भी जो पुस्तकें बच रही हैं वे खाटों के नीचे अथवा यूं ही फर्श पर छूटी-छिटकी पड़ी हैं। पांव रखने की भी जगह नहीं है। उनके कमरे में जो ये तरह-तरह के शब्द होते रहते हैं, वे सब शब्द ही हैं जो उन्हें अपने कमरे के वास्तविक जगत में खींच ले आए।

रात में जब एक बार नींद टूट जाती है तो फिर सारी रात दुबारा नहीं आती। आंखें बंद किए बिछौने पर पड़े-पड़े वे भोर होने की बाट जोहते रहे। टूटी-फूटी अस्पष्ट तस्वीरें लाइन लगाकर उनकी उन बंद आंखों के सामने झिलमिलाती हुई गुजरने लगी। छूटी-छिटकी इन तस्वीरों में घटनाओं का कोई क्रम नहीं था। समय के अनुसार आगे-पीछे होने का भी कोई क्रम नहीं था। एक दृश्य आंखों के सामने झिलमिलाया पहला दृश्य अभी स्पष्ट भी नहीं हो पाया था कि तभी दूसरा दृश्य चढ़ आया। इस तरह नाना प्रकार के दृश्यों का एक अस्पष्ट जुलूस सा गुजरने लगा।

नींद आने की तो अब कोई संभावना ही नहीं रही। आंखें बंद किए-किए देखते-देखते सचमुच सारी रात बीत गई, भोर हो गई। इतना शांत, इतना समझ से परे तत्व भी अचानक समझ में आ जाने की तरह।

भूदेव चौधुरी ने अपनी दोनों टांगे पलंग के नीचे लटका दीं। पैर के तलुओं के नीचे पुस्तकों की भारी ढेरी पड़ी है। उन्होंने धोती को लपेटकर लुंगी की तरह बांध रखा था। बिछौने के किनारे बैठकर उन्होंने दोनों टांगों को सीधा कर पसार दिया। उनकी दोनों टांगें सूखे सरकंडों की तरह दुबली-पतली हैं। वैसे ऊपर-ऊपर से देखने पर कोई भी यह समझ नहीं पाता कि वे इतने दुबले हो गए हैं। लंबा पतलून पहने रहने के कारण उनकी दोनों टांगें दिखलाई नहीं पड़तीं। ऊपरी हिस्से का मुखमंडल तो ठीक-ठाक है ही। अतः बाहर से कोई सही-सही अंदाजा नहीं लगा सकता। उनका अपना शरीर जो धीरे-धीरे खराब होता जा रहा है, यह तथ्य वे स्वयं भी समझना नहीं चाहते। आजकल वे बराबर थकावट महसूस करते हैं। बराबर ही कष्ट बना रहता है। इसी थकान और कष्ट के मारे वे कहीं बाहर नहीं निकलते, बरामदे में ही बैठकर काम चला लेते हैं।

थोड़ी देर के लिए भूदेव चौधुरी स्नानघर में गए। अभी तक नल में पानी नहीं आया। नल के नीचे पानी भरने के लिए जो बाल्टी रखी रहती है उसकी पेंदी में एक छेद हो गया है। सो रातभर में रिसते-रिसते सारा पानी बह गया है। वे प्रायः ही सोचते हैं कि चूना और गुड़ मिलाकर उस छेद को बंद कर देंगे, परंतु इसे करने

के समय बराबर ही भूल जाते हैं। आज की ही बात नहीं। करूंगा, करूंगा करते-करते जाने कितने दिन बीत गए, परंतु बाल्टी का वह छेद भरा न जा सका। कोई भी महत्वपूर्ण और आवश्यक काम उनसे नहीं हो सका।

हाथ-पांव धोना, स्नान करना तो बहुत दूर की बात, शौच के लिए शौचालय जाने का भी कोई उपाय नहीं। स्नानघर से लौटकर वे फिर बिछौने पर पड़ रहे। क्रोध और झुंझलाहट से बेचैन होने लगे। किसी के ऊपर नहीं, यू ही बस। वे अच्छी तरह समझ गए कि वे अपनी व्यवस्था भी अब स्वयं कर पाने लायक नहीं रहे। घर का काम करनेवाले लड़के योगेन को जगाने से भी कोई लाभ नहीं। क्योंकि कहीं भी पानी बचाकर रखा हुआ नहीं है। अब जब तक नल में पानी नही आ जाता योगेन भी चाय बनाकर नहीं दे सकता। वैसे गजानन राय के मकान में नलकूप है, कुआं भी है। योगेन जाकर वहां से एक बाल्टी पानी ले आ सकता है। परंतु अब यहां से उठकर योगेन को जगाने जाने का चौधुरी का मन नहीं हुआ।

वे सचमुच ही अब कुछ कर सकने लायक नहीं रहे। उम्र बहुत अधिक हो गई है। कभी जब नगर-बस में सवार होते हैं तो यह बात अच्छी तरह समझ पाते हैं। बस में सवार अधिकांश लोग ही झुंझलाहट दिखाते हैं। इतनी वृद्धावस्थावाले इस आदमी का यह कैसा कांड है ! इस तरह की ठेला-ठाली के बीच फंसने की क्या आवश्यकता है ? कभी-कभी कोई नवयुवक अपनी सीट खाली कर उठ जाता है, "आइए बैठिए बाबा ! वृद्ध आदमी हैं, इस तरह लटके कब तक खड़े रहेंगे ?" वैसे इस तरह का व्यवहार बहुत अच्छा लगता है, परंतु यह भी एक प्रकार की झुंझलाहट व्यक्त करने का ही तरीका है। इसके भीतर छिपा अभिप्राय यह कि तुम एक दीन-दुर्बल बूढ़े आदमी ठहरे। अगर कहीं हिचकोले संभाल न सके और औंधे मुह गिरकर सर-वर तुड़ा बैठे; तो फिर क्या होगा ? अब बूढ़े बाबा तुम खुद ही सोचो कि धक्मधक्की में तुम खुद ही घुस नहीं गए होते तो फिर इस तरह की पश्चाताप की स्थिति भी तो नहीं आती।

बाल्टी की पेंदी में छेद हो गया है। पानी संजो रखने का जो चहबच्चा बनवाया है उसका पानी प्रयोग होते-होते बिलकुल खत्म हो जाता है, फिर जरूरत पड़ने पर उसमें एक बूंद भी पानी नहीं रहता। पानी साफ रखने के बर्तन (फिल्टर) का पानी साफ करने की बत्ती (कैंडिल) खराब हो गई है। उसे ठीक करवाऊंगा, ठीक करवाऊंगा करते-करते उसे भी आज तक ठीक नहीं करवा सके। ऐसी एक जड़ता और आलस्य की भावना ने चौधुरी को चारों ओर से दबोच रखा है।

तभी उन्हें अपनी स्वर्गीया पत्नी की याद आई। वैसे उनकी भी अवस्था काफी हो गई थी, ऊपर से कई तरह की बीमारियों ने और दबोच रखा था, फिर भी उस रोगी शरीर को झेलते हुए भी घर-गृहस्थी का सारा काम वे ही संभालती थीं। सभी ओर नजर रखती थीं। वैसे चौधुरी कभी भी एक आदर्श गृहस्थ नहीं थे। महाआलसी,

आराम करते रहने के अभ्यस्त और लंबी तानकर सोनेवाले। हर एक काम में लेट-लतीफ। वैसे उन्होंने काम भी किया है। अपने पूरे जीवन भर अथक परिश्रम भी किया है, परंतु स्वयं की इच्छा से, शौक से नहीं बल्कि बाध्य होकर तब जबकि किए बिना कोई और चारा ही नहीं रहा। घर-गृहस्थी के मालिक का ऐसा स्वभाव उस गृहस्थ की पत्नी के लिए सचमुच ही बहुत परेशानी पैदा करनेवाला होता है।

पत्नी की याद आते ही चौधुरी का मन बहुत बेचैन हो जाता है। दरअसल जब तक उन्होंने साथ निभाया, चौधुरी ने कभी भी पत्नी के मन की बातों को जानने-समझने की कोई कोशिश नहीं की। उनके लिए तो वे वायु और पानी की तरह एक सहज प्राप्त हो सकने वाली संपत्तिभर थीं। इससे अधिक मर्यादा उन्हें चौधुरी कभी नहीं दे सके।

भूदेव चौधुरी की धर्मपत्नी प्राचीन एवं नवीन मूल्यबोधों का एक जटिल मिश्रण थीं। चौधुरी की छाया भी पैरों तले न आ जाए, इसलिए वे दूर-दूर रहती हुई, जरूरत पड़ने पर देह को आधे गोलाकार रूप में तोड़-मरोड़कर जगह को पार कर जाती थीं। परंतु दूसरी ओर वे नए जमाने के युक्तिवाद को भी मानना चाहती थीं। वे उस जमाने में ही बी.ए. पास थीं। परंतु अकेले-अकेले घर के बाहर कहीं भी जाना पसंद नहीं करती थीं। चौधुरी को अब समझ में आया है कि इस मानसिकता के पीछे भी दोष चौधुरी का ही है। वे सारा-का-सारा दिन अपने यार-दोस्तों के साथ मौज-मस्ती करते, अथवा बिना किसी कामकाज के ही घूमते-फिरते रहते थे, किंतु पत्नी अगर किसी जरूरी काम से भी कहीं बाहर साथ चलने को कहती तो हजारों तरह की झंझटें गिनाने लग जाते। ऐसी व्यस्तताएं बताते ही पत्नी का बाहर निकलना नहीं हो पाता। चौधुरी कभी-कभी यह जरूर कहते, "अरे तुम अकेली ही चली जाओ न। बस इतनी सी दूरी से अकेले-अकेले जाकर लौट आने में कौन सी कठिनाई है ? क्या इतना भी नहीं कर सकोगी ?"

"पहले से ही अगर अकेले-अकेले घूमने-फिरने का मौका दिए रहे होते, तो कर सकती थी। और लोगों की पत्नियां क्या अकेले-अकेले घूमती-फिरती नही हैं ? किस विशेष बाजार में ताजा और अच्छी मछलियां मिलती हैं, किस बाजार में सस्ते में अच्छा कपड़ा खरीद सकते हैं, वे सब अच्छी तरह जानती हैं। शुरू से ही अगर मुझे भी उसी तरह चलने दिए होते, तो वह सब मैं भी बड़े ठाठ से कर सकती थी।"

सच पूछो तो दोष भूदेव चौधुरी का ही है। उनकी पत्नी तो शुरू से ही उनके निकट आने की, हर काम में उनके साथ-साथ रहने की हर संभव कोशिश करती थीं, परंतु उन्होंने ही उनकी इस कोशिश पर पानी फेर दिया, कभी भी उसे स्वीकार नहीं किया। अब आज उन सब जटिल प्रसंगों को कुरेदने से कोई लाभ नहीं। कहानी के सहयोगी तत्वों को ढूंढ़ने से भी कोई लाभ नहीं है। इस तरह की स्थिति से यह

समझ लेना कि 'भूदेव चौधुरी किसी और को प्यार करते थे'—यह भी भयानक गलती होगी। इन सबके पीछे असली बात है उनका आलस्य भाव। जहां पहुंचने के कई रास्ते हों, तो उनमें से सबसे सहज-सरल रास्ते को, जिस पर चलने में बहुत कम कठिनाई हो, उस रास्ते से ही आगे बढ़ने की स्वाभाविक प्रेरणा ही इसका मूल कारण है। अब आज चौधुरी इन सब बातों को (अपनी कमजोरियों को, पत्नी के प्रति की गई उपेक्षा को) अच्छी तरह समझ पा रहे हैं। और भी बहुत सारी बातें जो तब समझ में नहीं आती थीं, अब वे अच्छी तरह समझ पा रहे हैं। परंतु अब समझने से फायदा ही क्या ? अब तो वहुत देर हो चुकी है।

अतः उस सबके पीछे दोष भूदेव चौधुरी का ही है। उनके बहिर्मुखी स्वभाव का है। संभव है कि उन्होंने यह स्वभाव अपने बड़े भैया से उत्तराधिकार के रूप में पाया हो। हर तरह के बंधन से मुक्त होने, सारे बंधनों के खिलाफ खड़े होने का प्रबल स्वभाव, किसी भी बंधन में न बंधने की प्रवृत्ति ही संभवतः इसके लिए उत्तरदायी है। सच बात तो यह है कि हरेक किस्म की चिड़िया सुंदर कलात्मक घोंसला नहीं बना सकती।

उस समय जब वे सरकारी क्वार्टर में रहते थे, तो उनके कमरे की खिड़की का शीशा टूट-फूटकर निकल गया था। क्वार्टर सरकारी था, अतः संबंधित विभाग को सूचना देने भर से ही उसके कर्मचारी आकर नया शीशा लगा जाते। परंतु यह जरा सा काम भी चौधुरी से करते नहीं बन रहा था। उसे पुराने अखबारों के कागज से जो ढंका था, सो उसी दशा में वह पड़ा रह जाता था। उस जमाने में चौधुरी का विवाह नही हुआ था, सो क्वार्टर मे वे अकेले ही रहते थे। घर का काम-काज करने के लिए धरणी नामक एक लड़का साथ रहता था। घर में सारे सामान छिटके-छितराए बिखरे पडे रहते थे। यहां तक कि पलंग पर जो मच्छरदानी गिरा दी गई, सो सबेरा होने पर भी लपेटकर उठाकर कोई नहीं रखता था, जैसी-की-तैसी पडी रह जाती। पकाने के लिए मछली ले आए तो उसे काटने की पंहसुल या छुरी खोजे नहीं मिलती, सो लकड़ी काटने के दाव से ही रेप-रेप कर मछली काटनी पड़ती। चाय बनाना हुआ तो धरणी चाय तैयार करने के लिए अंगीठी पर पानी चढ़ा देता। पानी जब खौलने लगता और चायपत्ती डालनी होती, तो धरणी बर्मन दादा की दुकान की ओर दौड़ लगाता, क्योंकि चाय के डिब्बे में चायपत्ती नहीं होती।

अतः दोष तो भूदेव चौधुरी का ही था, विशेषतः उनके बहिर्मुखी स्वभाव का। दरअसल बात यह है कि विवाह होने के साथ-साथ ही लड़की के स्वभाव, आचरण आदि में परिवर्तन आ जाता है, परंतु लड़के में कोई परिवर्तन नहीं आता। एक नटखट, चंचल स्वभाव की लड़की अचानक ही एक उत्तरदायित्वशील गुरु गंभीर स्वभाव की गृहिणी बन जाती है।

विवाह होने के पहले से ही चौधुरी ब्रिज का खेल खेलते रहे हैं। चालिहा, लहकर, रहमान और चौधुरी, चारों की चौकड़ी खूब जमती थी। चालिहा का विवाह वगैरह हुआ ही नहीं। उनके घर पर ही ताश का अड्डा जमता था।

चालिहा उस दिन बोल पड़ा, "शादी-ब्याह हो गया, अब चौधुरी को कहां पाओगे ? अब तो साथ जमाने के लिए किसी और संगी की तलाश करो।"

यह सिद्ध करने के लिए कि वे स्त्रैण नहीं है, स्त्री के इशारे पर नाचनेवाले वे नहीं हैं, चौधुरी बिना बुलाए ही एक दिन उन लोगों के यहां ताश खेलने पहुंच गए। खेलते-खेलते उन्हें यह अनुभव करके बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि शादी हो जाने के बाद भी ब्रिज का खेल खेलने का उनका उत्साह तनिक भी कम नहीं हुआ है। उस दिन के बाद से तो वे फिर नियमित रूप से ताश खेलने जाने लगे। किसी गलती की वजह से ताश के खेल में जी.एच. फलदि का खेल वे ठीक तरह खेल नहीं सके ? इसी बात की चिंता सोए-सोए करते रहे। उनकी पत्नी ने उनके इस नशे के खिलाफ कभी कोई आपत्ति नहीं की। कम-से-कम मुंह खोलकर तो कभी कुछ नहीं कहा। परंतु चौधुरी तब कोई बच्चे तो नहीं रह गए थे, उन्हें खुद भी तो इस बात पर सोचना-समझना उचित था। नई-नई ब्याहकर लाई गई नवेली दुल्हन घर में यूं ही अकेले-अकेले भूत की तरह बैठी-बैठी सारा दिन प्रतीक्षा में बिता देती है, रात के दस-ग्यारह बजे तक उनकी बाट जोहती रहती है। ठीक वैसी ही आकुल-चित्त, स्थिर प्रतीक्षा जैसी कि शबरी ने (राम के लिए) की थी। चौधुरी की इस तरह की आदतों से हैरान-परेशान हो चौधुरी की पत्नी ने अपने आपको और भी समेट लिया। वे अपने भीतर ही जैसे समा गई। बाहरी दुनिया, बाहरी चीजों से कोई सरोकार ही नहीं रहा।

छोटी-छोटी संख्याओं का योगफल भी कभी-कभी इतना बड़ा हो जाता है कि उसका कोई ओर-छोर पकड़ में नहीं आता। गणित शास्त्र की अपसारी श्रेणी का ही एक उदाहरण लें। इसमें हर एक संख्या तो अपने आपमें एक सुनिश्चित सीमा में होती है, परंतु उनका योगफल सीमाहीन होता है। अत्यंत तुच्छ किस्म की बहुत छोटी-छोटी उपेक्षाएं, मामूली-मामूली बातों में किसी दूसरे व्यक्ति को बिलकुल ही महत्त्व न देना, लगातार उसकी उपेक्षा करते रहना, कभी-कभी बहुत बड़े बोझ के रूप में बदल जाता है, जो संभाले नहीं संभलता।

सभी कुछ सहते-सहते चल रहा था, जिस दिन चौधुरी की पत्नी के बड़े भाई साहब सांझ की बेला में उनसे मिलने के लिए आए, और बड़ी देर तक बाट जोहते-जोहते भी जब चौधुरी घर नहीं लौटे तो वे बिना मिले ही वापस लौट गए, उस दिन फिर बात अपनी अंतिम सीमा तक पहुंच गई। धरणी ने चालिहा के घर जाकर चौधुरी को सूचना दे दी थी। परंतु उस समय चौधुरी ताश के खेल में एल. एस. खेल की बोली बोल रहे थे। यह खेल पूरा हो गया तो फिर रबर का खेल

भी होना ही है। सो खेल पर से उठकर जल्दी पहुंचने के लिए बार-बार मन बनाने पर भी उस दिन घर लौटने में देरी हो ही गई। एल.एस. का खेल पूरा नहीं हो पाया। साथ खेलनेवाले पार्टनर ने आरोप लगाया कि उनकी गलती के कारण ही एल.एस. खेल में उनकी जीत नहीं हो पाई। इस बात को लेकर उनमें गरमागरम बहस भी हो गई, जिसकी वजह से कुछ और भी देरी हो गई। परिणाम यह हुआ कि जब वे अपने घर वापस लौटे तो उसके पहले ही उनके आदरणीय मेहमान जा चुके थे।

सच, दोष चौधुरी का ही था। अब आज वे इसे भली भांति अनुभव करते हैं। यह बात ठीक हो सकती है कि उन्होंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया होगा, किंतु चाहे अनचाहे ही सही वे हमेशा-हमेशा अपनी धर्मपत्नी की अवहेलना करते रहे। सोचते-सोचते उनके मुंह से एक भारी आह निकल पड़ी। फिर विचारा कि अब आज यह सब चिंता करने में कोई लाभ नहीं है। बहुत देर हो चुकी है। हर तरह की चिड़िया सुंदर घोंसला नहीं बना सकती। सही बात तो यह है कि आदर्श पति बनने की योग्यता चौधुरी में थी ही नहीं।

सोलह

प्रत्येक घर एक दुर्गम किला है। घर की तो बात ही क्या, वास्तविकता तो यह है कि हर एक मनुष्य ही एक अभेद्य दुर्ग है, ऐसा दुर्ग जिसके भीतर झांककर देख सकना भी कठिन है। अपने-अपने घर के भीतर कौन क्या कर रहा है, दूसरा कोई क्या जाने ? एक मनुष्य के मन के भीतर कैसी प्रचंड आंधी बह रही है, कैसा तूफान उमड़ रहा है—इसे बाहर से समझ पाना बहुत कठिन है।

दिवाकर दास उस समय अपने घर पर नहीं थे। चौधुरी बहुत देर से दरवाजे पर खड़े आवाज लगाए जा रहे थे। चौधुरी जब ज्यादा जोर-जोर से पुकारने लगे तो दास जी की पत्नी ने बड़े क्रोध और झुंझलाहट भरी आवाज में कहा—

"वे तो घर पर नहीं हैं।"

"कहां गए हैं ?"

"मैं भला क्या जानूं कि कहां मरने गए हैं ? मैं कुछ बता नहीं सकती।"

चौधुरी तो अवाक रह गए। दास जी की पत्नी तो कभी इस तरह की बात नहीं करतीं। इसके अलावा ऐसी भी कोई बात नहीं कि वे चौधुरी के सामने न आती हों। वे तो बड़ी सहजता से चौधुरी के सामने आती रही हैं। बातचीत भी करती रही हैं। इसके पहले जब कभी वे ऐसे समय में आए, जब दास महाशय घर पर नहीं रहे हों, तो वे प्रायः कहती रहीं, "आइए, जरा थोड़ी देर बैठिए। बाजार की ओर गए हैं, बस आते ही होंगे। बस अभी आ जाएंगे।" चौधुरी जब बैठ जाते तो

अपने आप ही एक प्याला चाय भी लाकर दे जातीं। थोड़ी-बहुत बातें भी करती थीं। परंतु उस दिन की उनकी बात और बात करने का ढंग देखकर चौधुरी तो ऐसे अवाक हो गए कि अब क्या करें, कुछ समझ ही नहीं सके। बहुत साहस करके उन्होंने फिर पूछा, "कब तक आएंगे ?"

इस पर और भी रूखा और छोटा सा जवाब मिला, "कह नहीं सकती।"

दास की पत्नी ने दरवाजा खोले बिना ही भीतर से ही उत्तर दिया। फिर तो चौधुरी धीरे-धीरे पांव बढाते बरामदे से नीचे उतर आए। बड़ी ही चिंता में पड़े हुए, आश्चर्य से भी भरे हुए। दास महाशय की पत्नी ने आज एकाएक उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया ? वे कुछ भी अंदाजा नहीं लगा सके।

दिवाकर दास की पत्नी को कभी-कभी एकाएक ही ऐसा हो जाता है। बहुत पहले घटित हो चुकी एक विशेष घटना की स्मृति में उभरते ही वे तत्काल अपने आप से नियंत्रण खो बैठती हैं। उनका आचार-व्यवहार असामान्य हो जाता है। वह विशेष स्मृति कब, किस परिस्थिति में उनके मन में उभर आएगी, इसका कोई निश्चित समय नहीं है। मगर जब भी ऐसा होता है घृणा, विद्वेष, बिना किसी मतलब के गुस्सा और बेकाबू आक्रोश से वे बेचैन हो उठती हैं। हालत ऐसी हो जाती है कि वे स्वयं अपने को घृणा करने लगती हैं, अपने माता-पिता से घृणा करने लगती हैं, सुव्रत से घृणा करने लगती हैं, यहां तक कि दिवाकर से भी घृणा करने लगती हैं। सच्ची बात तो यह है कि वह सारी दुनिया से घृणा करने लगती हैं। वे एक चिड़चिड़ाए पागल की तरह चाहने लगती हैं कि सारा ब्रह्मांड ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाए। बीता हुआ सारा समय, आनेवाला समय, धर्म-अधर्म, पाप और पुण्य, स्वर्ग और नरक, आज का समय, आज के अतिरिक्त का सारा समय सभी कुछ नष्ट होकर शून्य में विलीन हो जाए। किसी भी घटना का, किसी भी अनुभव की कोई भी स्मृति, कोई भी निशानी न रह जाए। बस, एक सूनापन ही स्थायी रूप से बना रहे।

आज से कितने दिनों पहले की घटना होगी वह ? बीच में जो इतने सारे वर्ष बीत गए क्षण भर में ही ऐसा लगता है कि वे बीते ही नहीं, बल्कि उनके पहले का जो उनके जीवन का वह विशेष समय था वही सदा-सर्वदा के लिए स्थिर बना हुआ है, उसी विशेष समय के घेरे में पड़ी हुई हैं। उस समय के उस विशेष दृश्य का एक-एक अंश फिर स्पष्ट होने लगता है। सर के बाईं ओर लगे हुए उस काठ के फ्रेम के धक्के की चोट स्पष्ट अनुभव करती हैं, जिसमें कपड़े को फंसाकर फूल काढ़ा जाता है।

बेटे-बेटियां हुए होते तो उनके बीच रहते हुए दिवाकर दास की पत्नी शायद वह सब भूल गई होतीं। चिंताएं उस तरह उन्हें चारों ओर से दबोचे हुए नहीं रहतीं। कभी-कभी वे अचानक ही इतनी आस्थावान हो जाती हैं कि तरह-तरह के पूजा-पाठ में चौबीसो घंटे व्यस्त रहती हैं। और फिर कभी अचानक ही वह सारा कुछ एकदम

से छोड़ देती हैं। निर्णय लेती हैं कि यह सब बिलकुल बेकार है, इनके करने से कोई लाभ नहीं है। सारा कुछ व्यर्थ का परिश्रम है।

दिवाकर दास तब पूछ बैठते हैं, "क्या हुआ जी ? देख रहा हूं कि आजकल सारा पूजा-पाठ करना तुमने बंद ही कर दिया। आखिर बात क्या हुई ?"

इतना सुनते ही दिवाकर दास की पत्नी सुरबाला देवी का माथा गरम हो उठता है। वे सोचती हैं कि दिवाकर दास स्वाभाविक रूप से उभरी जिज्ञासा की वजह से नहीं पूछ रहे हैं, बल्कि उन्हें चिढ़ाने के लिए व्यंग्य कर रहे हैं। सभी कुछ जानते हुए भी अनजान बने रहने का नाटक कर रहे हैं। देखने में भीगी बिल्ली की तरह दीन-हीन-लाचार दिखाई पड़ने से क्या ? वस्तुतः तो महा शैतान हैं।

नाना प्रकार की संभावनाओं की चिंता करते-करते सुरबाला देवी धैर्य खो बैठती हैं, बेहद विकल और बेचैन हो उठती है। सोचती हैं कि परलोक में तो सभी जान ही जाएंगे। अतः दिवाकर दास से अगर छिपाए भी रखें, तो क्या फायदा ? आखिर परलोक में तो सब कुछ जान ही जाएंगे। न बताने से भी जान जाएंगे। जरूर जान जाएंगे। अभी न जानने पर भी... । सुरबाला दिवाकर दास की आंखों से आंखें मिलाकर देख भी नहीं पाती हैं।

दिवाकर दास के मामा का लड़का समीर अपने जाने मे बड़ा भारी हस्तरेखा विशेषज्ञ था। एक समय तो उसे सभी का हाथ देखने का इतना शौक चर्राया था कि क्या बताएं। जिसको पाता उसी का हाथ देखने लगता। सभी का हाथ देखने की कोशिश में लगा फिरता था। वैसे इसके पीछे उसका कोई स्वार्थ नहीं था। एक प्रकार का पवित्र आमोद-प्रमोद का साधन भर था, एक हंसी के खेल जैसा। दिवाकर का हाथ देखकर बड़ी गंभीर मुद्रा में उनके अतीत और भविष्य की बातें बताता रहा कि अचानक ही उनकी पत्नी को देख समीर बोल पड़ा, "नई बहू ! जरा अपना हाथ तो इधर बढ़ाना, जरा उसे भी देख लूं।"

इतना सुनना था कि सुरबाला ने अपने दोनों हाथ बड़ी तेजी से समेटकर अपनी गोद में छिपा लिए। बोलीं, "कोई जरूरत नहीं। अपने भाई साहब का हाथ ही देखो। उसी को देख लेने से सब हो जाएगा।"

"अरे वाह ! ऐसी भी क्या बात है ? लाइए ! अपना बायां हाथ इस ओर बढ़ाइए तो। जरा उसे भी तो एक बार देखूं।"

दिवाकर ने खुद आगे बढ़कर सुरबाला का हाथ खींचकर समीर की ओर बढ़ाने की कोशिश की। परंतु सुरबाला अचानक ही उत्तेजित हो उठीं और दास की ओर धधकती आग जैसी तीखी नजरों से देखते हुए एक झटका मारकर खींच लिया। हाथ देखने का यह प्रकरण हंसी-मजाक से शुरू हुआ था, परंतु अचानक ही सब कुछ अत्यंत गंभीरता में बदल गया।

"मुझे अच्छा नहीं लगता। इस तरह का हंसी-मजाक मैं बिलकुल ही पसंद नहीं करती।" बड़ी ही क्रोध भरी तीखी आवाज में यह बात कहकर सुरबाला उस कमरे से बाहर चली गई। फिर तो सारा वातावरण ही तकलीफदेह हो उठा।

दुकान से घर आकर दिवाकर ने सूचना दी, "सुव्रत की आज मृत्यु हो गई, जी।"

मृत्यु का संवाद सुनकर भी सुरबाला ने कुछ भी नहीं कहा। सुव्रत सिंह को कैंसर की बीमारी हो गई थी। ई.आर. अस्पताल में भर्ती था। दिवाकर दास ने कुछ दिनों पहले ही बतलाया था, "सुव्रत ई.आर. कैंसर अस्पताल में भर्ती है। एक बार उसे देखकर कुशल-क्षेम पूछ आओ न।" तब भी सुरबाला ने कोई जवाब नहीं दिया था। फिर एक दिन और भी दिवाकर दास ने जोर देकर यही बात कही तब सुरबाला झुंझला पड़ी थी, "किसे, कहां, कौन-सा रोग हुआ है, इसकी सूचना मिलते ही हड़बड़ाते हुए एक ही सांस में दौड़े जाने से ही काम चलेगा क्या ?"

"अब इस बात पर इतना गुस्सा क्यों करती हो ? संबंध से तुम्हारा भाई लगता है। एक बार कुशल-क्षेम पूछने चले जाना ही उचित है।"

"किस तरह का संबंध है ? मान न मान, मैं तेरा मेहमान। मरीजों को देखते फिरने का मेरे पास समय नहीं है। इतना ही दर्द है, और जाना जरूरी समझते हो तो स्वयं ही वहां जाकर सारा-का-सारा दिन वहीं क्यों नहीं बैठे रहते ?"

उसी को लेकर भारी चिंता है। बीमारी की अवस्था में सुव्रत दिवाकर से जाने क्या कुछ कह जाए ? यही एक भारी परेशानी का कारण है। एक प्रकार का अभिशाप ही है, जीवंत अभिशाप।

उस दिन तो दिवाकर ने बड़ी गंभीरता से कहा, "अब तो एक बार तुम्हारा वहां जाना अत्यंत उचित है। सुव्रत की पत्नी को संभाल पाना बहुत ही कठिन हो गया है। उसके पास अपने निकट संबंध की और कोई स्त्री है भी नहीं।"

"तो मैं जाकर क्या कर लूंगी ? मैं तो कुछ भी नहीं कर सकती। मैं किसी को भी संभाल नहीं सकती।"

"इस पर क्रोध क्यों करती हो ? मैंने तो कोई अनुचित बात नहीं कही। आपत्ति-विपत्ति आ पड़ने पर मनुष्य का एक सामाजिक उत्तरदायित्व होता है।"

"तो तुम्हें तो मैंने मना किया नहीं। तुम ही क्यों नहीं चले जाते ? जाकर सामाजिक दायित्व का खूब पालन करो न।"

दिवाकर दास आश्चर्यचकित रह गए। दरअसल जिस तरह की बातें सुरबाला कर रही हैं, वह उनके स्वभाव से बिलकुल उलटे किस्म की हैं। यह जो नई-नई बस्ती शांतिनगर नाम से बनी है, इसमें किसी के घर भी, किसी को भी कोई बीमारी होती है, तो सूचना पाते ही सुरबाला अपने आप सहायता करने के लिए दौड़ी जाती हैं। घर में कोई अच्छी मछली आती है तो उसे अच्छी तरह रांध-पकाकर एक कटोरी

भर चौधुरी के घर भी भेज देती हैं। कहती हैं, बेचारे बूढ़े आदमी, अकेले-अकेले रहते हैं। कब क्या खाते हैं, क्या नहीं खाते अथवा कभी बिना कुछ खाए ही रह जाते हैं, क्या कोई ठीक ठिकाना है इसका ?

दिवाकर दास की भौंहें भी टेढ़ी हो आई ,"सुव्रत की बात उठते ही तुम इस तरह से क्रोध से झुंझला क्यों पड़ती हो ? जरा बतलाओ तो। तुम्हारे परिवार से उन लोगों का संबंध ठीक नहीं रह गया था ?"

सुरबाला अत्यंत असहाय हो गई। क्या उत्तर दें इसका ? क्या दास से सारा कुछ बतला दें ? सुव्रत की बात उठते ही वे क्यों बौखला उठती हैं ? इसका मूल कारण वे कह दे क्या ? अगर कह दें, तो क्या उसे सुनकर दिवाकर दास सहन कर पाएंगे ?

कितने वर्षो पहले की घटना है—पैंतीस या कि चालीस ? ठीक कितने वर्ष बीत गए हैं तब से, सुरबाला ठीक-ठीक अंदाजा नहीं लगा पातीं. भ्रम में चकराने लगती हैं। मात्र सोलह वर्ष की अवस्था थी उनकी, पूरी तरह से पवित्र, निष्पाप कुमारी कन्या थी। सुव्रत सुरबाला के रिश्ते की फूफी का लड़का था। पढ़ने में बड़ा ही तेज, बड़ा ही बुद्धिमान। बी.एस-सी. परीक्षा देकर कुछ दिनों के लिए सुरबाला के घर घूमने-फिरने, रिश्तेदारी करने आया हुआ था। उसके आने से घर के सभी लोग परम प्रसन्न थे। सचमुच बहुत अच्छा लडका है। पढ़ने-लिखने, स्वभाव-आचरण, चरित्र—सभी दृष्टि से बड़ा भला लड़का है। सोलह वर्षीया कुमारी किशोरी सुरबाला की दृष्टि में तो देवता जैसा ही। बड़ी ही विश्वासपूर्ण श्रद्धा-भक्ति थी उसके प्रति सुरबाला की।

परंतु वह सारी श्रद्धा-भक्ति, विश्वास, आदर का सारा-का-सारा भाव पानी भरकर लाए गए शीशे के गिलास के हाथ से छूटकर फर्श पर गिरकर हजारों खंडों में टूट जाने के साथ-साथ ही टूट-टूटकर तितर-बितर हो समाप्त हो गया।

उस दिन सुरबाला के पिता जी किसी काम से धुबरी गए हुए थे। उसके एक दिन पहले सुरबाला को इन्फ्लुएंजा जैसा ज्वर हो आया था। मां सुरबाला की छोटी बहन को अपने साथ ले पड़ोस के घर में विवाह का उत्सव था उसमें निमंत्रण का उपहार वगैरह लेकर जा रही थीं। जाते-जाते उन्होंने पूछा, "घर में अकेले रह सकोगी ? वैसे डर की कोई बात नहीं। सुव्रत तो बैठकखाने में है ही। तबीयत अगर ज्यादा खराब होने लगे तो उससे कहकर मुझे बुलवा लेना।" मां और छोटी बहन चली गई। सुरबाला घर में अकेली रह गई।

वैसे सुरबाला की तबीयत आज ठीक ही थी। पलंग पर बैठी-बैठी कपड़े पर फूल काढ़नेवाले लकड़ी के फ्रेम में कपड़े को फंसाकर वह फूल काढ़ने में निमग्न थी। थोड़ी देर बाद ही सुव्रत उसके कमरे में चला आया।

"आज तुम्हारा शरीर कैसा है ? ज्वर तो नहीं चढ़ा न ?"

"ज्वर बिलकुल ही नहीं है। आज शरीर ठीक ही है।"

"तो पीने के लिए एक गिलास पानी दे सकोगी ?"

"क्यों नहीं दे सकूंगी ? अभी लाती हूं।"

सुव्रत के लिए कोई काम करने का अवसर पाने पर उसे अच्छा ही लगता है। प्रकाश और अंधकार दोनों का मिला-जुला रूप ही था, अलग कर पाने की कोई सीमा रेखा नहीं थी। उस धुंधलके में उसके कमरे में प्रवेश करने के साथ-ही-साथ सुव्रत ने उसे अपनी भुजाओं में कस लिया, जिसकी वजह से उसके हाथ से पानी भरा शीशे का गिलास नीचे गिरकर झनझनाता हुआ हजारों टुकड़ों में बिखर गया। अचानक आ पड़े आघात से उसका सारा शरीर बेकाबू हो गया। उसका मन भी निश्चल हो गया: यह क्या हो गया अचानक ? इसका वह कुछ अंदाज नहीं लगा पाई। आंधी-तूफान जैसे सूखे पत्ते को उड़ा ले जाते हैं उसी तरह उसे ले जाकर उसने पलंग पर पटक दिया। काठ का वह बेल-बूटे काढ़ने का फ्रेम उसे सिर की बाई ओर बड़ी तेज़ी से टकराया था, बस इतना ही होश उसे रह पाया। उसके बाद की कोई बात याद नहीं। सुव्रत जब उस कमरे से निकलकर बाहर चला गया तो भी सुरबाला मारे आतक और शरीर में व्याप्त भयानक यंत्रणा के कारण बेहोशी की दशा में खाट पर ही पड़ी रही।

कोई भी कुछ जान नहीं पाया। मां जब लौटीं और उसे यूं मुर्दे की तरह खाट पर पड़े देखा तो उलटा उसे ही डांटने लगीं, "क्यों री ! फिर से ज्वर चढ़ आया क्या ? अगर नहीं, तो यूं क्यों पसरी पड़ी है, उठती क्यों नहीं ? मालूम होता है कि खट्टे बेर खा लिए होंगे। मना करने पर मानती तो है नहीं। बिलकुल नादान बच्चे जैसा तो तेरा स्वभाव है। मैं भला तुम्हारे पीछे-पीछे कहां तक लगी फिरूगी ? ठीक है, चद्दर से पूरा शरीर ढंककर सो रह। मैं जरा सुव्रत के लिए थोड़ा खाना पका दूं। अभी ही उसने कहा है कि आज ही शाम की गाड़ी से चला जाएगा।"

आज सूर्य डूबने की बेला में दिवाकर दास ने सूचना दी कि अस्पताल में सुव्रत की आज मृत्यु हो गई। सुनते ही सुरबाला के माथे में आग लग गई। सुव्रत मर गया तो क्या इसी से वह बीता हुआ अतीत और आनेवाला भविष्य सब कुछ धुल-पुछ कर साफ हो गया ? ठीक इसी समय उस आदमी ने फिर उत्पात मचा दिया। क्रोध और घृणा के मारे उन्होंने बड़े कर्कश स्वर में कहा था—

"वे तो घर पर नहीं हैं।"

"कहां गए हैं ?"

"मैं क्या जानूं, कहां मरने गए हैं ?"

दिवाकर दास के बरामदे से चौधुरी धीरे-धीरे नीचे उतर गए। चिंतित और आश्चर्यचकित।

सत्रह

शांतिनगर। नगर से बाहर स्थित यह स्थान सचमुच बहुत ही शांतिपूर्ण है। कोई हो-हल्ला, चिल्ल-पों नहीं। तरह-तरह की मोटरगाड़ियों का शोर नहीं, भीड़-भड़क्का नहीं। अत्यंत शांतिपूर्ण परिवेश है यहां का।

भूदेव चौधुरी अपने मकान के ओसारे में आराम से बैठे हुए हैं। अभी थोड़ी देर पहले मदन दास का बेटा जोन यहीं आकर खेल रहा था। जोन अभी कुल चार वर्ष का ही होगा। मगर बड़ा ही नटखट, अत्यंत चंचल लड़का है। तनिक सा मौका पाते ही घर से भागकर चौधुरी के मकान पर आ जाता है। उसे तरह-तरह के रंग-विरंगे चित्रोंवाली किताब चाहिए। धूम-धडक्का मार-पीटवाली बातों में बहुत रस लेता है। 'ढिसूम', 'ढिसूम' शब्द मुंह से निकालते हुए मुक्केबाजी की मुद्रा बना-बनाकर चौधुरी को मुक्केबाजी करना सिखाता है।

एक दिन की बात है कि चौधुरी अपने ओसारे में बैठे-बैठे सिर नीचा किए बड़े ध्यान से कोई एक पत्रिका पढ़ रहे थे। जोन वहां आ पहुंचा। उसने चौधुरी से संभवतः कुछ कहा भी, मगर चौधुरी तो पत्रिका में निमग्न थे, सो उन्होंने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। इससे जोन को संभवतः भारी गुस्सा आ गया। उसने चौधुरी की छाती के नीचे बड़े जोर से एक घूंसा जड़ दिया। एकाएक पड़ी मार से चौधुरी की आखों के आगे अंधेरा छा गया। उन्हें बड़ी तीव्र वेदना महसूस होने लगी। चोट लगने से उनके चेहरे का हुलिया ही बिगड गया। इसे देख जोन भी घबरा गया। तरह-तरह की दूसरी बातें कर-करके वह चौधुरी को फुसलाने की कोशिश करने लगा। "बाबा ! वो देखो वो पीली चिडिया वहां फुदक रही है। बुलाओ न उसे। बुलाओ। तुम्हारे बुलाने से वह इधर ही चली आएगी।"

दो खंजन चिड़िया फुलवारी में इस ओर से उस ओर चक्कर लगा रही थीं।

कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि जोन किसी भी तरह चौधुरी के यहां से अपने घर जाना ही नही चाहता। जब वह इस तरह से हठ पकड़ लेता है तो उसके घर काम करनेवाली खसिया जाति की आया लाख कोशिश करे, फिर भी उसकी क्या मजाल जो उसे यहां से ले जा सके ! तब उसके पिताजी या मां में से ही कोई आकर किसी-न-किसी तरह उसे बहला-फुसलाकर ले जाते हैं। ये दोनों युवक-युवतियां सचमुच ही बड़े अच्छे हैं। मदन और मीना। मदन दास बैंक का एक अधिकारी है। मीना भी एक महाविद्यालय में काम करती है। दोनों बड़े सभ्य और गंभीर प्रकृति के हैं। जरूरत पड़ने पर चौधुरी की हर तरह की सहायता करने को बराबर तैयार रहते हैं। मदन प्रायः ही आ-आकर पूछ जाया करता है—बैंक से रुपए निकालकर लाने हैं क्या ? बाजार से कुछ सरो-सामान लाने की जरूरत है क्या ? मीना भी बड़े अच्छे स्वभाव की युवती है। देखने में बड़ी सुंदर है। उसके बाल कंधे तक फैले

रहते हैं, देखने में बहुत भले लगते हैं। चलते-फिरते समय उसकी चाल में एक छंद दिखाई देता है। परंतु उस छंद में चपलता नहीं है, गंभीरता है। वह ज्यादा घूमती-फिरती भी नहीं। छुट्टियों के दिन सांझ की बेला में अपने ओसारे में बैठकर पुस्तकें पढती रहती है। अपने आपमें परिपूर्ण है। किसी के लफड़े में नहीं पड़ती। वैसे तो वह बहुत ही शांत और गंभीर प्रकृति की है, परंतु जब कभी हंस पड़ती है तो दिया जला देने जैसा उजियारा फैल जाता है।

चौधुरी ओसारे में बैठे हुए थे। चारों ओर नीरव शांति छाई हुई थी। उनके इस शांतिनगर में यद्यपि बहुत सारे मकान बन गए हैं, तब भी इस स्थान का ग्रामीण परिवेश अभी पूरी तरह लुप्त नहीं हुआ है। कभी-कभी अचानक ही कोयल कूक उठती है। तरह-तरह की रंग-बिरंगी चिड़ियाँ घूमती-फिरती रहती हैं। दो खंजन फुलवारी में इस ओर से उस ओर मंड़राते फिर रहे हैं।

यक-बा-यक एक भयानक कोलाहल उठता है। आदमियों का एक दल ढेर सारे जानवरों के एक झुंड को खदेड़ता हुआ चौधुरी के मकान के सामने की सड़क के रास्ते आगे बढ़ गया। उनमें से एक आदमी तो चौधुरी का पुराना परिचित भी है। भारी-भरकम, ऊंचे कद का, खूब हट्टा-कट्टा आदमी है वह। प्रायः प्रतिदिन सबेरे-सबेरे एक कांवर पर साग-सब्जियों का भार लिए वह इस ओर के बाशिंदों के घर-घर जाकर बेचता फिरता है। लौकी, कुम्हड़ा, तरकारी बनाने का कच्चा केला, ककड़ी वगैरह ग्रामीण इलाकों की साग-सब्जी लिए फिरता है। वह बूढ़ा मकान के सामने के मुख्य द्वार से ही चिल्ला-चिल्लाकर आवाज लगाता है, "तरकारी चाहिए, तरकारी ! साग-सब्जी खरीदेंगे क्या ?"

"कौन-सी सब्जी लाए हो जी ?"

"कोई नहीं।"

कभी-कभी चौधुरी भी पूछते हैं, "क्या-क्या है तेरी टोकरी में ?"

"कुछ भी तो नहीं। बस थोड़ा नेनुआ-तरोई भर ही है।"

"तुम तो जानते ही हो, नेनुआ-तरोई तो मैं खाता ही नहीं।"

"बूढ़े आदमी को नेनुआ-तरोई खाना ठीक भी नहीं।"

इस बुड्ढे की बातचीत सुनकर उसकी चीजों की बिक्री के संबंध में चौधुरी को बराबर संदेह ही रहता है। आज जो दल जानवरों को हांके लिए जा रहा है उसमें उस बूढ़े का चेहरा चौधुरी को साफ नज़र आया। बहुत ही उत्तेजित होकर वह हाथ-मुंह झटकारता जा रहा है।

उनके पीछे-पीछे आदमियों का एक और दल लाठी-बल्लम लिए हुए उनका पीछा करते-करते चौधुरी के मकान के ठीक सामने आकर पहलेवाले दल से भिड़ गया। दोनों दलों में भयानक मारपीट मच गई। ऊंचे कद के हट्टे-कट्टे उस बूढ़े आदमी की ओर चौधुरी की दृष्टि बड़ी उत्सुकता से लगी रही। उन्होंने देखा कि एक नाटे

कद के आदमी ने एक लंबी सी मोटी लाठी से उस बूढ़े के सिर पर सटासट मारना शुरू कर दिया। चूंकि कद में वह बहुत छोटा था, अतः जब-जब लाठी मारता था तब-तब ऊपर को कूदता था। चौधुरी ने उसकी ओर जब ध्यान से देखा तो पहचान गए, अरे यह तो नरोत्तम है। चौधुरी उसे भी बहुत अच्छी तरह पहचानते थे। वे वहीं से चिल्ला पड़े, "अरे ओ नरोत्तम ! नरोत्तम रे !" उन्होंने जब चिल्लाना बंद किया, तो देखा कि मीना भी तभी से जोर-जोर से चिल्ला रही है, "अरे मार डाला रे ! तरकारीवाले उस बूढ़े आदमी को मार डाला रे !"

दो गावों में इस बात को लेकर झगड़ा हुआ कि एक गांव के जानवर आकर दूसरे गांव के किसान की खेती का सारा धान चर जाते हैं। आज उस एक गांव के आदमियों से रहा नहीं गया। धान चरने आए गाय-गोरू सभी जानवरों को खदेड़ते हुए वे उन्हें मवेशीखाने में बंद करवा देने के लिए दौड़ा ले चले। फिर दूसरे गांव के लोग अपने-अपने जानवरों को छुड़ाने की गरज से पहले गांव के दल को रोकने आ पहुंचे, फलतः युद्ध आरंभ हो गया। महाभारत के विराट पर्व जैसी भयानक घटना घटित हो गई।

इसी बीच किसी ने पुलिस को सूचना दे दी। पुलिस की जीप को इधर आते देख दोनों ही दलों के आदमी डर के मारे जिसे जिधर मौका मिला उधर ही बड़े जोर से भाग गए। बस केवल वह बूढ़ा ही सडक पर गिरा पड़ा रह गया। पुलिस ने उसे उठाकर जीप में डाला और उसे थाने ले गई।

इतनी भयानक मारपीट हुई, इतना जोर का हो-हल्ला हुआ, परंतु उसकी ओर कोई ध्यान न देकर चौधुरी के घर काम करनेवाला वह लड़का योगेन चुपचाप फुलवारी के फूलों की गुड़ाई-निराई करता रहा। वहा का वातावरण फिर पूरी तरह शांत हो गया। खंजन पक्षियों के जोड़े में से एक फिर आकर फुलवारी में चहलकदमी करने लगा। उसका पीछा करते हुए वह दूसरा भी उड़ता-उड़ता वहीं आ पहुंचा। अब परिस्थिति पूरी तरह शांत थी। मारपीट का कोई असर ही नहीं था। बस सड़क पर खून के कुछ दाग भर रह गए थे। अगर कोई इस मारपीट के बारे में पहले से न जानता हो तो वह दाग खून का ही दाग है, यह पहचान पाना भी उसके लिए कठिन होगा।

वहां जब मार-पीट हो रही थी, और योगेन सिर झुकाए फूल की क्यारियां गोड़ रहा था, तो इससे यह समझना कि योगेन ने कुछ भी लक्ष्य नहीं किया, ठीक नहीं है। थोड़ी देर बाद एक बड़े जानकार अनुभवी आदमी की तरह वह एकाएक बोल पड़ा—

"इस सारे झगड़े-झंझट, मारपीट के मूल में यह धातू बूढ़ा ही है। वही इसका मूल कारण है।"

"कौन धातू बूढ़ा ?"

"अरे वही तरकारी बेचनेवाला धातू बूढ़ा। महा बज्जात, हरामी है। बराबर झगडा करने के ही फिराक में रहता है। किसी से भी उसकी नहीं पटती। अच्छा व्यवहार तो किसी से करता ही नहीं, सभी से हर समय टेढ़ा-टेढ़ा ही रहता है। यहां तक कि उसकी अपनी औरत और बेटी भी उसके साथ नहीं रहतीं। सो यह बूढा अकेले-अकेले ही रहता है।"

"यह सब तुमने कैसे जाना ?"

अनावश्यक प्रश्न है यह। अरे योगेन तो सब कुछ जानता है। आसपास कहां क्या हो रहा है, हर एक चीज की उसे बराबर खबर रहती है। सारा समाचार तो उसके लिए हमेशा सुलभ रहता है, जैसे उसकी हथेली के आईने में सभी कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देता हो। सो जानवरों द्वारा धान चर जाने से लेकर इस झगडे और मारपीट के आरंभ होने तक सारी बातें उसी ने विस्तार से बतलाई।

नरोत्तम पड़ोस के गांव का ही छोकरा है। निवारण कुमार के घर पर चौधुरी की उससे मुलाकात हुई थी। मुलाकात क्या हुई, चौधुरी एक दिन जब निवारण कुमार के घर गए तो उस समय निवारण कुमार साहब उसे बडी ही अश्लील-अश्लील गालियां दिए जा रहे थे।

शाम के वक्त जब कुमार साहब के घर से चौधुरी अकेले-अकेले लौट रहे थे तो रास्ते में अचानक ही चौंककर छलांग लगा बैठे। सुनसान रास्ते में अचानक ही कान के बिलकुल पास एक अपरिचित आवाज सुन उन्हें तो जैसे काठ मार गया।

"हुजूर !"

"कौन है जी ? क्या बात है। तुझे किस चीज की जरूरत है ?"

"आप के घर पर करने के लिए कोई काम है क्या ?"

"कैसा काम ?"

"यही झाड़-झंखाड़ साफ करने, क्यारियां गोडने, सामने का मैदान समतल करने वगैरह का।"

"हां ! हमारी फुलवारी में गुड़ाई करने की कुछ जरूरत है।"

"तब तो ठीक है, साहब ! कल बिलकुल सबेरे ही चला आऊंगा। आपके घर कुदाल है कि नहीं ? या फिर मैं ही साथ लिए आऊं ?"

"है तो शायद।"

"तब तो कोई बात ही नहीं। उसी से काम हो जाएगा। अच्छा, बात यह है कि आप के पास दो रुपए होंगे न। जरा अभी दे दें। फिर मैं जो दैनिक मजदूरी करूंगा, उसकी मजदूरी में से काट लीजिएगा।"

पैसे लेकर जो गया, तो उसके दूसरे दिन तो आया ही नहीं, आगे भी कई दिनों तक नरोत्तम का कोई पता-ठिकाना नहीं मिला। वैसे फिर वह आने लगा। अभी भी बीच-बीच में टपक पड़ता है। जब भी आता है चौधुरी से कुछ उधार मांग ले

जाने के फिराक मे ही आता है। "कही भी कोई काम नहीं मिला, ढूंढते-ढूंढते थक गया, पर कहीं कोई कमाई नहीं हो सकी। अब तो घर में एक मुट्ठी चावल भी नहीं जो भात बनाकर ही खा सके। बस पांच रुपए की जरूरत है। कुछ दिन बाद ही लौटा दूगा। या फिर चौधुरी के घर पर मजदूरी खटकर ही सब चुकता कर देगा।" यह सारी विनती और प्रतिज्ञा एकदम झूठी है, बकवास है। यह बात नरोत्तम अच्छी तरह जानता है। चौधुरी भी जानते हैं कि यह बिल्कुल झूठ है। फिर भी नियम रक्षा के लिए कहना-सुनना पडता है।

नरोत्तम थोड़े-थोड़े दिनों बाद समय-समय पर आता रहता है। हमेशा बस एक ही शिकायत—कही कोई काम-काज नही मिला। घर में खाने को एक दाना नहीं। जब तक उसे कुछ दे न दो, जाता ही नहीं। बरामदे के नीचे एक पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रहता है। एक बार बड़े कठोर स्वर मे मना कर दिया कि किसी भी तरह आज कुछ नही देंगे। मना करके अंदर चले गए। फिर दो घंटे बाद जो बाहर आए तो देखते हैं कि नरोत्तम ठीक उसी मुद्रा में उसी जगह अभी भी खड़ा है। नाटा और हट्टा-कट्टा शरीर, चेहरा भी चिपटा हुआ, आंखों की दृष्टि भी जाने कैसी दूसरे किस्म की। देखने मे डर भी लग जाता है। चौधुरी उसे विदा करने के लिए दो-एक रुपए दे ही देते है। कितना रुपया चाहिए, कितना रुपया दिया, इस सबका जोड़-हिसाब नरोत्तम नही करता। जितना पा जाता है, उतने से ही परम संतुष्ट हो जाता है।

दो सप्ताह बाद एक दिन बड़े सवेरे नरोत्तम फिर उपस्थित हुआ। आज तो पाच रुपए बिना काम चलेगा ही नहीं। दो दिन बाद ही घर आकर लौटा जाएगा। अभी वह अपना तकाजा किए ही जा रहा था कि कांवर पर साग-सब्जियों का बोझा लिए धातू बूढ़ा भी वहीं आ पहुंचा। बूढ़े के कपाल पर अभी भी बैंडेज बंधा हुआ है। चौधुरी तो किसी अप्रिय घटना के घटने की आशंका से घबरा गए। लगता है, उनके घर पर ही आज इन दोनों में भयानक मारपीट हो जाएगी। नरोत्तम के शरीर में पर्याप्त बल है तो बूढ़े के हाथ में फटे बांस का भारी फल्टा है। चौधुरी ने इशारे से नरोत्तम को वहां से चले जाने को कहा। उधर दूसरी ओर बूढ़े को अपनी बातों में फंसाए रखने की कोशिश की।

"कहो जी ! कौन-कौन सी तरकारी है आज तेरे पास ?"

"कुछ भी तो नहीं है। कुछ बैगन हैं जिनमें कीड़े लग गए हैं।"

"अच्छा तो अब तो तुम स्वस्थ हो गए हो न ? शरीर ठीक लग रहा है न ?"

"ठीक क्या हुआ ? घाव अभी भी सूखा नहीं है। मगर अगर घर पर ही बैठा-पड़ा रहूं, तो खिलाएगा कौन ?"

नरोत्तम की ओर देखते हुए बूढ़े ने बड़े शांत और संयत स्वर में कहा, "बड़ी बुरी तरह मारा था तुमने जी।"

"और करता ही क्या ? तुम इस झगड़े के बीच आए ही क्यों ? बूढ़े आदमी हो। इस तरह के वाहियात कामों में क्यों पड़ते हो ? मारामारी में जब क्रोध माथे पर चढ़ जाता है तो कौन जवान है, कौन बूढ़ा है—इस सबका होश रहता है क्या ? अब तुम्हीं कहो, ऐसे में क्या करोगे ? खैर छोड़ो, जो हुआ, सो हुआ। भाग्य अच्छा था कि निवारण चाचा पुलिस के पंजे से छुड़ा लाए। अच्छा, चाचा एक बीड़ी पिओगे ?"

"हां ! ला दे।"

नरोत्तम और धातू बूढ़ा—इन दोनों में से किसी एक के पास भी खेती करने लायक जरा सी भी जमीन नहीं है, और न गाय-बैल या कोई दूसरा पशु ही है।

अठारह

जब किसी नई जगह बस्ती बसानी होती है तो स्वाभाविक रूप से प्रायः एक अंचल के आदमी वहां इकट्ठे होते हैं। शांतिनगर की इस नई बस्ती में भी गोवालपाडा अंचल के कई बाशिंदों ने अपने मकान बनवाए हैं। उनमें से अधिकतर लोग ऐसे हैं जो अपनी-अपनी नौकरियों से सेवानिवृत्त हो गए हैं। सेवा से अवकाश पाए हुए किसी को चार वर्ष हो चुके हैं, तो किसी को पांच वर्ष। किसी-किसी को दस वर्ष भी बीत गए हैं। धर्माधिकारी जी एक ऐसे आदमी हैं कि उन्हें सेवानिवृत्त हुए एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ। इस तरह अन्य बाशिंदों की दृष्टि में वे इस बस्ती में नए हैं। अधिकारी जी अभयापुरी के रहनेवाले हैं। पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में ओवरसिअर के पद पर काम करते थे। तरक्की करते-करते एस.डी.ओ. के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। धन-संपत्ति काफी है। परंतु इस हिसाब से रहते हैं कि बाहर से देखने पर कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता। बहुत ज्यादा ऊपरी आमदनी होती रही है, जिससे अपार संपत्ति बटोरी तो है मगर खर्च की मात्रा बढ़ाई नहीं है। ज्यादा ठाठ-बाट से रहने, हाथ खोलकर पैसा खर्च करने की प्रवृत्ति से बिलकुल अलग रहते हैं। बराबर ऐसी ही कोशिश में रहते हैं जिससे लोग उनकी धन-संपत्ति का कोई भी अनुमान न लगा पाएं।

पूरे शांतिनगर में वे एक हास्य रस के परम प्रेमी के रूप में मशहूर हैं। अपनी इस प्रसिद्धि को बरकरार रखने, अपने नाम-यश को और भी बढ़ाने के चक्कर में कभी-कभी वे ऐसे प्रसंगों में भी हंसी-मजाक की बात कर बैठते हैं, जहां कि हास्य रस की बात कतई नहीं कहनी चाहिए और परिणामस्वरूप बड़ी ही अप्रीतिकर स्थिति बना देते हैं।

शांतिनगर में एक नामघर (वैष्णव भक्तों का सामूहिक उपासना गृह) का निर्माण किया जाना चाहिए, इसके लिए सदानंद हजारिका जी-जान से लग गए हैं। इसी उपलक्ष्य में गजानन राय के घर पर वरिष्ठ लोगों की एक सभा आयोजित की गई थी, जो विचार-विमर्श कर उपयुक्त निर्णय ले। काफी देर तक विचार-विमर्श करने के बाद निर्णय किया गया कि एक ऐसी समिति बना दी जाए जिसे नामघर के निर्माण का उत्तरदायित्व सौंपा जाए। उस समिति के सभापति के रूप में जब गजानन राय का नाम प्रस्तावित हुआ, तो उन्होंने आपत्ति की–

"देखिए सज्जनो ! मैं बूढ़ा लाचार आदमी हूं। मुझे छोड़ दें। क्षमा करें। हां, अधिकारी जी को इसका सभापति बनाएं। वे अभी बालक हैं। वे इसका सारा उत्तरदायित्व संभाल सकेंगे।"

अधिकारी ने देखा कि राय साहब तो मजाक कर रहे हैं। फिर क्या था ! उन्हें भी हंसी-मजाक करने की धुन सवार हो गई।

उसी समय नवयुवक अध्यापक जितेंद्र तामूली बोले, "कृपया मुझे जाने दें। मेरी सासू जी की तबीयत बहुत खराब हो गई है। आज दोपहर को ही पत्र से सूचना मिली है। मैं अपनी पत्नी को साथ लेकर आज ही रात की रेलगाड़ी से जाऊंगा।"

धर्म अधिकारी को मौका मिल गया, फिर वे भला कैसे चूकते ? तुरंत ही बोल पड़े, "किस विशेष सासू जी की तबीयत खराब है जी ?"

उपस्थित सारे-के-सारे लोगो को बहुत बुरा लगा। यद्यपि किसी ने खुलकर कुछ कहा नहीं, मौन साधे रहे। सभी जानते हैं कि जितेंद्र तामूली के स्वसुर धनंजय बरुआ की एक रखैल स्त्री भी है। अपनी कचहरी के काम से निवृत्त होकर वे पहले सीधे अपनी उस रखैल के घर ही जाते हैं। फिर लगभग आधी रात वहीं गुजारकर रात बारह बजे अपने घर पहुंचते हैं। इसमें अब कोई छिपाने की बात भी नहीं है। सभी लोग जानते हैं।

रतिकांत कलिता कसमसा रहे थे। वे भी उठ खड़े हुए। "सज्जनो, कृपया मुझे जाने दें। मेरी नई गाय को बच्चा होने का समय हो गया है। उसके आसपास न रहने से भारी परेशानी हो सकती है।"

भूदेव चौधुरी अनमने भाव से बैठे हुए थे। एकाएक वे भी जाने के लिए उठ खड़े हुए और अन्यमनस्क भाव से उनके मुंह से निकल पड़ा, "गॉड वाज हियर, बट ही लेफ्ट अर्ली।" (ईश्वर यहीं थे, मगर जल्दी ही चले गए)।

सदानंद हजारिका खिसियाकर बोले, "क्या कहा ?"

"कुछ नहीं। एक पुस्तक का नाम है। लेखक अर्विन शा की पुस्तक है वह।"

"पुस्तक का नाम लेने की क्या जरूरत पड़ गई ?"

"ऐसे ही। उस पुस्तक का नाम मन में याद आया कि अपने आप ही मुह से निकल गया।"

चौधुरी जब चले गए, तो उनकी अनुपस्थिति में दो-एक लोग परम निश्चिंत भाव से उनके विरुद्ध तरह-तरह की टिप्पणियां करने लगे।

सदानंद हजारिका ने कहा, "अरे और कुछ नहीं, बस आत्मप्रदर्शन का नखरा है। लोगों के सामने अपने आप को बढा-चढ़ाकर दिखाने की मनोवृत्ति है उनकी। मैं तो शुरू से ही लक्ष्य करता आ रहा हूं...।"

सदानंद की बात पूरी होने के पहले ही दिवाकर दास ने उसका विरोध किया, "नहीं भाई ! ऐसी बात नही है। उन्हे जरूर कुछ हो गया है, कोई ऐसा कष्ट जो समझ में नहीं आ रहा। इधर कुछ दिनों से तो वे घर से बाहर निकलते ही नही। ऐसा तो नही कि शरीर में कोई रोग हो गया हो ?"

दास महाशय ठीक ही कह रहे हैं। कुछ दिनों से उन्हें जरूर कुछ हो गया है। हमेशा ही वे जैसे किसी गभीर चिंता में डूबे हुए रहते हैं। हर समय अनमने से, क्षण-प्रतिक्षण थके-हारे से।

आजकल भूदेव चौधुरी को बीते दिनों की घटनाएं बड़ी जोर से याद आती रहती हैं। याद आनेवाली घटनाओं मे जो स्पष्ट दिखाई पड़ती है, उनकी अपेक्षा उनके वे अश अधिक अर्थपूर्ण होते है जो प्रत्यक्ष दिखाई नही देते। चौधुरी उन घटनाओं को तर्क के धरातल पर विश्लेषण कर-करके ठीक से निरखना-परखना चाहते हैं। कुछ के संबंध में लगता है कि उनकी असलियत उन्हे पकड़ में आ गई है, परंतु सही-सही रूप में उन्हें पकड नहीं पाते हैं।

वास्तविकता तो यह है कि इस पूरे जीवन भर उन्हें मधुपुर के विद्यालय में ही नौकरी करते सारी उम्र बिता देनी थी। आरंभ में वे वही काम कर भी रहे थे। बी.ए. उत्तीर्ण होते-होते घर की दशा ऐसी हो गई थी कि किसी भी तरह दिन गुजारना मुश्किल हो उठा था। सारा घर-परिवार नाना तरह की विपत्तियो से बेहाल हो गया था। ऐसी दशा में आगे पढ़ने की बात ही कहां ? मधुपुर के विद्यालय मे जो नौकरी मिल गई, तो मानो इस महाविपत्ति से रक्षा का एक सहारा ही मिल गया। उन्होंने इसे ही अपना भाग्य मान लिया था, और इसी में संतुष्ट हो मन लगाकर काम करने लगे थे। इस तरह चार वर्ष उस विद्यालय में काम करते-करते गुजर गए। इससे ऊंचा सपना वे देखते ही नहीं थे। उस तरह की ऊंची-ऊंची अभिलाषाएं करना, जिनके पूरा हो सकने की कभी कोई संभावना नहीं, दरअसल एक पागलपन का ही लक्षण है। बी.ए. में ही हालत ऐसी हो गई थी कि जब परीक्षा की फीस जमा करने की बाध्यता हुई तो कोई और चारा न होने के कारण उन्हें अपना वह स्वर्ण पदक बेचना पड़ा था, जो हाई स्कूल की परीक्षा में बहुत उत्कृष्ट श्रेणी पाने पर मिला था। हां,

उन्होंने यह सावधानी जरूर बरती थी कि कोई भी इस बात को आज तक जान नहीं पाया, यहां तक कि उनकी मां भी यह बात नहीं जान सकीं।

वीरेंद्र दत्त, भूदेव चौधुरी के पाहुने होते हैं, यानी कि बहनोई। चौधुरी को एम. ए. की पढाई करवाने में उन्होंने ही सहायता की थी। चौधुरी से एम.ए. की पढ़ाई करने को वे जब भी कहते, चौधुरी टाल जाते। परंतु उस बार उन्होंने बहुत जोर देकर उन पर दबाव डाला। "देखो जी ! इस तरह रहने से तो तुम्हारा और कोई काम चलेगा नहीं। इस दौरान ही बहुत देर हो चुकी है। अब अगर और देर की तो फिर तो तुम कुछ कर ही नहीं सकोगे।"

चौधुरी बस मामूली सी हंसी हंसकर रह गए। बोले कुछ नहीं।

"क्यों जी ! कुछ बोलते क्यों नहीं ?"

"क्या बोलूं ? मेरे घर की अवस्था क्या आप जानते नहीं ?"

"क्यों नहीं जानूंगा ? जानता हूं, इसी कारण तो कह रहा हूं। इस मामूली सी पाठशाला में काम करके तुम अपने घर का काम-काज चला सकोगे ? परिवार के सभी लोगों को ऊंचा उठा सकोगे ?"

चौधुरी फिर कुछ नहीं बोले। चुप्पी साधे रहे।

"क्यों जी, सांप सूंघ गया क्या ? बोलते क्यों नहीं ?"

"क्या बोलूं ?"

"मेरी बात मानो। जाकर पढ़ाई पूरी करो। मैं जाने कबसे कितनी-कितनी बार कहता आ रहा हूं कि तुम्हारी आगे की पढ़ाई में जो कुछ भी खर्चा-पानी आएगा, मैं दूंगा। तुम्हें इस तरह लेने मे लज्जा महसूस होती है तो पढ़-लिखकर नौकरी करके, तू हिसाब करके वह सारा खर्च मुझे वापस कर देना।"

"अब मेरा खर्च उठा लेने भर से ही तो काम नहीं चलेगा। मेरे सहारे पूरा घर चल रहा है। नौकरी छोड़ दू तो घर कैसे चलेगा ?"

"देखो ! मैं थोड़ी-बहुत सहायता घर पर भी देता रहूंगा। दो वर्ष की ही तो बात है, पलक झपकते ही बीत जाएगा। फिर तुम वह सब भी जोड़कर, पूरा हिसाब कर मुझे लौटा देना।"

भूदेव चौधुरी ने वीरेंद्र दत्त का सारा खर्चा पाई-पाई चुका दिया है। परंतु यह ऋण तो ऐसा नहीं कि रुपए वापस लौटा देने भर से ही चुकता हो जाए, आदमी इतने से ही उऋण हो जाए, ऐसा तो संभव नहीं। हजार गुना रुपया लौटाने पर भी उऋण होना संभव नहीं। वीरेंद्र दत्त ने जो ऋण दिया था, उसकी मापजोख रुपयों की गणना में आंकी नहीं जा सकती। चौधुरी ने अपने जीवन में जो कोई भी उन्नति की है, वह उस डिग्री के प्राप्त हो जाने के आधार पर ही तो की है—जो डिग्री वे वीरेंद्र दत्त के आग्रह से प्राप्त कर सके थे।

उतने पर भी चौधुरी का आगे पढ़ पाना संभव नहीं होता। महाविद्यालय में नाम लिखाने का समय काफी पहले बीत गया था, उन्हें पहुंचने में बहुत देर हो गई थी। जैसे-तैसे कक्षा में प्रवेश तो मिल गया, परंतु विश्वविद्यालय के किसी छात्रावास में रहने के लिए जगह नहीं मिल पाई। ऐसी हालत में कलकत्ता आमहार्स्ट स्ट्रीट के एक होटल में ठहरे। होटल में ठहरकर पढ़ने-लिखने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। पढ़ने-लिखने का वहां कोई माहौल होता ही नहीं, इसके अलावा खर्चा भी बहुत अधिक होता है जो संभाले न संभले। एक दिन तो होटल के मालिक ने ही व्यंग्य करते हुए कहा, "प्रत्येक महीने में दो सौ, अढाई सौ रुपए खर्च करके तुम एम.ए. कक्षा की पढ़ाई करोगे। तुम्हारे गांव घर पर बहुत बड़ी जमींदारी है क्या ? और इतनी बड़ी जमींदारी है, तो फिर एम.ए. पढ़ने की जरूरत ही क्या है ? इससे क्या तुम्हारी देह में दो और हाथ पैदा हो जाएंगे ?"

उस होटल के पास ही हैरीसन रोड के एक प्राइवेट लॉज में चौधुरी की जन्मभूमि के इलाके की तरफ के कई छात्र रह रहे थे। उन्हीं में थे अघोर विश्वास और सत्येन सरकार। वे दोनों जोर देकर चौधुरी को अपने यहा लिवा ले गए। अघोर और सत्येन तो उसके बचपन के पाठशाला के दिनों के साथी हैं। वे दोनों और उनके कई साथी कई वर्षों से कलकत्ता में रह रहे हैं। परंतु केवल नाम भर के लिए ही बी.ए., बी. काम. इत्यादि कक्षाओं में पढ़ रहे हैं। उस समय तक उनमें से कोई भी अपनी कक्षा की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सका था।

हैरीसन रोड के उस प्राइवेट लॉज में रहते हुए भी चौधुरी की पढ़ाई-लिखाई नहीं ही हो सकती थी। वह तो जैसे-तैसे मिशनरी छात्रावास में जगह मिल गई थी और वहां रहकर पढ़ने का सुयोग मिल गया था कि वे अच्छी श्रेणी में एम.ए. उत्तीर्ण कर सके।

अपने घर के ओसारे में अकेले बैठे-बैठे चौधुरी ये ही सब बातें उधेड़ते-बुनते रहते थे। उन्होंने महसूस किया कि जीवन में अनगिनत मनुष्यों से बिना मांगे ही, और वह भी जिसकी आशा भी नहीं करते थे, वैसी ढेर सारी सहायता और सहानुभूति उन्हें मिलती रही है, इसी कारण वे अपने इस ऊंचे मुकाम पर पहुंच सके। परंतु यह बात हर समय याद नहीं रह पाती। वस्तुतः सभी प्रकार की स्मृतियां मनुष्य के लिए आनंददायिनी नहीं होतीं। अपनी निजी मूल्यवत्ता-महत्ता उससे घट जाती है।

कुछ स्मृतियों को तो कोशिश कर-करके चौधुरी भुला देना चाहते हैं। आकाश में टंगे पतले तार के ऊपर चढ़कर प्रत्येक आदमी चल नहीं सकता। वे भी नहीं चल सके थे। वे अच्छी तरह मानते-जानते है कि वे कोई ईसा मसीह नहीं हैं, भगवान बुद्ध भी नहीं हैं। वे तो अत्यंत साधारण मनुष्य हैं। अतः साधारण मनुष्य में पाई जानेवाली सारी दुर्बलताएं उनमें भी रही हैं। वे भली-भांति महसूस करते हैं कि उन्होंने

इस तरह के बहुत सारे काम किए हैं जो नहीं करने चाहिए थे, जिनकी वजह से वे अपने आपके सामने ही लज्जित हैं। परंतु साथ-ही-साथ उन्होंने ऐसे काम भी किए हैं जिनके करने से उनका माथा ऊंचा हुआ है, उसके लिए उन्हें गर्व होता है।

निपट एकांत में अकेले बैठे-बैठे चौधुरी पुरानी बातों को याद करते हैं, उनकी अच्छाई-बुराई का मनन-विश्लेषण करते रहते हैं। जब उनकी याद करना शुरू करते हैं तो आरंभ में तो उनका कोई आकार-प्रकार, चेहरा-मोहरा साफ दिखाई देता नहीं। बस निराधार शून्य में (आकाश में) एक गोल-मटोल पिंड जैसा कुछ झिलमिलाता है। फिर क्रमशः पिंड नजदीक आता जाता है, उसका आकार-प्रकार स्पष्ट होते-होते धीरे-धीरे अपनी-अपनी शक्लों में अलग-अलग स्पष्ट दिखाई देने लगता है। फिर तो अनगिनत प्रकार की चिंताएं चारों ओर से चौधुरी को दबोच लेती हैं।

निश्चित रूप से यह सही है कि वे एक साधारण मनुष्य हैं। भ्रष्ट किस्म के पाखंडी नहीं है, और उत्तम कोटि के देवता भी नहीं हैं। अपने व्यक्तिगत सत्ता के साथ जो वे हैं, वे वही हैं। जैसे दस आम लोग हैं, ठीक वैसे ही वे भी हैं, परंतु अपनी निजी सत्ता लिए हुए उनसे अलग प्रकार के भी हैं। वे अपनी माता, अपने पिता के पुत्र हैं। और अपने बच्चों के पिता हैं, अपनी पत्नी के पति हैं। समाज में ऐसे अनेक लोग हैं, जिनके वे हितैषी मित्र हैं, तो ऐसे भी कुछ लोग हैं जो उन्हें शत्रु मानते हैं। अपनी विशुद्ध सत्ता, अपने असली रूप को पहचानने की कोशिश करते हैं तो संशय में पड़ जाते हैं, कुछ भी निर्णय नहीं कर पाते। वे स्वयं भी बतला नहीं सकते कि उनका वास्तविक रूप कौन सा है। जीवन में उनकी असली भूमिका क्या है।

चौधुरी मन-ही-मन सोचने लगे, 'मैं मनुष्यों की भीड़ में रहना पसंद करता हूं। सामाजिक जीवन में मैं बहुत ऊंचे स्तर पर भी नहीं हूं, और बहुत निचली श्रेणी में भी नहीं। बीच की जो लंबी-चौड़ी फैली हुई बराबर की जगह है उसी में जो अनगिनत मनुष्य हैं, उन्हीं में मैं भी धक्का-मुक्की करते हुए घुसा हुआ खड़ा हूं। इस ठेलमपेल में अंधे की तरह बेवजह ही किसी को धक्के मारता रहा हूं, तो उन्हीं में से कुछ को बड़े स्नेह से छाती से चिपकाता रहा हूं। अपने संगी-साथियों के घेरे में पड़कर कभी चिंता-फिक्र छोड़कर प्रमत्त हो नाचता हूं, गाता हूं, तो कभी आकुल-व्याकुल होकर गला फाड़-फाड़कर चीखता-चिल्लाता हुआ रोता हूं।

ऐसी स्थिति में मैं निश्चिंत हूं। चिंता करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। अपनी ओर से कोई सिद्धांत स्थिर करने, कोई निर्णय लेने की जरूरत ही नहीं है। मेरे चारों ओर आदमियों की जो भीड़ इकट्ठी है, उन्हीं अनगिनत आदमियों में से मैं भी एक हूं। इन तमाम लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति मेरा ही प्रतिबिंब है। किसी दूसरे ग्रह से अगर कोई प्राणी हमें देखेगा तो हम सबको भेड़ों का एक झुंड ही समझ

बैठेगा, ऐसी भेड़ें जो हड़बड़ी में दलबंद होकर आत्महत्या करने के लिए समुद्र में जा गिरने के लिए आपस में धक्का-मुक्की कर रही हों। उससे भिन्न किसी और ग्रह का कोई प्राणी उतरकर हम सबको लक्ष्य करे तो समझेगा कि अरे ये तो ध्रुव क्षेत्र निवासी पेंगुइन पंछी हैं, जो संन्यासियों की तरह परम ध्यानमग्न हो शांत चित्त स्थिर खड़े हैं। किसी अन्य ग्रह का महाकुशल व्यक्ति अगर यहां आए और हमारे यहां के मनुष्यों के शवों को टुकड़े-टुकड़े काट-काटकर तन्न-तन्नकर देखे तो भी हमारे यहां के मनुष्यों में एक-दूसरे से किसी भी भिन्नता का नामोनिशान नहीं तलाश पाएगा। सभी की देह में एक ही तरह का खून है, रक्त के प्रवाह को पूरे शरीर में ले जानेवाली एक जैसी नसें हैं, एक समान हड्डियां हैं और बिलकुल एक जैसी मांस-मज्जा है सभी में। सभी कुछ सभी में एक जैसा ही है, फिर भी व्यक्ति के रूप में मैं सबसे भिन्न, सबसे स्वतंत्र हूं। मैं, मैं ही हूं। मैं हूं भूदेव चौधुरी। मैं गजानन राय नहीं हूं। दिवाकर दास भी नहीं हूं और न सदानंद हजारिका ही हूं।

अतः सारी बातें झूठी हैं। सचाई तो यह है कि भीड़ के बीच रहते हुए भी मैं एकाकी हूं। मैं, मैं ही हूं। प्रत्येक मनुष्य औरों से बिल्कुल अलग है। पूरी तरह से अकेला, संगी-साथी विहीन। एक मनुष्य के मुख-मंडल का क्षेत्रफल कितना है ? कुछ वर्ग इंच भर ही तो ! जिन दो व्यक्तियों के आंखों के आकार-प्रकार में नाम-मात्र की भिन्नता है, उनमें भी सर्वांश में काफी भिन्नता है। इसी तरह इस धरती के करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों में से प्रत्येक देखने में एक दूसरे से अलग दिखाई पड़ता है।

मानसिक रूप से प्रत्येक मनुष्य निश्चय ही अलग प्रकार है। साधु तो सभी साधु हैं, परंतु प्रत्येक साधु अपने विशेष रूप का ही, अलग प्रकार का साधु होता है। पाखंडियों में भी हर एक पाखंडी अपने आपमें एक खास किस्म का ही पाखंडी होता है। वस्तुतः कोई भी दो मनुष्य अत्यंत सीमित क्षेत्र में ही एक समान होते हैं। जैसे कि दो कान, एक नाक, दो आंखें रखनेवाली लड़कियों में से ही कोई एक मेरी पत्नी है। उसके साथ एक ही बिस्तरे पर सटकर सो सकता हूं। परंतु वैसी किसी और स्त्री के साथ ऐसा नहीं कर सकता।

मैं एक अत्यंत साधारण मनुष्य हूं। ऊपरी श्रेणी का नहीं, और नीचे की श्रेणी का भी नहीं। विद्यार्थी के हिसाब से मध्यम श्रेणी का विद्यार्थी हूं। छात्र जीवन में फुटबाल बहुत अच्छा खेलता था, परंतु फुटबाल का पेले (मशहूर खिलाड़ी) नहीं हूं। दो-चार गाने भी बड़ी सुसंगत लय में गा लेता था, परंतु (संगीत की दुनिया के बादशाह) बड़े गुलाम अली खां नहीं हूं। कई एक सुंदर छोटी कहानियां भी रचीं और प्रकाशित करवाई थीं, परंतु इस वजह से (छोटी कहानियों के सम्राट) चेखव नहीं हूं। मैं कुल मिलाकर ऐसा हूं कि आदमियों की भीड़ में अपने आपको अलग से पहचान पाना कठिन है।

बस यही है मेरा परिचय। भीड़ से छिटककर दूर पड़ जाने पर मैं अपने आप को असहाय पाता हूं। दस लोगों के बीच रहकर मैं सारे कष्टों को भी सहन कर सकता हूं। मृत्यु से भी नहीं डरता। भला काम कर सकता हूं, जघन्य किस्म का काम करने में भी तनिक भी संकोच नहीं करता। परंतु धीरे-धीरे मैं अपनी उस चिरपरिचित भीड़ से सरकता हुआ अलग हटता जा रहा हूं। मेरा वास्तविक विशिष्ट रूप अस्पष्ट रूप से आंखों के देखने की सीमा में पड़ते हुए भी आंखों को दिखाई नहीं देता। सच, मेरा असली स्वरूप क्या है जी ?

बेकार की माथापच्ची। व्यर्थ के तर्क-वितर्क। इस तरह स्मृतियों को कुरेद-कुरेदकर मथने से कोई लाभ नहीं। वैसे ये स्मृतियां भी बहुत विश्वासयोग्य नहीं है, इन पर पूरी तरह निर्भर करना ठीक नहीं है। बात यह है कि स्मृतियां भी तो छंटी-छंटाई, चुनी हुई, कुछ चुनिंदा स्मृतियां ही हैं। ठीक सपने में देखी हुई घटनाओं की तरह। धुंधली-धुंधली सी, अस्पष्ट, और तनिक भी ठहरनेवाली नहीं, चंचलायमान, अस्थिर किस्म की। इन्हीं सारी स्मृतियों के आधार पर ही मेरा पूरा व्यक्तित्व है, इन्हीं के आधार पर मेरा मूल्यांकन हो सकता है। इनके अतिरिक्त मूल्यांकन का कोई और भी पैमाना होता हो तो हो सकता है, परंतु उसे मैं नहीं जानता। अगर अपने अतीत की इन स्मृतियों को छोड़कर अपने आपको वर्तमान में ही सीमाबद्ध कर लूं, तो संभवतः मेरा अपना अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। मैं भूदेव चौधुरी हूं। ठीक है। परंतु अपने सारे अतीत को अपने में समेटे रखकर ही मैं, मैं हूं। स्मृति ठीक-टाक है, इस कारण ही मेरी मां है, मेरे पिता हैं, आत्मीय संबंधी हैं, बंधु-बांधव हैं, पत्नी है, कन्या हैं। स्मृति शुद्ध रूप में मुझमें वर्तमान है, इसी कारण दिन ढलते ही मैं अपने घर लौट आता हूं। अपने घर को अच्छी तरह ढूंढकर, सही पहचानकर, औरों के घर से अलग कर पाता हूं।

भूदेव चौधुरी अचानक आशंकित हो पड़े।

"समय रहते, ठीक समय पर अपने घर को पहचानकर ढूंढ सकूंगा क्या ? यदि... ।"

"बड़े बाबू !"

भूदेव चौधुरी झटका सा खा गए। घर में काम करनेवाला लड़का योगेन उनके बिलकुल करीब सटकर उन्हें ऊंची आवाज में पुकार रहा है।

"क्या हुआ रे ?"

"बहुत रात बीत गई है। भोजन नहीं करेंगे क्या ?"

"देख ! मुझे तनिक भी भूख नहीं है। मैं आज नहीं खा सकूंगा। जा, तू खा ले।"

योगेन का चेहरा एकाकए फक्क पड़ गया, उस पर अंधियारा सा छा गया।

"आज दोपहर की बेला में भी आपने कुछ खाया नहीं। सरसों के तेल में पकाई गई सिधरी मछली आपको बहुत प्रिय है, इसी कारण आज ढूंढकर सिधरी मछली ही ले आया और बड़े मन से पकाया कि आप मुंह जूठा करेंगे। बाजार में भी बस थोड़ी सी ही तो थी। उसे भी एक और आदमी खरीद रहा था, उससे लड़-झगड़कर जैसे-तैसे ले आया था।"

"ठीक है, जब ऐसी बात है तो चल।"

उन्नीस

हास्य-रसिक व्यक्ति के रूप में धर्म अधिकारी जी का बड़ा नाम है। इस वजह से वे बराबर हंसी-मज़ाक की बातें करने की ही कोशिश में रहते हैं। स्वयं पी.डब्ल्यू. डिपार्टमेंट में नौकरी करते हैं, फिर उस विभाग के ऊंचे-ऊंचे पदो पर काम करनेवाले अफसर किस-किस तरह की कलाबाजी से घूस लेते हैं, इसकी अंदरूनी बातें खूब रस ले-लेकर सुनाते हैं।

"एक ठेकेदार दोस्त की कहानी बता रहा हूं। ध्यान से सुनिए। उनके छोटे बेटे को भयंकर ज्वर था, जो दवा से ठीक हो गया। चिकित्सक महोदय ने स्वास्थ्य लाभ के लिए बतलाया कि खूब पुराने चावल के भात के साथ जीया मछली (एक तरोताज़ा स्वादिष्ट मछली) का झोल खाने को दीजिए। पर उस समय हालत यह थी, पूरे बाजार में जीया मछली कहीं मिल ही नही रही थी। बड़ी भाग-दौड़ के बाद उससे मिलते-जुलते किस्म की कुछ मांगुर मछली ठेकेदार साहब जुगाड़ कर पाए। बाजार से घर लौट रहे थे तो रास्ते में एस.डी.ओ. साहब का बंगला देख, उनसे भी थोड़ी देर की मुलाकात कर लेने की गरज से उनके बंगले में जा पहुंचे। बंगले के बाहरी बरामदे के दरवाजे के कोने में मांगुर मछली के थैले को दबाकर रखकर, वे साहब के कार्यालयवाले कमरे में चले गए। परंतु इसके पहले ही साहब की नजर थैले को छिपाकर रखते समय उन पर पड़ गई थी, अतः उसे उस तरह रखते देखकर साहब ने पूछा, 'कहिए ठेकेदार साहब ! वहां जो थैला रखा है, उसमें क्या है ?'

" 'कोई खास चीज नहीं। बस कुछ मांगुर मछलियां हैं। अरे आजकल तो इनका मिल पाना संभव ही नहीं। बहुत दौड़-धूपकर, भारी कष्ट झेलकर किसी तरह ला पाया हूं।'

" 'वाह ! ऐसी बात है ? तो फिर पाया कहां ?...अरे ओ मधु ! मधु जी जरा इधर तो आओ। ये थोड़ी सी मछलियां हैं, इन्हें ले जाओ।'

"अब ऐसी हालत में ठेकेदार बेचारे क्या करते ? दो बार मुंह खोला कुछ कहने के लिए, परंतु गले से आवाज ही नहीं निकली।"

परंतु इतनी हंसी-मसखरी करनेवाले, ऐसे खुशमिजाज धर्म अधिकारी जैसे ही अपने घर में घुसते हैं कि तुरंत ही उनका एक दूसरा ही रूप हो जाता है। डर के मारे उनका पुक्का फटने लगता है। चारों ओर से आ पड़नेवाली विपत्ति की आशंका से आतंकित रहते हैं। सबसे पहला डर तो बड़े बेटे सुभाष का ही है। सुभाष बी. एस-सी. कक्षा में पढ़ता है। उसे तो वे कुछ कह ही नहीं सकते। कभी कुछ कहा नहीं कि उलटे उन्हीं पर गरगरा उठता है। परंतु मजबूरी यह है कि एक ही घर में एक साथ रहने पर कभी-कभी बात तो करनी ही पड़ जाती है।

अधिकारी जी के बड़े भाई की नतिनी का विवाह होनेवाला है। उनका भतीजा स्वय गांव से आकर उन लोगों को आमंत्रित कर गया है। बड़े अनुनय-विनय के साथ कहा है कि जैसे भी हो विवाहोत्सव में अवश्य आइएगा आप लोग। अधिकारी की हालत यह कि इसी समय उनका वात का रोग प्रचंड रूप से उभर आया है, जिसके कारण दो कदम चल पाना भी कठिन हो गया है। भयानक दर्द होता है। सो वे तो जा नहीं सकते। किंतु अगर कोई भी इस घर से विवाह में नहीं गया, तो बहुत बुरा होगा। अतः लाचार होकर अधिकारी ने सुभाष से कहा—

"देखो जी ! अगर अपने यहां से कोई नही गया तो—भद्र भैया को बहुत दुख पहुंचेगा। मेरी हालत तो देखते ही हो, जरा सा हिल-डुल भी नहीं सकता। अतः तुम ही एक चक्कर मार आओ।"

"नहीं। मैं नहीं जा सकता।"

"क्यों जी ? इसमें कौन सी असुविधा है ?"

"कह दिया न कि मैं नहीं जा सकता। मेरा ढेर सारा जरूरी काम पड़ा है।"

"कौन सा काम ?"

"अब कौन सा काम है, यह जानने की आपको भला क्या जरूरत है ? मैं नहीं कर सकता हूं, कह दिया, तो नहीं कर सकता हूं। बस खतम बात।"

"नहीं जी। ऐसा कहना ठीक नहीं। अपने इतने आत्मीय लोगों से संबंध बनाए रखना चाहिए। चाहे कितनी भी हैरानी-परेशानी क्यों न उठानी पड़े, फिर भी कुछ काम ऐसे होते हैं कि उन्हें करना ही चाहिए।"

इतना सुनना था कि तुरंत ही सुभाष की आंखें लाल हो गईं, चेहरे का भाव बड़ा ही उग्र हो उठा, "बस, बस। बहुत हो गया। अब ज्यादा लेक्चर झाड़ने की जरूरत नहीं है। उस तरह के तुम्हारे बहुत सारे लेक्चर सुन चुका हूं।"

सुभाष का जवाब सुन अधिकारी जी के मन को बड़ी ठेस लगी। फिर बड़े ही दीन-हीन भाव से मद्धिम स्वर में उन्होंने कहा, "तुम इस तरह की बातें क्यों कहते हो ?"

"तो फिर किस तरह कहना चाहिए ?" सुभाष की आवाज बड़ी रूखी और कड़ी हो गई। अधिकारी बेचारे मन मसोसकर चुप्पी मार गए। उन्हें अपने यौवन काल की बातें याद आने लगीं। वे स्वयं भी अपने पिताजी की बहुत सारी आज्ञाओं को अनावश्यक और तर्कहीन समझते थे, उन्हें सहजता से मान लेने में कठिनाई का अनुभव करते थे, परंतु किसी भी दशा में वे इस तरह कर्कश स्वर में उनकी बातों का विरोध नहीं कर सकते थे। अगर कोई काम करने में सचमुच ही कोई भारी असुविधा है, तो इसे शांत स्वर में स्पष्ट रूप से भी तो कह सकते हैं कि क्या करें, पहले से ही कोई एक बहुत जरूरी काम करने का समय यही निर्धारित है, जिसके कारण इस समय यह दूसरावाला काम कर पाना संभव नहीं है, अथवा कोई और बड़ी असुविधा भी बतलाई जा सकती है।

अधिकारी का मन मुरझा गया, अंदर-ही-अंदर उन्हें भारी कष्ट होने लगा। उनका मन रोने-रोने को होने लगा। अच्छी-से-अच्छी कोई एक बात मुलायमियत से कहने पर भी सुभाष गरजने लगता है। अधिकारी जी सोचते हैं कि संभव है कि उन्हीं का कोई अपना दोष हो। दरअसल पुराने वातावरण में पले-बढ़े आदमी हैं। आजकल के जमाने की सारी बातें समझ नहीं पाते। अथवा हो सकता है कि आजकल के जमाने के सभी नवयुवक इसी प्रकार के स्वभाव के हों। हो सकने की बात क्या ? निश्चय ही उनका अपना दोष है।

यह सब चिंता कर अधिकारी जी बिलकुल असहाय महसूस करते हैं। मन करता है कि गला फाड़-फाड़कर रोएं। फिर अपनी लाठी के सहारे उठते हैं और लाठी लिए हुए लंगड़ाते-लंगड़ाते बाहर निकल जाते हैं। सदानंद हजारिका के घर पर ताश खेलने का अड्डा जमता है। वे फिर उसी में जाकर सम्मिलित हो गए। वहां के वातावरण में निमग्न हो गए। वहां उपस्थित अवकाश-प्राप्त सब-रजिस्ट्रार महानंद पाटागिरि ने बात-बात में कहा, "इस मेधि का कांड देख रहे हैं आप लोग ? कितनी विशाल अट्टालिका बनवा रहा है ! एक सप्लाई इंस्पेक्टर महीने भर में कुल कितना वेतन पाता है ?"

अधिकारी जी की आंखों के सामने पाटागिरि के राजमहल जैसे विशाल बंगले की तस्वीर झिलमिला उठी। उनके अंदर ऐसा भावावेग उठा कि वे अपने आपको संभाल नहीं सके। उनके मुंह से अपने आप निकल गया, "नारायण, नारायण, हे मधुसूदन !"

उनकी इस तरह की आवाज के पीछे किसी रहस्यमय मजाक की गंध पाकर हजारिका जी ने पूछा, "क्या हुआ, अधिकारी जी ! यह अचानक नारायण, नारायण जपने की क्या आवश्यकता आन पड़ी ?"

"विष्णु भैया की कही हुई एक बात अचानक याद हो आई। मेरी फूफी के बेटे हैं वे। बड़ी ही रसीली, हंसी-खुशी भरी बातें करते हैं। यद्यपि ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं है, फिर भी बड़ी ही मूल्यवान बातें करते हैं।"

"कौन सी बात ?"

"विष्णु भैया ने एक बार मुझसे कहा था—"तुम मछली और मांस की सुस्वादु कलिया के साथ भात खाते हो, इधर मैं भी मछली और मांस की सुस्वादु कलिया के साथ ही भात खाता हूं। तो फिर इसमें सुख की क्या बात ? अरे सुख तो तब है जब, तुझे खाने को कुछ मिला ही न हो और मैं अपना सुस्वादु व्यंजन तुझे दिखा-दिखाकर खाने का अवसर पाऊं। वही सुख, सुख है।"

सभी अट्टहास कर खिलखिला पड़े। महानंद पाटागिरि ने अत्यंत क्रुद्ध दृष्टि से अधिकारी की ओर देखा—जैसे कि कच्चा चबा जाएंगे।

सुभाष ने तीन विषयों में विशेष योग्यता (डिस्टिंकशन) प्राप्त कर हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की है। आंखों में सुंदर चमकीले सपने और स्वच्छ-शुभ दृष्टि लेकर उसने गुवाहाटी के एक नामी महाविद्यालय में नाम लिखाकर पढ़ना शुरू किया। अधिकारी की नियुक्ति उस समय कोकड़ाझाड़ में थी। अवकाश प्राप्त करने में अभी दो वर्ष बाकी थे। उसी दौरान गुवाहाटी के इस उपनगरीय इलाके शांतिनगर में उन्होंने मकान बनवाना आरंभ कर दिया था। चूंकि मकान तब पूरा नहीं बन पाया था, अतः सुभाष महाविद्यालय के एक छात्रावास में रहकर पढ़ रहा था। सुभाष पहले-पहल जब कोकड़ाझाड से पढ़ने के लिए गुवाहाटी जा रहा था तब अधिकारी जी ने सुभाष को समझाया था, "देखो बेटे ! ऐसा करना कि वह नई जगह है न, नया वातावरण होगा वहां, अतः बहुत सावधान होकर रहना। बुरे लड़कों की संगत में मत पड़ना। उनकी छाया से भी दूर रहना।"

उस समय तक सुभाष की दोनों आंखें अत्यंत निर्मल, निर्दोष और उज्ज्वल थीं। उन पर जमाने की छाया नहीं पड़ी थी। अपने पिता जी की आंखों में आंखें डालकर उसने बड़े विश्वास से कहा था, "पिता जी ! आप भी क्या कह रहे हैं ? व्यर्थ चिंता न करें। अगर इतने दिनों तक मैं नहीं बिगड़ा, बुरा नहीं बन सका तो फिर आगे भी नहीं बिगड़ूंगा। बुरा नहीं बनूंगा। आप मेरी ओर से निश्चिंत रहें। बिलकुल ही न डरें।"

बेटे को लेकर अधिकारीजी के मन में ढेर सारी ऊंची-ऊंची आशाएं थीं। साथ-साथ भारी आशंकाएं भी थीं। दरअसल अभी इतनी उम्र तक तो सुभाष घर के अलावा अन्यत्र कहीं रहा ही नहीं था। इतना बड़ा हो जाने पर भी उसके बचपने का यह हाल है कि जरा सा बीमार पड़ जाए, तो फिर अपनी मां के साथ ही सोता है, अकेले-अकेले सोने से डरता है।

परंतु गुवाहाटी आने पर सुभाष का नक्शा ही बदल गया। जैसे-तैसे तृतीय श्रेणी में वह प्री-यूनिवर्सिटी कोर्स की परीक्षा में उत्तीर्ण हो सका। अरे वह उत्तीर्ण भर हो गया, यह भी आश्चर्य की ही बात है। चूंकि उसकी बौद्धिक क्षमता जन्म से ही प्रखर थी, अतः उसी के भरोसे उत्तीर्ण हो गया, अन्यथा पढ़ाई के क्षेत्र में उसने कुछ भी श्रम नहीं किया था।

इसी दौरान धर्म अधिकारी का मकान बनने का काम भी पूरा हो गया। नौकरी से अवकाश ग्रहण कर वे भी गुवाहाटी के इस उपनगरीय इलाके शांतिनगर में आकर रहने लगे। सुभाष चूंकि अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हुआ था, अतः अन्य महाविद्यालय के मुकाबले काफी मामूली स्तर के एक महाविद्यालय में नाम लिखाकर बी.एस-सी. की पढ़ाई करने लगा। रसायन शास्त्र में विशेष अध्ययन (ऑनर्स) भी करने लगा।

तब तक सुभाष के स्वभाव में काफी परिवर्तन आ चुका था। घर में बस कहने भर को ही रहता था, घर से कोई विशेष संबंध नहीं था। बस केवल खाने और सोने भर के लिए ही घर आता है। जितनी देर घर में रहता है, उतने सारे समय क्रोध में भरा हुआ और घरवालों के प्रति रूखा-रूखा भाव रखे, सभी से चिढ़ा-चिढ़ा ही रहता है। हालत यह है कि किसी में भी हिम्मत नहीं कि उससे कुछ कह सके। कोई कुछ कहता है तो गरजता हुआ उसी को फटकार लगाने लगता है। आंख-मुंह लाल किए हुए डांटता-डपटता रहता है। अधिकारी जी बार-बार निर्णय लेते हैं कि उससे अब कुछ भी नहीं कहूंगा, फिर भी स्थिति ऐसी आ पड़ती है कि कहे बिना नहीं रह पाते। सुभाष प्रायः ही रात के दस बजे तक घर लौटता है, कभी-कभी तो और भी देरी हो जाती है। मां बेचारी समय से ही भोजन परोसकर भोजन की थाली लिए उसकी बाट जोहती रहती है।

एक दिन काफी डरते-डरते अधिकारी जी ने कहा, "तुम्हारी परीक्षा के दिन को अब अधिक समय शेष नहीं रहा। पाठ्य-पुस्तक, पत्र-पत्रिका, प्रश्नपत्रादि की तैयारी के कागज-पत्र तो तुम हाथ से छू भी नहीं पाए। ऐसी दशा में क्या निर्णय लिया है ? क्या करोगे ?"

"मैं जानता हूं न कि क्या करने की जरूरत है। आपको कुछ भी कहने-समझने की आवश्यकता नहीं है।"

"पुस्तकें पढ़े बिना परीक्षा पास कैसे करोगे ?"

उनकी इस बात का सुभाष ने कोई उत्तर ही नहीं दिया, धड़धड़ाता हुआ बाहर निकल गया। हे भगवान ! कैसी सूरत बना रखी है ? कानों तक लटके हुए लंबे-लंबे बाल जिनमें कभी कंघी फेरी ही नहीं गई हो जैसे, छूटे-छितराए। जब कभी बाल आंखों पर लटक आते हैं तो एक झटका मारकर उन्हें पीछे की ओर फेंक देता है। बहुत पुराने जमाने के चित्रों में देखी हुई चीन देश के पुरुषों की तरह मूंछें। पावों में जींस की पैंट। कम-से-कम चार इंच मोटे तल्ले का जूता। कमीज के सारे बटन

खुले हुए। गले में सोने की पतली सी सिकड़ी। एक हाथ की कलाई में लोहे का एक कड़ा। सुभाष जब चलता है तो उसके चलने का ढंग भी देखने लायक ही होता है। दोनों हाथों को शरीर से लगाकर कुहनियों को पीछे की ओर ठेले रहता है। चलते हुए पग ऐसे धरता चलता है कि उसका सिर एक लयताल में निबद्ध छंद की तरह ऊपर-नीचे होता रहता है। जैसे कि दंड-बैठक लगा रहा हो।

चला गया। अब कब लौटेगा, कोई ठीक नहीं। मां भी कभी-कभी पूछती है, "एकदम से पुस्तक न छूने से अपनी परीक्षा कैसे उत्तीर्ण कर सकोगे ?"

सरकारी बस से तिमुहानी पर उतर तो गया, परंतु उतरकर फिर आगे कदम नही बढ़ा पाया। लड़खड़ाते-लड़खड़ाते किसी-न-किसी तरह पैरों को जमीन पर रखते-रखते थोड़ी दूर आगे बढ़ा, राधा कलिता की दवाओं की दुकान के पास तक आते-आते ऐसा असमर्थ हो गया कि दुकान के बरामदे में पहुंचकर लुढ़क गया। पान दुकानदार सुनंद उधर से गुजर रहा था, उसे यूं लुढ़का पड़ा देख उसने पहचान लिया और एक रिक्शा बुलाकर उसी पर लादकर उसे घर तक पहुंचा गया। यह तो लंपटता की अंतिम सीमा पहुंच गई। इसे देख अधिकारी जी को जैसे काठ मार गया। उनके मुंह से कोई शब्द नहीं निकल सका। सारी-की-सारी रात अधिकारी जी को नींद नहीं आई। इस अवस्था को क्षोभ नहीं कह सकते, दुख भी नहीं है यह, एक प्रकार की शून्यता का भाव है यह। उन्हें लगा जैसे वे शून्य में ही तिरते फिर रहे हों। पौ फटने के पहले ही वे उठ बैठे। अपनी सोच, आशा-आशंका आदि को फिर से ठीक करने की कोशिश करने लगे। उनका बेटा, देश-समाज के अन्य हजारों-हजार बेटों में से ही एक बेटा है। उनका मूल्य-बोध उनके मूल्य-बोध से मेल नहीं खाता। वे आशा करते रहे हैं कि बेटा उनके मूल्य-बोध को मानकर स्वीकार कर लेगा। परेशानी बस इसी बात को लेकर ही तो है। अपनी आशाओं, अपेक्षाओं को छोड़ दें, तब तो फिर कोई झंझट रहे ही नहीं।

भोर होने में अभी काफी देर थी, तभी रात के पिछले पहर के अंधियारे में ही अधिकारीजी को घर से निकलकर बाहर जाते देख उनकी पत्नी बहुत ही व्याकुल हो उठीं। वैसे पूरी-की-पूरी रात वे भी सो नहीं सकी थीं। वे अभी भी संभल नहीं पाई थीं। उनके सारे सपने चूर-चूर हो मिट्टी में मिल गए थे।

अभी इतना अंधियारा है, भोर होने में अभी भी बहुत देरी है तो भी चौधुरी को उनके ओसारे में बैठा देख अधिकारी जी मन-ही-मन कुछ समझे, फिर उन्होंने चौधुरी को पुकारा। बाहर से अधिकारी जी और भीतर से चौधुरी दोनों ही कदम बढ़ाते हुए चौधुरी के मकान के फाटक पर दोनों ओर से आ खड़े हुए।

अधिकारी जी ने भौंहें नचा-नचाकर चौधुरी से हंसी-मजाक की कुछ रसभरी बात कहने की कोशिश की। इस कोशिश में उन्होंने मुंह खोला भी, परंतु उनके मुंह से कोई बोल फूटा ही नहीं। उनके मन में व्यंग्य-विद्रूप, हंसी-मजाक की कोई रसीली

बात उभरी ही नहीं। सो रसमयी बात तो निकली ही नहीं, उसकी जगह रुलाई ही फूट पड़ी। वे हिचकियां ले-लेकर फूट-फूटकर रोने लगे। चौधुरी यह देख घबरा गए। "अरे, अरे ! यह क्या कर रहे हैं ? आखिर हुआ क्या ?"

"कुछ भी नहीं हुआ।" अधिकारी जी ने तुरंत ही अपने आपको को संभाल लिया।

बीस

सदानंद हजारिका निश्चय ही बड़े चतुर व्यक्ति हैं। थोड़े दिनों में ही उन्होंने शांतिनगर के निवासियों को दो भागों में बांट दिया। गजानन राय, दिवाकर दास, भूदेव चौधुरी वे लोग हैं जो शांतिनगर बसने के दिन से ही यहां आकर बसे हैं।

शांतिनगर में बसने की शुरुआत ही इन्हीं से हुई थी। भाग्यवश ये सभी लोग गोआलपाड़ा अंचल के ही निवासी हैं। जब ये लोग इकट्ठे होते हैं और आपस में जब बात करनी होती है तो अभी भी ये लोग गोआलपाड़ा के मैदानी इलाकों की बोली में ही बातचीत करते हैं। यूं वे लोग तो पहले से ही वहां की बोली में बातचीत करते रहे थे, परंतु पहले किसी ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया था। सदानंद हजारिका ने ही इस ओर ध्यान दिया और अपनी शैली में उन लोगों को चिढ़ाना शुरू किया। चौधुरी वगैरह अगर इकट्ठे सामने पड़ जाते तो परोक्ष रूप से चुटकी लेते हुए उपहास करते, "अधिकारी ! मुइ एला जां।"

धीरे-धीरे चौधुरी वगैरह औरों से अलग हो गए, अकेले पड़ गए। इस नई नगरी में नामघर (वैष्णव उपासना गृह) के निर्माण करने की योजना का सूत्रपात यद्यपि गजानन राय के घर पर ही हुआ था, फिर भी स्वयं गजानन राय और उनके ये चौधुरी वगैरह उससे, और फिर तमाम सारी बातों से अलग-थलग पड़ते गए।

सदानंद हजारिका ने बड़े ज्ञानी-गुणी व्यक्ति की तरह अपने ज्ञान का परिचय दिया।

"गोआलपाड़ा अंचल के आदमी शंकर देव की परंपरा के कला-शिल्प के संबंध में 'क्या' जानते हैं जी ?" उन्होंने 'क्या' शब्द का प्रयोग न करके एक बहुत ही अश्लील शब्द का इस्तेमाल किया था। वे नहीं जानते; नहीं जानते—यह कहना ठीक नहीं। उन्हें इन सब बातों की जानकारी होने की बात है भी नहीं। गोआलपाड़ा के सुदूर अंचलों में स्थित कोने-कोने में अभी भी अनेक सत्र वैष्णव धर्म के केंद्र के रूप में गौरव बढ़ा रहे हैं। छत्रसाल सत्र, दलगोमा सत्र, विष्णुपुर सत्र, यहां तक कि गोआलपाड़ा से और भी पश्चिम में स्थित मधुपुर सत्र दूर-दूर तक मशहूर हैं। स्वर्गीय अमृतभूषण अधिकारी द्वारा लिखित 'मन्नाम घोषा' अब तो ढूंढे नहीं मिलता। स्व.

अधिकारी महाशय तो असम साहित्य सभा के सभापति भी थे। परंतु एक बात है। वह यह कि किसने उनका सम्मान किया, अथवा नहीं किया, इसे लेकर गजानन राय किसी पर व्यंग्य-विद्रूप नहीं करते। दिवाकर दास शांत प्रकृति के निर्विरोधी स्वभाव के आदमी हैं। किसी के आदि-अंत, अच्छे-बुरे की तलाश में नहीं पड़ते, किसी पचड़े में नहीं फंसते। भूदेव चौधुरी छोटी-छोटी साधारण बातों को लेकर व्यर्थ के झगड़े में पड़ना अच्छा नहीं समझते।

सदानंद हजारिका की तीन धर्मपत्नियां रही हैं। हां, यह बात सही है कि एक ही समय में कभी भी एक से अधिक पत्नी नहीं रही। पहली धर्मपत्नी से पैदा हुई दो बेटियां हैं। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने फिर दूसरा विवाह किया। कोई बेटा-बेटी पैदा हो सके, उसके पहले ही वह दूसरी पत्नी भी चल बसी। तीसरी धर्म पत्नी से तीन बेटियां हैं और एक बेटा। बेटा सबसे छोटा है। हजारिका साहब के दो सबसे बड़ी बेटियों का विवाह हो चुका है। तीसरी बेटी पिछले कई सालों से लगातार प्री-यूनिवर्सिटी की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होती आ रही है। इस बेटी को लेकर ही हजारिका को भारी परेशानी है। कब, कहां, किसके साथ घूमती-फिरती रहती है, इसका कोई ठिकाना नहीं। मारवाड़ी लड़कों के साथ ही उसका अधिक मेल-जोल है। शुरू-शुरू मे उसकी मां उसका समर्थन करती थी, "अरे आजकल के जमाने की लड़की है। साथ की लड़कियों के साथ थोड़ा बाहर निकलकर घूमे-फिरेगी ही। उसे घर में बांधकर रख सकोगे क्या ?"

परंतु अब हालत यह है कि वही मां उसे कोई भी बात सुनाने से नहीं चूकती। मदन दास के साथ मीना के विवाह की बात को लेकर सदानंद हजारिका जिस दिन थू-थू कर रहे थे, उनके उस कार्य के प्रति भयंकर घृणा दिखा रहे थे, उसके कुछ ही दिनों बाद उनकी यह बेटी कहीं लापता हो गई। उनकी यह तीसरी बेटी (जिसका नाम मीरा था) मीरा घर लौटने में तो रोज ही रात कर देती थी, परंतु उस दिन तो पूरी-की-पूरी रात बीत गई पर वह घर नहीं लौटी।

जवान बेटी की बात है। उसे लेकर अधिक हो-हल्ला करने में भी डर लगता है। खोजबीन करने के लिए दौड़-धूप तो करनी ही पड़ेगी, नहीं तो फिर क्या करेंगे ? मोटरगाड़ी, रेल-वेल के नीचे दबकर मर गई क्या ? परंतु अगर कोई दुर्घटना हुई होती तो क्या अब तक उसकी सूचना नहीं मिल जाती ? समाचारपत्र में क्या दुर्घटना की सूचना छपने से रह जाती ? अब करें भी तो क्या करें ? भारी चिंता लग गई है। इस संबंध में पूछताछ करने के लिए दूसरे लोगों के पास जाने का साहस नहीं हुआ। काफी आगा-पीछा सोचकर उचित सलाह पाने की आशा में हजारिका साहब अंततः चौधुरी के पास गए। यह आदमी कम-से-कम चुगलखोर तो नहीं है। हमारी कमजोरियां जानकर भी इधर-से-उधर तो नहीं करेगा। संयोग ऐसा कि जिस समय वे चौधुरी के पास अपना दुखड़ा रोने पहुंचे, उस समय वहां पहले से ही मदन दास

भी उपस्थित था। जैसे ही उसने जाना कि मीरा के लापता होने से वे परेशान हैं, बोल पड़ा, "अरे मीरा ? कल रात ही तो मैंने उसे देखा था।"

"कहां पर, भाई ?"

"हम दोनों पति-पत्नी कल रात थियेटर में नाटक देखकर लौट रहे थे, तभी सागरमल नामक मारवाड़ी के बेटे के स्कूटर पर बैठकर आते देखा था। मेरा तो उसकी ओर ध्यान ही नहीं गया था, पत्नी ने ही देखा तो मुझे दिखाया।"

सदानंद हजारिका बड़े क्रोध से आंखें लाल किए हुए उसकी ओर देखते हुए हुंकार भरकर बोल पड़े, "सागरमल के बेटे के स्कूटर के पीछे ही देखा। तुम सर्वज्ञ हो क्या ? गुवाहाटी के सारे मारवाड़ियों के बेटों को उनके नाम के साथ बखूबी पहचानते हो ?"

"सभी को नहीं पहचानता। हां, हमारे बैंक के साथ जिनका अच्छा लेन-देन है, प्रायः आते-जाते हैं, उनको जरूर पहचान सकता हूं।"

उस दिन मीना के भिन्न जाति के लड़के के साथ विवाह करने को लेकर हजारिका ने कहा था कि अगर मेरी बेटी किसी दूसरी जाति के लड़के के साथ विवाह करने की सोचेगी भी तो उसे अपने हाथ से काटकर टुकड़े-टुकड़े करके ब्रह्मपुत्र में बहा दूंगा। विवाह किए बिना लड़की किसी दूसरे से यौन-संबंध स्थापित करे तो संभवतः हजारिका को कोई आपत्ति नहीं होगी। यह देख चौधुरी लज्जित हो गए। छिः छिः यह सब कैसी ईर्ष्यापरायण, वाहियात सोच है !

दो दिन बाद मीरा घर लौट आई। बिना किसी संकोच के, बिना किसी अपराध-बोध के, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। उसका फल यह हुआ कि चौधुरी और मदनदास के प्रति सदानंद का क्रोध और भी बढ़ गया।

"चाचा जी !"

आवाज सुन और फिर उधर देखकर चौधुरी तो आश्चर्य से चौंधिया गए। कौन है यह लड़की, इतनी रात गए आकर पुकार रही है ? वहीं से पूछ पड़े, "कौन है रे ?"

"मैं हूं, मीरा।"

चौधुरी ने दरवाजा खोलकर देखा—यह तो सदानंद की बेटी मीरा है और उसके साथ है एक महा जर्जर वृद्ध आदमी जो चल-फिर पाने में भी असमर्थ है।

"क्या है, बेटी ?"

"चाचा जी, ये हैं हमारे बाबा, मेरे पिताजी के पिताजी। इन्हें आज रात भर के लिए अपने यहां रहने की व्यवस्था कर दें। मैं कल बड़े तड़के भोर होते ही आकर इन्हें लिवा ले जाऊंगी।"

ये सब देख, सुन चौधुरी के मन में अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए। परंतु उन्होंने कुछ भी नहीं पूछा। पूछने-ताछने से क्या लाभ ? उन्होंने संक्षेप में कहा, "कोई चिंता

नहीं। सारी व्यवस्था हो जाएगी। परंतु अब इतनी रात हो गई है, तू भला कहां जाएगी, इन घनघोर रात में ?"

"मेरी चिंता छोड़ें। मैं अच्छी तरह चली जा सकूंगी। मेरा तो रोज-रोज का अभ्यास है।" मीरा ने बड़ी सहजता से उत्तर दिया।

भृगुपति हजारिका जी के जीवन के नब्बे वर्ष बीत गए हैं। अपने जीवन के इतने लंबे समय तक वे अपने गांव में ही, अपने बड़े बेटे के साथ रहे। परंतु अचानक ही अकेले-अकेले बस से सदानंद हजारिका के घर आ पहुंचे। उन्हें देखते ही सदानंद हजारिका और उनकी पत्नी का दिमाग गर्म हो गया। हजारिका की पत्नी तो नाना प्रकार की दुष्चिंताओं से बौखला गई। अब अगर यह बूढ़ा यहीं रह गया, तो निश्चित रूप से बिस्तर वगैरह गंदा कर-करके छोड़ देगा, जिसे उन्हें ही साफ करना पड़ेगा। जाने कहां से एक गले का फंदा डालनेवाला पापग्रह आ गया। यही सब भारी डर हजारिका के मन को भी मथने लगा। अगर यहां टिक गए तो बीमार-टीमार तो पड़ ही सकते हैं। यहां तक कि यहीं पर उनकी मृत्यु भी हो सकती है। अब यह सारी झंझट तो उन्हीं के सिर आ पड़ी।

सांझ से ही पति-पत्नी दोनों ही बेचारे बूढ़े पर लगातार आरोप-पर-आरोप लगाते जा रहे थे—बूढ़े ने सदानंद हजारिका के लिए किया ही क्या है ? कुछ भी तो नहीं किया। जब यह मकान बनवा रहा था, तो कितना-कितना कहा फिर भी बुड्ढे ने थोड़े से रुपए भी नहीं दिए। अगर ये चाहते तो क्या पांच हजार रुपए नहीं दे सकते थे ? अरे बूढ़े के पास रुपए नहीं हैं क्या ? इतने लंबे वर्षों तक खेती का धान, सन, पटुआ (जूट) बेच-बेचकर जो रुपए जमा किए हैं, उनका क्या हुआ ? खेती की थोड़ी सी जमीन बेचकर पांच हजार रुपए क्या नहीं दे सकते थे ? पूरे जीवन भर जो रुपए जोड़ते रहे, क्या किया उन रुपयों का ? मर जाने पर छाती से बांधकर ले जाएगा क्या ? अरे एक दिन-न-एक दिन बूढ़ा तो मरेगा ही, जिस दिन बूढ़े की आंखें उलट जाएंगी, प्राण पखेरू उड़ जाएंगे तो सारा रुपया पैसा, धन-दौलत तो पाएंगे दूसरे लोग। फिर हमारे यहां आने की क्या जरूरत थी ? अब इस समय बूढ़े के पांव पड़कर कौन उसे बुलाने गया था और बुला लाया ? बुढ़ौती में बेटे के प्रति प्यार उमड़ पड़ा है ? नाती-नतिनी को देखे बिना रहा ही नहीं जा रहा है ? वाह, वाह कैसा अनूठा प्यार है ! उस समय हजारिका के अपने इस घर में बर्तन-वर्तन ज्यादा नहीं थे। इतनी कमी थी कि काम चलाए नहीं चलता था। कितनी-कितनी कठिनाइयों में काम चलाना पड़ रहा था। तब घर जाकर थोड़े बर्तन अपने यहां ले आने की कोशिश की तो इस बुड्ढे ने कितनी भयंकर आपत्ति की। बोला, "अरे घर के इन थोड़े से बर्तनों को लेकर खींचा-तानी, झगड़ा-झंझट करने क्यों जा रहे हो ?" और अब उसी बेटे के यहां आ धमके हैं, बेटे के प्रति ऐसा प्यार उमड़ आया है

कि उसके बिना रहा ही नहीं जा रहा है। प्यार का ऐसा जोरदार उबाल उमड़ पड़ा है !

अब यही लफड़ा देखो न। यहां का चावल अच्छा नहीं होता, जिसके कारण बूढ़े को भात खाने में असुविधा होती है। शहर-बाजार की जगह है। अब इनके लिए अत्यंत महीन किस्म का खुशबूदार जहा चावल ढूंढने कौन कहां-कहां भटकेगा ? जबकि गांव के घर पर तो किस्म-किस्म के उतने अधिक धान होते हैं। समय-समय पर उनमें से थोड़ा-थोड़ा चावल तो भेजते रह सकते हैं। वह सब बातें तो किसी के मन में आतीं ही नहीं। हजारिका का काम किस तरह चले ? अरे अब तो नौकरी-धंधा भी नहीं रहा। नौकरी से अवकाश ले चुके हैं।...बुड्ढा हो जाने पर आदमी की बुद्धि भी नष्ट हो जाती है क्या ?

सुनते-सुनते बेचारे बूढ़े भृगुपति हजारिका की सहन-शक्ति जवाब दे गई। अब तो कुछ भी सहने की क्षमता नहीं रह गई। एकाएक वे उठ खड़े हुए और बोले, "रहने भी दो। थक गए होंगे और कितना कहते रहोगे ? मैं तुम लोगों के घर रहूंगा ही नहीं।" इतना कहकर सचमुच ही बूढ़ा उनके घर से निकल आया और जैसे-तैसे लड़खड़ाते-लड़खड़ाते सड़क पर चला गया।

सदानंद हजारिका की पत्नी ने गरगराते हुए कहा, "बैठे-बैठे क्या देख रहे हो ? जाओ न। जैसे-तैसे अनुनय-विनय करके, बूढ़े के पांव पड़ उसे लौटा ले आओ। ऐसी जर्जर अवस्था है, कहीं कुछ हो गया तो मुहल्ले के लोग हमें ही दोष देंगे। बूढ़े का क्रोध भी कम नहीं। बाप-रे-बाप !"

"अरे छोड़ो भी। मुहल्ले के आदमियों की परवाह ही कौन करता है ? थोड़ी देर बाद अपने आप ही लौट आएगा। इतनी रात में जाएगा ही कहां ?"

जब काफी देर हो गई, सदानंद हजारिका का क्रोध का पारा कुछ नीचे उतरा। अपने पिता को घर लौट आते न देख कुछ चिंता भी बढ़ी। मन ही मन अकुलाहट बढ़ने लगी। 'इस अंधेरी रात में बूढ़ा गया तो कहां गया ?' फिर तो एक टार्च हाथ में लेकर वे अपने पिता को ढूंढने निकल पड़े। ढूंढते-ढूंढते आगे बढ़े जा ही रहे थे कि दूसरी ओर से मीरा को आते देखा तो पूछ पड़े, "इतनी रात बीत चुकने के बाद तू कहां से आ रही है ?" मीरा ने उनके प्रश्न का उत्तर तो दिया ही नहीं, उलटे उन्हीं से पूछ बैठी, "इतनी रात गए तुम कहां जा रहे हो ?"

"कुछ न पूछो इस महाविपत्ति की बात। तेरे बाबा गुस्सा करके घर से बाहर कहीं चले गए हैं। भारी चिंता हो रही है। आखिर गए तो कहां गए ? अब इस बुढ़ौती में उनका कांड तो देखो। कितना बड़ा अत्याचार कर दिया मुझ पर !"

"अच्छा तो यह बात है ? फिर आप कोई चिंता न करें। वे उधर तिमुहानी की ओर जा रहे थे। मुझसे भेंट हो गई तो मैंने उन्हें चौधुरी चाचा के घर ले जाकर आराम से ठहरा दिया है। कल सबेरे ही उनका टिकट कटवाकर उन्हें उनके गांव

जानेवाली बस पर चढ़ा दूंगी। अगर आवश्यकता पड़ी तो मैं उनके साथ-साथ गांव तक चली जाऊंगी और उन्हें घर पहुंचा आऊंगी।"

इस सारे प्रकरण में भूदेव चौधुरी का कोई दोष नहीं है। मीरा स्वयं अपने निर्णय से ही अपने पिता के पिता यानी अपने बाबा को चौधुरी के घर पहुंचा आई थी। परंतु इस घटना के कारण सदानंद हजारिका साहब का क्रोध चौधुरी पर और दुगुना बढ़ गया।

इक्कीस

रात की बेला में सोने जाने के पहले भूदेव चौधुरी अपने सोने के पलंग के पास पड़ी आरामकुर्सी पर बैठकर एक पत्रिका पढ़ रहे थे। आज मच्छर बहुत ज्यादा काट रहे हैं। उन्होंने देह को कुछ मोड़कर मच्छर मारने के लिए दाएं हाथ से बाएं पैर पर एक जोरदार थप्पड़ दे मारा कि तुरंत ही पीठ के बाई ओर एक बड़ी तीखी वेदना का अनुभव किया। यह वेदना अचानक ही इतनी असहनीय हो उठी कि उनकी पूरी देह को ही जाने कुछ हो गया। हालत ऐसी हो गई कि जैसे उनकी पूरी चेतना ही लुप्त हो जा रही हो। सारा होश-हवाश गायब हो गया हो। वे किसी एक वस्तु की ओर दृष्टि स्थिर कर कुछ देर तक देख सकने लायक नहीं रह गए। पीठ की वह तीव्र वेदना, भयानक रूप से उमड़ता वह दर्द बाएं हाथ से होते हुए शरीर के नीचे के हिस्सों की ओर बढ़ने लगा। उनका अपना हाथ अब जैसे उनके वश में न रह गया। चेतनाशून्य हो लटकने लगा। किसी तरह वे उस आरामकुर्सी से उठे और टेढ़े-मेढ़े होकर कुबड़े की तरह जैसे-तैसे अपनी देह को बिस्तरे पर लुढ़का दिया। ऐसा लग रहा था जैसे अपने बिस्तरे तक पहुंच ही नहीं पाएंगे। मच्छरदानी गिराकर चारों ओर से मच्छरों से बचने का इंतजाम भी नहीं हो सका। कमरे में बिजली की जो बत्ती जल रही थी, वह जलती ही रह गई। जरा सा भी हिलने-डुलने की ताकत नहीं रही, सो जैसे पड़े थे वैसे ही काठमारे से बिछौने पर पड़े रह गए। पंद्रह-बीस मिनट बाद धीरे-धीरे दर्द कम होने लगा। बाएं हाथ में अभी-अभी चिनचिनाहट हो रही थी, फिर दर्द लगभग समाप्त हो गया था। चौधुरी को भारी चिंता हो गई। कहीं हृदयाघात (हार्ट अटैक) तो नहीं हो गया ? अब तो रमेश के पास सूचना भेजनी पड़ेगी।

परंतु दूसरे दिन सबेरे जो उठे तो उन्होंने अपना मत बदल दिया। अरे कुछ भी तो नहीं हुआ। फिर किसी को भी कुछ सूचना भेजने की क्या जरूरत ? व्यर्थ में सभी को परेशान करना क्या ठीक है ?

चौधुरी का शरीर वैसे ही ठीक नहीं था, स्वास्थ्य काफी खराब चल रहा था। ऊपर से नृपेंद्र दास के घर से लौटते हुए रात ज्यादा हो गई। उसके ऊपर तकलीफ यह हुई कि रास्ते में पानी बरसने लगा, सो थोड़ा भीग भी गए। रात्रि के साढ़े आठ बजे नृपेन दास की नतिनी उन्हें आकर बुला ले गई थी। उतनी रात गए एक नन्हीं लड़की को बरसात में भीगते-भागते अपने घर दौड़ा आया देखकर वे कुछ ज्यादा ही चिंतित हो उठे थे। उनके घर पर मेटासिन टैबलेट थी। उसी में से कुछेक लेकर वे हड़बड़ी में दौड़ते-दौड़ते उस नन्हीं लड़की के साथ बाहर निकल गए थे।

गुवाहाटी के पास के उपनगरीय इस ग्रामीण अंचल में बसे शांतिनगर में कोठी-कटरे-बंगले वगैरह बनवा-बनवाकर बसनेवाले लोगों में अधिकांश संख्या उन्हीं लोगों की है जो किसी-न-किसी नौकरी से अवकाश प्राप्त किए हुए हैं। इस नई नगरी में प्रत्येक प्रकार की नागरिक सुविधाएं तो हो गई हैं, परंतु रोग-व्याधि होने, बीमार पड़ने पर बड़ी परेशानी हो जाती है। रात-बिरात अगर अचानक किसी को कुछ हो जाए तो सचमुच ही भारी डर की बात हो जाती है। इतने सारे सेवानिवृत्त लोग यहां आकर इकट्ठे बसे हैं, परंतु इनमें से एक भी वैद्य-चिकित्सक नहीं है। कोई चिकित्सक-डाक्टर भी सेवानिवृत्त हो यहां क्यों नहीं आकर बसा ?

अधिकारी जी ने समझाया, "अरे भाई ! चिकित्सक-डाक्टर भी क्या कभी अवकाश ग्रहण करते हैं ? अगर कहें कि जो निजी चिकित्सक सेवा करते हैं उनकी बात छोड़ो, जो सरकारी-गैरसरकारी नौकरी करते हैं क्या वे भी सेवा-निवृत्त नहीं होंगे ? तो कहना यह है कि उनकी नौकरी तो उनका अंशकालिक (पार्टटाइम) काम है। असली काम तो रह ही जाता है, जो वे चोरी-छिपे या खुलकर भी व्यक्तिरूप रूप में करते हैं।"

नृपेंद्र दास का बड़ा बेटा सुबोध अरुणाचल प्रदेश में नौकरी करता है। अपने बेटे-बेटियों को अपने पिताजी के पास ही रहने दिया है। नृपेंद्र का नाती संतू रोज-रोज शाम को पढ़ने में व्यस्त रहता है परंतु उस दिन सांझ की बेला में हाथ में किताब लेकर पढ़ना छोड़ चुपचाप यूं ही बिस्तर पर करवट ले सो रहा। उसे उस हालत में पड़ा देख उसकी आजी ने पूछा, "अभी से सोने लगा, हाथ-पांव धोया भी है ?"

"धो लूंगा।"

कुछ देर बाद आजी जब फिर उधर गईं तो देखा कि संतू उसी हालत में अभी भी वहीं पड़ा है।

"क्या हुआ जी ? इस तरह क्यों सोए हुए हो ? शरीर अच्छा नहीं लग रहा क्या ? तबीयत तो खराब नहीं हुई ?"

"नहीं, कुछ नहीं हुआ।"

पर आजी को संदेह हुआ। उन्होंने जाकर संतू के ललाट पर हाथ रखा। हाथ रखते ही तो वे मारे डर के परेशान हो गईं। उसका शरीर तो आग की तरह जल

रहा है। "तुझे तो बड़े जोर का ज्वर चढ़ आया है रे। जब तुझे ज्वर था तो ऐसी हालत में तू इस खराब मौसम में खेलने क्यों गया था ? जरा ठीक से सोओ, मैं देखती हूं कि क्या हुआ ? तू तो कोई बात मानता नहीं। कब क्या कर बैठता है ?"

कार्तिक का महीना है। रह-रहकर बारिश होती जा रही है। साथ-ही-साथ हवा भी जोर-जोर की चल रही है। थोड़ी देर बाद ही संतू छटपटाने लगा। उसकी देह आग की तरह ऐसी धधक रही है कि उस पर हाथ नहीं रख सकते। आजी हैरान-परेशान हो मारे घबराहट के पुकारने लगीं, "संतू ! अरे ओ संतू। ओ बेटे ! तू इस तरह क्यों कर रहा है रे ? तुझे कैसी तकलीफ हो रही है, बता न ?"

कोई उत्तर नहीं। आजी ने कई बार पुकारा किंतु नाती के मुंह से तो कोई शब्द ही नहीं निकल रहा। "अरे ओ संतू ! ओ मेरे बच्चे ! कुछ बोल न।"

"ऊं !"

"बहुत कष्ट हो रहा है।"

"नहीं।"

आजी ने फिर नृपेंद्र दास को बुलाया, "जरा इधर तो आइए। जरा देखिए तो संतू कैसा कर रहा है ?"

"ओहो ! इसे तो तेज ज्वर चढ़ आया है। अच्छा इसके सिर पर पानी गिराओ। जैसे भी हो ज्वर उतरना चाहिए।"

"ज्वर कहीं और बढ़ जाए ? अगर बहुत ज्यादा हो गया तो रात में फिर क्या करोगे ?"

"ठीक है। मैं यदु डाक्टर को बुलाने जा रहा हूं। इधर तुम इसके सिर पर लगातार पानी की धार गिराते रहना।"

"जल्दी ही लौटिएगा। घर पर और कोई पुरुष तो है नहीं।"

यहां से एक कोस दूर तिमुहानी के पास यदु डाक्टर का घर है। वहीं पर बाजार सा बस गया है। कई तरह की अनेक दुकानें हो गई हैं। अभी थोड़े दिनों पहले राधा कलिता ने दवाएं बेचने की एक दुकान भी वहीं खोल दी है। जल्दी-जल्दी चलते हुए वे यदु डाक्टर के घर पहुंच गए। किंतु पता चला कि डाक्टर तो घर पर हैं ही नहीं। आज बड़े सबेरे ही वे अपने गांव चले गए हैं।

"तो क्या आज लौटेंगे नहीं ?"

डाक्टर की पत्नी ने कहा, "आज ही लौट आने की तो बात निश्चित थी। हो सकता है, साढ़े छह बजेवाली बस से आएं।"

अब क्या किया जाए ? छह तो बज ही चुके हैं। डाक्टर की प्रतीक्षा में उत्कंठित हो नृपेंद्र दास वहीं बरामदे में पड़ी बेंत की एक कुर्सी पर बैठ गए। बैठे-बैठे सात बज गए। नृपेंद्र दास तो फिर स्थिर नहीं रह सके, हड़बड़ाने लगे। काफी देर होते देख डाक्टर की पत्नी स्वयं बाहर निकल आईं।

"अब इतनी देर हो गई, तो भी वे लौटे नहीं। आप भला कितनी देर बाट जोहेंगे ? कहीं ऐसा तो नहीं, कि आज वे आएं ही नहीं। अगर आना होता तो अब तक तो आ ही गए होते। बारिश के कारण आज मौसम खराब हो गया है अतः संभव है कि वे गांव पर ही ठहर गए हों ?"

अब तक तो नृपेंद्र दास बैठकर डाक्टर की प्रतीक्षा करना ही उचित समझते रहे थे। पर अब इतनी देर तक यहां व्यर्थ में ही बैठकर समय गंवा देने को वे बहुत बड़ी गलती समझने लगे। उन्हें अपनी इस मूर्खता पर अपने ऊपर ही भयंकर क्रोध आया। फिर उन्होंने सोचा, दवा की दुकान का मालिक राधा कलिता एक सेवानिवृत्त फार्मासिस्ट है। अस्पताल में दवाएं देने का काम करता रहा है। काफी अनुभवी आदमी है। अतः व्यर्थ में यहां रुके रहने की अपेक्षा उसके पास जाना ही ठीक है। उसी से पूछकर कोई दवा वगैरह ले जाई जा सकती है। ओह ! यह बात पहले ही क्यों नहीं समझ में आई ? इतनी देर तक यहां बैठे न रहकर उसके पास ही जाना चाहिए था। छिः छिः, मैं भी कैसा मूढ़ हूं !

दास ने दूर से ही देखा कि दवा की दुकान तो बंद है। फिर भी वे जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए वहां पहुंच गए। सोचा चूंकि पानी बरस रहा है, अतः दुकान के दरवाजे बंदकर राधा कलिता अंदर बैठे हो सकते हैं। परंतु जब दुकान के सामने पहुंचे तो देखा उस पर तो ताला लगा हुआ है। आसपास की और सारी दुकानें भी प्रायः बंद हैं। बस पास की एक पान-सुपाड़ी की दुकान पर एक लालटेन जलती दिखाई दी। दुकान हाथ-पांव समेटे घुट्टी-मुट्टी मारे बैठा हुआ है। सब जानते हुए भी दास ने बेबसी में अनावश्यक पूछताछ की।

"क्यों भाई ! दवाओं की यह दुकान बंद हो गई ?"

"हां, दुकान बंदकर कलिता जी अभी थोड़ी देर पहले ही तो गए हैं। फिर ऐसे खराब मौसम में दुकान खोले रखकर करेगा भी क्या ?"

अपने आप पर ही भारी क्रोध और धिक्कार से वे भर उठे। गहरी निराशा ने उन्हें चारों ओर से जकड़ लिया। पानी की जो बौछारें अब तक कुछ धीमी पड़ रही थीं, उनमें और प्रचंडता आ गई, मूसलाधार बारिश होने लगी। अंधेरा और भी गाढ़ा हो गया। कहीं कोई आदमी-जानवर नहीं रह गया था। परम सुनसान बियाबान वातावरण गहरा गया। दूसरे और दिनों में तो यहां काफी रात गए तक रिक्शों की कतार खड़ी रहती थी, मगर आज अभी इस बेला में ही कहीं किसी रिक्शे का नामोनिशान नहीं। दास ने जैसे अपने आपसे ही कहा, "देखो जरा। एक रिक्शा भी यहां नहीं है।"

उनके मुंह से निकले इन शब्दों को सुनते ही पान दुकानवाला तुरंत बोल पड़ा, "आप भी क्या बात करते हैं ! इस दुर्दिन की बेला में भीगता-भागता किसके लिए खड़ा रहेगा ?"

डाक्टर के बुला लाने के लिए शहर जाने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इतनी अंधियारी, जन-मानुषहीन, सुनसान डगर से घर लौट जाना भी महा आफत है। पूरे रास्ते एक भी आदमी कहीं नहीं है। ऐसी असाधारण भयावह परिस्थिति हो गई है कि पूरा शरीर कांप-कांप जाता है। इधर का यह इलाका भी बड़ा बुरा है। अकेला पा जाने पर गुंडे प्रकृति के लफंगे बटमार जानेवालों के हाथ की घड़ी और जो कुछ भी पैसा-पाती होती है, सभी लूट लेते हैं। ऊपर से मार-पीट भी कर देते हैं। अभी आज से तीन दिन पहले ही तो ऐसी खतरनाक घटना घट गई है। शांतिनगर में रहनेवाले एक नवयुवक अध्यापक की तो पतलून तक उतरवाकर ले ली थी। जिन तीन गुंडों ने उन्हें घेरा था उनमें से एक ने भयानक चाकू निकाल लिया था, और उन्हें जान से ही मार डालने की योजना बना डाली थी।

कहीं से भी किसी ओर-छोर का कोई अता-पता नहीं लग रहा था। घर की ओर लौटते हुए दास महाशय रह-रहकर बोल-बोलकर अपने आपको धिक्कारते आ रहे थे, "धत्त तेरे की ! महामूर्ख साला। ठीक हुआ है। उल्लू कहीं के ! जैसे गधे तुम हो, वैसी ही शिक्षा मिली है। सही फल मिला है तुम्हें।"

"अरे राम ! वह क्या है ?" नहीं, नहीं, घबराने की कोई बात नहीं, वह तो सड़क किनारे की एक झाड़ी है। अब जब अपने प्राणों पर भयंकर डर चढ़ आया है तो संतू की बीमारी के कारण मन में जो दुश्चिंता थी, वह कुछ कम हो गई है। परंतु जैसे-जैसे अपने मकान के करीब पहुंचते गए, उनकी चिंता फिर बच्चे की बीमारी को लेकर बढने लगी। अपने मकान से अभी काफी दूर थे, तभी देखा कि उनके मकान के बाहरी बरामदे की बिजली की बत्ती जल रही है। फिर तो तरह-तरह की आशंकाओं से उनके शरीर में जाने क्या हो गया। रह-रहकर उन्हें ओक्काई आने लगी। उन्होंने अपने को संभालते हुए, जोर-जोर से उच्चारण किया, "हे भगवान ! हे परमात्मा !" नाना प्रकार की आशंकाएं क्षणभर में बिजली की गति से उनके दिमाग में खेल गईं। उनकी कल्पना मात्र से ही वे घबरा उठे। मकान की ओर दौड़ लगाकर पहुंचने की कोशिश में सर और धड़ का हिस्सा तो आगे बढ़ गया, परंतु उसी अनुपात में उनके पैर आगे नहीं बढ़ पाए। दरअसल दास जी की उम्र तो साठ वर्ष से अधिक हो चुकी है। सो मुंह बाकर वे लंबी-लंबी सांसें खींचने लगे। बस थोड़ी दूरी पर ही अपना मकान रह गया है, परंतु लगता था कि यह थोड़ी सी दूरी भी अब खत्म नहीं हो पाएगी।

जैसे-तैसे घर पहुंचे। सामने के कमरे के किवाड़ खुले हुए हैं। उस कमरे में चौधुरी बैठे हुए हैं। दास जी की सारी चिंताएं एकाएक उड़ गईं। मन पूरी तरह खाली हो गया, एकदम शून्य।

हांफते-हांफते उन्होंने चौधुरी से पूछा, "आप ! यहां ?"

"हां। चिंता की कोई बात नहीं। बच्चे का ज्वर कम हो गया है। अब वह

सो रहा है।"

नृपेंद्र दास धपाक से कुर्सी पर बैठ गए। उनकी तमाम सारी चिंताए धीरे-धीरे फिर आ जुटीं। परंतु एकाएक फिर उन्हें ऐसा हल्का-हल्का महसूस हुआ जैसे एक धक्का मार देने से ही वे गुब्बारे की तरह आकाश में उड़ने लगेंगे। चौधुरी की बातों का सही अर्थ पकड़ पाने में उन्हें कुछ समय लग गया।

चौधुरी ने बतलाया, "आप को लौटने में काफी देर होते देख रिनि मुझे बुला लाई। बच्चे को इतने जोरों का ज्वर चढ़ गया है, तो उस ज्वर को तो नीचे उतारना ही होगा। ज्वर का पारा और चढ़ जाए तब तो महाविपत्ति हो जाए। मेरे पास ज्वर उतारने की मेटासिन दवा थी। उसे लाकर ही पिलाया। कोई डाक्टर भी आता तो पहले यही करता। उससे ज्वर उतर गया। आपकी श्रीमती जी को एक गोली और दे दी है। अगर बच्चे का ज्वर बढ़े तो उसे खिला देना। वैसे उम्मीद तो यही है कि अब ज्वर बढ़ेगा नहीं। नन्हें बच्चे-बच्चियों का ज्वर पहली बार में ही बड़ी तेजी से बढ़ जाता है। हां, इसके लिए टाइलामिन सिरप की एक शीशी लाकर घर पर रखे रहना, भाई !"

दास का मन चौधुरी के प्रति कृतज्ञता से भर उठा। यूं तो जाने किन कारणों से वे चौधुरी के प्रति अच्छे विचार नहीं रखते। उन्हें पसंद नहीं करते। परंतु आज की इस घड़ी में चौधुरी उन्हें ठीक देवता की तरह जान पड़े। इच्छा तो हुई कि उनके पैरों पर पड़कर उन्हें अपनी श्रद्धा निवेदित करें, परंतु यह तो किया नहीं जा सकता। फिर क्या किया जाए ?

"अरे, अरे आप अभी कहां जा रहे हैं ? बैठिए, बैठिए, एक प्याला कॉफी पीते जाइए।"

दास साहब के मुंह से ऐसा भला प्रस्ताव सुनकर चौधुरी को बड़ा आश्चर्य हुआ। "कॉफी ? अरे इतनी रात गए कोई कॉफी पीता है क्या ? नहीं। उसकी कोई जरूरत नहीं। वैसे ही मैं काफी हड़बड़ाया हुआ हूं।"

"नहीं जी। यह तो नहीं होगा। देख रहे हैं, भीग-भीगकर ऐसे ही लथर-पथर हो गया हूं। आपके नाम के बहाने मैं भी एक प्याला काफी पी लूंगा। हिः हिः हिः।"

दास जी ऐसे लगातार हंसने लगे कि लगा उनकी हंसी बंद ही नहीं होगी। अरे भाई, इसमें कौन-सी हंसी की बात है ? इतना अधिक हंसने की जरूरत क्यों आन पड़ी ? चौधुरी आश्चर्यचकित हो दास साहब की ओर एकटक निहारते रह गए।

बाईस

रबीन शहरीया अपने एक झुंड कुत्तों को लेकर ही व्यस्त हैं। जींस की पतलून, खेल-स्पर्धाओंवाली बनियान, तथा टेनिस के जूते पहने वे अपने कुत्तों को साथ ले अपने बंगले के सामने दौड़ा-दौड़ी करते रहते हैं। ऐसे अवसर पर बेंत की एक कुर्सी पर बैठी-बैठी श्रीमती शहरीया चुपचाप ऊन बुनती रहती हैं। वैसे कोई विशेष ध्यान से अगर देखे तो समझेगा कि वे ऊन को बस यूं ही हाथ में लिए बैठी हैं। उनकी आंखों में कोई भाव नहीं, एकदम शून्य दृष्टि; आसपास क्या कुछ गुजर रहा है, इससे एकदम निरासक्त, वातावरण की किसी भी चीज से पूरी तरह अनजान। वैसे इतनी अधिक उम्र हो जाने पर भी वे देखने में अभी भी बेहद सुंदरी हैं। शहरीया जी का चेहरा-मोहरा और दैहिक गठन भी काफी अच्छा है। उनकी हालत यह है कि अगर अभी भी शहरीया जी अपनी श्रीमती को साथ लेकर सड़क पर टहलने निकल जाएं, तो दूर से देखनेवाले आदमी समझेंगे कि एक जोड़ी युवक-युवती ही सैर करने निकले हैं।

श्रीमती शहरीया आजकल बातों को भूल जाया करती हैं। यूं पहले भी वे बहुत कम बातचीत करती थीं। मगर आजकल तो बिलकुल ही नहीं करतीं। कहीं बैठ गईं तो उसी एक जगह स्थिर हो बैठी रह जाती हैं। आंखों की दृष्टि बिलकुल उदास-उदास रहती हैं। रात की बेला में भी जगकर पलंग पर से हट आती हैं, और इस कोठरी, उस कोठरी में घूमती-फिरती रहती हैं। परंतु अपनी जानकारी में नहीं, अनजाने ही, सम्मोहित सी अवस्था में। इधर कुछ दिन पहले ही शहरीया ने उनकी इस आदत का पता पाया। तब से वे भी जगकर आगे बढ़कर, उनकी इस तरह की हरकत को देखना-परखना चाहते हैं। वे उठकर, उस पर नजर रखने को हुए। श्रीमती शहरीया उनके पास से गुजरती हुई फिर अपने पलंग पर जाकर सो गई। उनकी भाव-भंगिमा में कहीं भी ऐसा कोई चिह्न नहीं था, जिससे अनुमान हो कि उन्होंने शहरीया जी को देखा है। दरअसल नींद में भी वे चलती-फिरती हैं। पूरे घर में जाने कौन-सी चीज ढूंढती फिरती हैं।

उस दिन बड़े सबेरे-सबेरे ही चौधुरी की अपनी छोटी बिटिया अनीता उनके घर आई। तड़के नींद खुलते ही रमेश (उसके पति) से झगड़ा हो गया है। वैसे इस तरह का झगड़ा महीने में एक बार हो ही जाया करता है।

चौधुरी ने पूछा, "अरे ! अकेले-अकेले ही आ गई। मुनमुन, टुनटुन को साथ नहीं ले आई ? उनकी देखभाल कौन करेगा ?"

"क्यों साथ ले आऊंगी भला ? उनके पिता क्या उनकी देखभाल नहीं कर सकते ? और अगर नहीं भी कर सकते तो भी मैं अकेले-अकेले ही क्यों करूंगी उनकी देखभाल ? ई ऽ ऽ ऽ।"

आंखें नचा-नचाकर अंत में 'ई' स्वर को लंबा खींचते हुए अनीता ने जवाब दिया।

"फिर झगड़ा हो गया है क्या ?"

"अरे मेरी एक भी बात जो सुनें। मुझे ही उपदेश देते रहते हैं। वे जो कुछ भी क्यों न कहें, 'पतिः परम गुरु' मानकर उनकी हर एक बात मान लेनी चाहिए। दया करके आपने अपने श्रीचरणों में स्थान दिया है—श्रीचरण में...ई ऽ ऽ ऽ।"

उसने फिर 'ई' स्वर को काफी लंबा खींचा। चौधुरी हंस पड़े। "ठीक ही हुआ। बहुत अच्छे दिन में आई हो। योगेन आज रोहू मछली ले आया है।"

"ऐसी बात है ? तब तो बहुत ही अच्छा। तब तो मछली मैं ही पकाऊंगी।"

चौधुरी तो घबरा उठे। "तू पकाएगी ? क्यों व्यर्थ में परेशान होगी ? तू तो आराम से बैठ। आ गई हो, बहुत ही अच्छा हुआ। फिर तुम्हारे अपने और भी काम तो हैं। मतलब यह कि बहुत दिनों से तुम 'आत्मकथा' लिखने के लिए कहती आ रही हो। सो उस बारे में सलाह देने का काम, जैसे कि आत्मकथा लिखना किस तरह आरंभ किया जाए ?"

अनीता परम उत्साहित हो उठी। "किस तरह आरंभ किया जाए ? इसका मतलब ?"

"मतलब यह कि लिखना आरंभ करे तो किस बिंदु से ? नौकरी से सेवामुक्त हो जाने के बाद के समय से, अथवा बिल्कुल जन्म के समय से ही ?"

"सेवामुक्त हो जाने के बाद लिखने को फिर है ही क्या ?"

"क्यों नहीं है ? जैसे कि यही लो कि सेवामुक्त होने के समय की ही बात लो। सेवामुक्त होने के बाद नितांत अकेले-अकेले रहनेवाले व्यक्ति। कोई झंझट, कोई जंजाल नहीं, कोई जिम्मेदारी नहीं। और कौन सा काम करने को है ही ? सेवामुक्त होते ही हर प्रकार की जिम्मेदारी से मुक्त हो गया, शांतिपूर्वक रह सकता हूं। इसी अवस्था की तो अपेक्षा करता आ रहा था। अपने कार्यस्थल के लोगों द्वारा विदाई समारोह आयोजित करने का सार-सरंजाम करते देख, मैंने अपने सहयोगियों को मना ही किया। क्या जरूरत है ताम-झाम की ? सेवा-निवृत्त होकर मुझे आनंद ही प्राप्त हो रहा है, फिर विदाई समारोह में खड़े होकर यह कहना कि 'यहां से सेवानिवृत्त होकर मुझे बड़ी वेदना हो रही है, सबसे बिछुड़ने का बड़ा दुख हो रहा है' क्या जरूरत है ? विदाई समारोह में अंततः कुछ कहने को बाध्य होने पर, कुछ कहने जाते मुझे तो रुलाई आ गई। मन-ही-मन इतना लज्जित हुआ कि...।"

अपने बेटे-बेटी को स्कूटर पर बैठाए हुए, बड़ी हड़बड़ी में रमेन भी आ पहुंचा। आते ही उसने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया, "अरे ओ योगेन ! ओ छोकरे ! योगेन रे ऽ ऽ !" रमेन ने चौधुरी से बतलाया, "मुझे बताया गया कि आज हम लोगों को आपने भोजन करने के लिए आमंत्रित किया है ? अब सभी लोगों को

स्कूटर पर चढ़ाकर ले आने में परेशानी तो होती न, अतः अनीता को पहले ही भेज दिया। अरे ओ योगेन, आता क्यों नहीं रे ?"

"क्यों जी, योगेन को क्यों इस तरह पुकार रहे हो ? इस समय उसे यहां कहां पाओगे ? जरा सा मौका मिलते ही जाने कहां सरक जाता है ?"

"रास्ते से आ रहा था तो बाजार में बिलकुल ताजा सुगठित लाल रोहू मछली को काट-काटकर टुकड़े कर बेचते देख जी ललचा आया। साथ में फूलगोभी भी ले आया हूं। दोनों का बड़ी उम्दा किस्म का पकवान पकेगा। योगेन इतने उत्तम कोटि का व्यंजन बनाएगा कि वाह...।"

अनीता बोल पड़ी, "अब इसमें योगेन की क्या जरूरत आन पड़ी ? मैं स्वयं इन्हें पकाऊंगी।"

रमेन तो दहल उठा। फिर संभलकर बोला, "क्यों जी ! अभी तुमने ही तो बतलाया था कि तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है ? फिर इन सब झंझटों में क्यों पड़ोगी ? तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं। तुम बस आराम करो। योगेन से अगर नहीं बनवाना है तो ठीक। तब रानू जी ही पकाएंगी...।"

चौधुरी बीच में ही पूछ बैठे, "रानू को यहां कहां पाओगे ? वे तो यहां हैं ही नही।"

"आ रही हैं। आते समय मैं उन लोगों के घर भी गया था और उनसे कह आया कि आज भोजन पर उन लोगों को भी बुलाया गया है। वैसे क्षमा करेंगे—आप भी बातों पर गंभीरतापूर्वक विचार नहीं करते। केवल हमीं लोगों को आमंत्रित कर भोजन खिलाने से उन लोगों को बुरा नहीं लगेगा क्या ? मन में उन्हें ठेस नहीं लगेगी ? सोचेंगे, छोटी बेटी के प्रति ही आपका प्यार उमड़ता है, बड़ी की कोई पूछ नहीं। सो बुरा मानने की तो बात ही है। हमें न बुलाकर उन लोगों को...।"

"ठीक है, अब रहने भी दो। जो कुछ तुमने कर दिया है, अच्छा ही किया है।"

"बड़ी बहन रानू जी, अपने बेटे-बेटियों को लेकर अभी-अभी आ पहुंचेगी। उनके पतिदेव डाक्टर साहब ने कहा है कि वे कुछ देर से आएंगे।"

आंखें फाड़े-फाड़े अनीता रमेन की बातें सुन रही थी। उनकी बातों का तीव्र विरोध करने को होकर वह फिर ठठा-ठठाकर हंसने लगी। ऐसी हंसी कि जैसे रोके न रुके।

किसी काम की व्यस्तता बताकर मुंह फेरकर चौधुरी उस कमरे से बाहर चले गए।

दोनों हाथों को कमर पर रखे अनीता रमेन के सामने आ खड़ी हुई। "तुम इतनी बेलाग, सरासर झूठ बातें बिना किसी संकोच के कहते जा रहे हो ? धन्य हो तुम ?"

"कैसी झूठी बातें ? कौन-सा झूठ ?"

"क्यों ? पिताजी ने तुमसे कहा था कि मेरी बड़ी बहन और उसके परिवार को तुम आमंत्रित कर आना ?"

"ओह ! ऐसी बात है तब फिर मैं उन्हें मना कर आता हूं। दरअसल जब मैं उनके घर पहुंचा था, तब तक उनकी कार का ड्राइवर आया नहीं था। अभी भी शायद ही आया हो। अगर तेज स्कूटर चलाता हुआ जाऊं तो अभी भी उन लोगों को उनके बंगले पर ही पा जाऊंगा।"

रमेन के लिए कुछ भी कर बैठना असंभव नहीं है। वह वहां जाने के लिए जैसे ही कमरे से निकलने को हुआ कि अनीता ने आगे बढ़कर उसका हाथ एक झटके में पकड़ लिया और अंदर खींच लिया। तब बड़ी सावधानी से रमेन को इधर-उधर चारों ओर निरीक्षण करते जो देखा तो डपट उठी, "ए खबरदार, जो कोई बदमाशी की !"

सांझ के पहर रबीन शहरीया अपनी श्रीमती जी को साथ लिए अचानक ही भूदेव चौधुरी के घर आ पहुंचे। उनके आने के संबंध में चौधुरी ने कभी सोचा भी नहीं था। सांझ की बेला में तो वे प्रायः कहीं बाहर निकलते ही नहीं। अपने बंगले के सामने के घास के मैदान में अपने कुत्तों के साथ खेलते रहते हैं।

रानू ने ही बड़ी तेजी से आगे जाकर उन लोगों का स्वागत किया और आदरपूर्वक बैठाया, "आइए मौसा जी, आइए मौसी जी ! आइए बैठिए।"

चौधुरी ने शहरीया से पूछा, "आप अपने लाडले कुत्तों की सेना को कहां छोड़ आए हैं ?"

"ठीक-ठाक ही हैं वे सब मुश्ताक के पास। वैसे ही इन्हें साथ लेकर थोड़ा टहलने निकल पड़ा था। रानू बिटिया वगैरह आज यहां है, यह सूचना पाकर सबसे मिलजुल लेने के लिए अंदर चला आया।"

श्रीमती शहरीया सोफे पर बैठ गईं। शरीर से वहां उपस्थित होते हुए भी, ऐसा लग रहा था कि वास्तव में वे कहीं बहुत दूर हैं। मानो वे इस धरती पर नहीं हैं। तगड़े फ्रेम के मोटे शीशे के चश्मे के भीतर से उनकी आंखें स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ती थीं, अतः उनके मन के भावों को समझा नहीं जा सकता। सोफे में बैठी तो हैं, परंतु अपने आपको बहुत संकुचित कर समेट-समेटकर बैठी हैं। उन्होंने अपना दाहिना हाथ घुटने के ऊपर रखा हुआ है। ऐसा लगता है कि उस हाथ पर उनका अपना कोई वश नहीं है। वह अपने आप ही कांपता चला जा रहा है।

रानू ने पूछा, "मौसी जी ! सुनीति की कोई चिट्ठी मिली ?"

श्रीमती शहरीया ने खोई-खोई नजरों से रानू की ओर निहारा। ऐसा लगा कि रानू ने जो पूछा वह प्रश्न वे समझ ही नहीं पाई, अथवा अगर समझा भी है तो वह प्रश्न सुनकर वे आश्चर्यचकित हो गई हैं।

शहरीया जी ने आंखों से इशारा करके रानू को वह प्रश्न दुबारा पूछने से मना किया। श्रीमती शहरीया इधर कुछ दिनों से उनसे बराबर पूछती आ रही हैं, "क्यों जी, भला यह तो बताओ कि ये सब हैं कहां ? हमारे बेटी-बेटे कहां हैं ? वे हमारे पास क्यों नहीं आते ? क्या वे आएंगे नहीं ? क्या अब कभी भी नहीं आएंगे ? कम-से-कम मरने के समय तो किसी को अपने पास हम पाएंगे ?"

शहरीया जी के बेटे-बेटी बहुत समय से उनके यहां नहीं आए। वे अमरीका में ही स्थायी रूप से बस गए हैं। वहां से आ पाना काफी कठिन है। उनके लिए भारी समस्या हो गई है उनके अपने बेटे-बेटियों की मानसिकता। वे भारतवर्ष की अपेक्षा बिलकुल भिन्न वातावरण में पले-बढ़े हैं। अगर उन्हें तभी यहां ले आया गया रहा होता, जब वे निरा बच्चे थे, तभी से उनका आना-जाना रहा होता तो फिर अलग बात थी। परंतु अब जब कि उनकी जड़ें वहां बहुत गहराई तक जम गई हैं तो जड़ों समेत उखाड़कर यहां लाकर रोप पाना महाकठिन है। यहां के समाज के साथ अपने को मिला पाने में उन्हें बहुत कठिनाई होगी।

शहरीया के दोनों बेटे अमेरिका में स्वयं तो बसे ही हैं, अपने माता-पिता दोनों को वहीं (अमेरिका) ले जाने के लिए बराबर लिखते रहते हैं। (उनकी बेटी) सुनीति भी अपने दोनों भाइयों का ही समर्थन करती है। वे लोग यह महसूस नहीं कर पाते कि उनके बेटे-बेटियों के पक्ष में जो बात सत्य है, इन बूढ़े-बूढ़ियों के लिए भी वही बात सत्य है। अब इस उम्र में वे लोग भी जड़ें उखाड़कर असम छोड़कर कहीं नहीं जा सकते।

दोनों ही बेटे समय-समय पर शहरीया को डालरों का चेक भेजते रहते हैं। उनके द्वारा भेजा गया चेक पाकर शहरीया का मन और भी खराब हो जाता है। उनके दोनों बेटे यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि स्वयं शहरीया जी के पास जितना रुपया-पैसा, संपत्ति है, उतने भर से ही उनका पूरा जीवन बहुत अच्छी तरह से व्यतीत हो जाएगा। फिर चेक से रुपए भेजकर वे अपने सद्विचारों का अहसास जताते हैं क्या ? इस तरह के विकल्प की उन्हें क्या जरूरत है ? कभी-कभी तो उन्हें इतना क्रोध हो जाता है कि उसी क्रोध में बेटे को चिट्ठियां लिख जाते हैं, "प्रिय दीपू ! तुम्हारे द्वारा भेजे गए दो सौ डालरों का चेक पाया। फिलहाल हमें रुपयों-पैसों की उतनी कोई आवश्यकता नहीं है। जब जरूरत होगी...।"

परंतु ऐसे पत्र वे कभी भी डाक-बक्से में नहीं छोड़ते। रुपए भेजकर ही अगर वे लोग सुख-संतोष अनुभव करते है, तो फिर उसी तरह संतुष्ट रहें। अब तो उनसे

यही बस एकमात्र संयोग-सूत्र बचा रह गया है। बचे हुए इस एकमात्र सूत्र को तोड़ फेंकने की कोई आवश्यकता नहीं।

तेईस

भूदेव चौधुरी अंदर-ही-अंदर यद्यपि काफी पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं, फिर भी उनका मन परम प्रसन्न है। आज अप्रत्याशित रूप से अपने आप ही उनके अपने सभी सगे उनके घर आ उपस्थित हुए हैं। शुरू-शुरू में अपनी स्वर्गीया पत्नी की स्मृति हो आने से मन बड़ा उदास-उदास सा हो गया था। परंतु धीरे-धीरे उन्हें लगा कि इन तमाम अपने लोगों के बीच किसी प्रकार से, किसी अवस्था में किसी भी रूप में उनकी वह स्वर्गीया पत्नी भी वहां उपस्थित हैं और उनके इस उत्सव में सक्रिय भाग ले रही थीं। आज का दिन प्रेम, प्रीति, सौहार्द से भरा-पूरा और कलरव से गुंजायमान, शुभ कामनाओं से घिरा हुआ बीता था, फिर भी बीच-बीच में उनका मन कुछ उदास भी हो जाता था। वैसे कुल मिलाकर आज का दिन सचमुच ही बहुत अच्छा बीता था। इसे इतने अच्छे रूप में सफल बनाने का सारा श्रेय उनके छोटे जामाता को ही है। इस छोटे जमाई की ही यह सारी कीर्ति थी। सचमुच ही यह बड़ा भला लड़का है। थोड़ा हल्के स्वभाव का होते हुए भी मन का बड़ा भला है। बेटी अनीता के साथ उसकी जोड़ी भी खूब जमी है।

अपनी 'आत्मकथा' लिखने के लिए चौधुरी पर अनीता बार-बार दबाव डालती आ रही है। बहुत गंभीर विश्वास के साथ यह बात कह रही हो, कोई ऐसी भी बात नहीं। बस यह बात किसी तरह उसके माथे में घुस आई है, अतः जोर डाले जा रही है। वस्तुतः अनीता किसी भी बात को बहुत गंभीर सोच-विचार करके नहीं कहती है, उसका स्वभाव ही ऐसा नहीं है। यह तो बहुत ही चंचल, अव्यवस्थित और अगंभीर स्वभाव की है।

परंतु लिखने के लिए है ही क्या ? चौधुरी ने अपने समग्र जीवन में कौन सा बड़ा काम किया है ? इस धरती माता की छाती पर क्या वे कोई सामान्य सा भी चिह्न रखा छोड़ पाएंगे ? बात तो बस एक ही है। भाषा में जो प्रचलित शब्द हैं, उनके बंधन से तो किसी की मुक्ति नहीं है। वे अपनी भावना से जो कुछ भी व्यक्त करना चाहते हैं, शब्दों के आवरण में ढंक जाने से उसी का रूप बदल जाता है। अंतर की अनुभूतियां अपने मूलरूप में प्रगट नहीं हो पातीं, बल्कि उसकी जगह विकृत रूप में ही प्रकाशित होती हैं। 'पृथ्वी के वक्षस्थल पर अपना कोई चिह्न स्थायी रूप से रख जाना।' एक प्रबल तरंग के रूप में शब्दों का समूह अपने आप उमड़ा चला आता है और मन के भावों और विचारों को उनका असली रूप ग्रहण कर

पाने के पहले ही उन्हें वहा ले जाता है। हजारों-हजार वर्षो से बराबर व्यवहार में लाते रहने के कारण शब्द भी जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं। हालत यह हो गई है कि अब ये सब वक्ता या श्रोता किसी के भी मन पर कोई स्थायी चिह्न नहीं अंकित कर सकते। लगातार एक पर एक चढ़ती जाती लहरों के थपेड़ों के शब्दों की तरह।

स्थायित्व—यानी कोई चीज सदा-सर्वदा एक सी बनी रहे—किसी भी काम की सार्थकता का आदर्श नहीं हो सकता। यह एक मिथ्या धारणा है। हजार वर्ष, सौ हजार वर्ष, आखिरी सीमा आखिर है कहां ? इस बीच ही तो सभी कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा, समाप्त हो जाएगा। समय आने पर वायु का झोंका विराट अट्टालिका को भी धूल के कण की तरह उडा ले जाएगा। इतने प्रचंड तापवाला सूर्य भी एक दिन बर्फ की शिला की तरह शीतल हो जाएगा। पृथ्वी के विस्तृत मैदान में वायु आहें भरता हुआ डालता फिरेगा। संभवतः एक दिन वायु, जो सभी का प्राण है, भी अस्तित्वहीन हो जाएगा। पृथ्वी के ऊपर धूल का आवरण क्रमशः कठोर हो जाएगा। तब क्या होगा उस समय ? चराचर विश्व के इस चल रहे इस नाटक का पर्दा गिर जाने के बाद, अर्थात नाटक पूरा खेला जा चुकने के बाद उसकी समाप्ति की सूचना हो जाने के बाद भी क्या कुछ बचा रह जाएगा ? प्रेम, प्रत्याशा, फूलों की सुगंध लेने का आनंद, पहाड़ी झरने की छाती पर प्रतिफलित होनेवाली झिलमिलाती चंद्रमा की किरण के प्रकाश को देखकर मन में संचारित होनेवाले गंभीर उच्छवास, विशुद्ध गणित के एक तत्व का अनुसंधान करके पाई गई सफलता से प्राप्त होनेवाली तृप्ति—पृथ्वी के इस विशाल वक्षस्थल पर ये सब क्या तब भी बिना किसी सहारे के बचे रह सकेंगे ?

अगर नहीं, तो फिर किसलिए भयानक आपाधापी, यह प्रचंड कोलाहल, धमाचौकड़ी, चीख-चिल्लाहट, झगड़-झंझट, बीते सुंदर जमाने की बार-बार याद करने की आदत और सुनहरे भविष्य के सपने संजोने की प्रवृत्ति, समय के प्रवाह से संबंधित सभी चीजों के मूल्य आंकने की कोशिशें की जाती हैं। अनुकूल परिस्थिति और संयोग मिल जाने पर रासायनिक प्रक्रिया के हिसाब से जीवन की रचना होना, फिर उससे भिन्न परिवेश में पहुंच जाने पर उनका फिर अलग-अलग होकर मूल तत्वों के रूप में बदलाव हो जाना—बस इसी में ही सभी कुछ समाप्त हो जाता है ? अगर ऐसा ही है तो फिर क्योंकर यह आनंद की उन्मुक्त हंसी गुंजाते हैं, क्यों फिर विषाद में बिलख-बिलखकर रुदन का हाहाकार मचाते हैं ? किसलिए यह दर्शन का गूढ़ सिद्धांत है और क्यों फिर प्रामाणिक विज्ञान का अनुसंधान ?

अथवा फिर, हां, अथवा, या संभवतः अथवा इन सारी चीजों की आड़ में इनके पीछे गहनतम में कुछ निश्चय ही है जिसका अर्थ मनुष्य आज तक भी ढूंढकर निकाल नहीं पाया है। प्रत्येक दिन की तुच्छता में, और जीने की चेष्टा में करने को बाध्य कठिन संग्राम में लगे रहने के कारण मनुष्य आज के इस तथाकथित समुन्नत जमाने

तक भी जीवन के एक विशेष स्तर से ऊपर उठकर दूसरे ऊंचे स्तर तक उठ नहीं पाया है। मनुष्य के मन में देवता की जो एक अस्पष्ट धारणा बनी हुई है, संभव है कि एक दिन ऐसा आए, जब अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति और संकल्प के फलस्वरूप उस परम सत्य की उपलब्धि प्राप्त करके अपने को उसी प्रकार के देवता के रूप में बदल भी तो ले सकता है।

अचानक ही भूदेव चौधुरी ने अपने आपको बहुत हल्का महसूस किया। जिन पुराने जीर्ण-शीर्ण शब्दों के कारण उनकी अपनी अनुभूतियां नीचे दबी-ढंकी पड़ी थीं, वे शब्द अब एक-एक कर विलीन होने लगे। फिर तो वे एकाएक पूरी तरह मुक्त हो गए, सारे दबावों, सारी बाधाओं, सारे बंधनों से पूरी तरह मुक्त। एकमात्र विशुद्ध सत्ता, संज्ञाहीन, नाम-उपाधिहीन, विशुद्ध अस्तित्व मात्र। आनंद, उच्छ्वासमय।

नहीं, नहीं। इन अतिसाधारण शब्दों के भरोसे उनकी अनुभूतियों को अभिव्यक्त नहीं कर सकते। अगर उनकी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना ही है, प्रकाशित करना ही है, तो फिर रूपकों के सहारे, इस रूप में कहने में क्या दोष है कि वे बिजली की तरंगों के रूप में रूपांतरित हो गए !

दूसरे दिन, सबेरे-सबेरे जगने के बजाय जब दस बज गए, और तब भी जब चौधुरी ने अपने कमरे का दरवाजा नहीं खोला, अंदर से बंद किया हुआ दरवाजा बाहर से किसी भी प्रकार नहीं खुल सका, तब आकुल-व्याकुल होकर, योगेन दौड़ा-दौड़ा गया और पड़ोस में रहनेवाले मदन दास साहब को बुला लाया।

विनायक कम्प्यूटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा लेज़र कम्पोज़ तथा
तरंग प्रिंटर्स, लक्ष्मी नगर, दिल्ली -92 द्वारा मुद्रित